Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HINDI
SHABDA SAGARA
1925
G. K. V.
HARDWAR

R
१
१V.

Foundation Ch

in. Gurukul Kangr

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
२.६
२४ (ख)

Stock Verification-2024

Anis Book Binding House
Karachh Mohalla, B.H.E.L. Road
JAWALAPUR

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
१ ११५८८

संख्या-३२

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

११५८८

11588

संपादक

श्यामसुन्दरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२९

मूल्य १) डाकव्यय अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *
...स्तक की संख्या.......२४
...स्तकालय-पञ्जिका संख्या...१९५८८
...ुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है।
...ई महाशय १९ दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने
... नहीं रख सकता। अधिक देर तक रखने के लिये
... आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

...केताक्षरों का विवरण

...ती भाषा
...न मिश्र
...रधरदास
...पालचंद्र)
...चंद्रिका
... कवि चिंतामणि
त्रिपाठी

अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकणदेश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि०अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि०प्र० = क्रिया प्रयोग
क्रि०वि० = क्रियाविशेषण
क्रि०स० = क्रिया सकर्मक
क० = क्वचित्; अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है।
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
गि० दा० वा गि० दास = गिरधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरधर = गिरधरराय (कुंडलियावाले)

छात = छातस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुल्लिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी

पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियदास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंडी बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरा
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ

लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा; अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्र-प्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतस...
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

---

* यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त होता है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोख*‡-संज्ञा पुं० दे० "रोष"।

रोग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रोगी, रुग्ण] (१) वह अवस्था जिससे शरीर अच्छी तरह न चले और जिसके बढ़ने पर जीवन में संदेह हो। शरीर भंग करनेवाली दशा। बीमारी। व्याधि। मर्ज़।

पर्य्या०—गद। आमय। रुज। उपताप। अपाटव। अम। मांद्य। आकल्प।

रोगकारक-वि० [सं०] बीमारी पैदा करनेवाला। व्याधिजनक।

रोगकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम की लकड़ी।

रोगग्रस्त-वि० [सं०] रोग से पीड़ित। बीमारी में पड़ा हुआ।

रोगन-संज्ञा पुं० [फ़ा० रौग़न] (१) तेल। चिकनाई। (२) पतला लेप जिसे किसी वस्तु पर पोतने से चमक, चिकनाई और रंग आवे। पालिश। वारनिश। (३) लाख आदि से बना हुआ मसाला जिसे मिट्टी के बरतनों आदि पर चढ़ाते हैं। (४) चमड़े को मुलायम करने के लिये कुसुम या बर्रे के तेल से बनाया हुआ मसाला।

रोगनदार-वि० [फ़ा०] जिस पर रोगन किया गया हो। पालिशदार। चमकीला।

रोगनाशक-वि० [सं०] बीमारी दूर करनेवाला।

रोगनिदान-संज्ञा पुं० [सं०] रोग के लक्षण और उत्पत्ति के कारण आदि की पहचान। तशखीस।

रोगनी-वि० [फ़ा०] रोग़न किया हुआ। रोग़न लगाया हुआ। रोग़नदार। जैसे,—रोगनी बरतन।

रोगपरीसह-संज्ञा पुं० [सं०] उग्र रोग होने पर कुछ ध्यान न करके उसका सहन। (जैन)

रोगमुरारि-संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, विष, लोहा, त्रिकटु और ताँबा सम भाग और सीसा अर्द्ध भाग लेकर पीस डाले और दो दो रत्ती की गोलियाँ बना ले।

रोगशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

रोगशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं०] सोनालू का पेड़।

रोगाक्रांत-वि० [सं०] रोग से घिरा हुआ। व्याधि-पीड़ित।

रोगातुर-वि० [सं०] रोग से घबराया हुआ। व्याधि से पीड़ित।

रोगार्त्त-वि० [सं०] रोग से दुःखी।

रोगाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठौषध। कुट।

रोगिणी-वि० स्त्री० दे० "रोगी"।

रोगित-वि० [सं०] पीड़ित। रोगयुक्त।

संज्ञा पुं० कुत्ते का पागलपन।

रोगितरु-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

रोगिया-संज्ञा पुं० [हिं० रोग + इया (प्रत्य०)] रोगी। बीमार।

उ०—रोगिया की को चाले बैदहिं जहाँ उपास।—जायसी।

रोगी-वि० [सं० रोगिन्] [स्त्री० रोगिनी] जो स्वस्थ न हो। जिसकी तंदुरुस्ती ठीक न हो। रोगयुक्त। व्याधिग्रस्त। बीमार। माँदा।

रोचक-वि० [सं०] (१) रुचिकारक। रुचनेवाला। अच्छा लगनेवाला। प्रिय। (२) जिसमें मन लगे। मनोरंजक। दिलचस्प। जैसे,—रोचक वृत्तांत।

संज्ञा पुं० (१) क्षुधा। भूख। (२) कदली। केला। (३) राजपलांडु। (४) एक प्रकार की ग्रंथिपर्णी जिसे नैपाल में 'भँडेउर' कहते हैं। (५) काँच की कुप्पी या शीशी बनानेवाला।

रोचकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोचक होने का भाव। मनोहरता। मनोरंजकता। दिलचस्पी।

रोचकद्वय-संज्ञा पुं० [सं०] विट् लवण और सैंधव लवण। (वैद्यक)

रोचन-वि० [सं०] (१) अच्छा लगनेवाला। रुचनेवाला। रोचक। (२) दीप्तिमान। शोभा देनेवाला। (३) प्रिय लगनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) कूट शाल्मलि। काला सेमर। (२) कांपिल्ल। कमीला। (३) श्वेत शिग्रु। सफेद सहिंजन। (४) पलांडु। प्याज। (५) आरग्वध। अमलतास। (६) करंज। करंजुवा। कंजा। (७) अंकोट। ढेरा। (८) दाड़िम। अनार। (९) रोगों के अधिष्ठाता एक प्रकार के देवता। (हरिवंश) (१०) स्वारोचिष मन्वंतर के इंद्र। (११) एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेय पुराण) (१२) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (१३) रोली। रोचना। (१४) गोरोचन।

रोचनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नीबू। (२) वंशलोचन।

रोचनफल-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

रोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्त कमल। (२) गोरोचन। (३) श्रेष्ठ स्त्री। (४) वसुदेव की स्त्री। (५) आकाश। (६) काला सेमर। (७) वंशलोचन।

रोचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आमलकी। आँवला। (२) गोरोचन। (३) मनःशिला। मैनसिल। (४) श्वेत त्रिवृता। सफेद निसोथ। (५) कमीला। (६) दंती। (७) तारका। तारा।

रोचमान-वि० [सं०] चमकता हुआ। शोभित होता हुआ।

संज्ञा पुं० (१) घोड़े की गरदन पर की एक भँवरी। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

रोचि-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचिस्] (१) प्रभा। दीप्ति। (२) प्रकट होती हुई शोभा। उ०—साहस के उर मध्य धन्यो कर, जागति, रोम की रोचि जनाई।—केशव। (३) किरण। रश्मि।

रोचिष्णु-वि० [सं०] (१) चमकदार। (२) आभूषणों आदि से जगमगाता हुआ।

रोचिस्-संज्ञा पुं० [सं०] दीप्ति। प्रभा। चमक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोची-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचिका ।

रोज-संज्ञा पुं० [सं० रोदन] (१) रोना धोना । रुदन । उ०—बरजा पितै हँसी औ रोजू ।—जायसी । (२) रोना पीटना । विलाप । स्यापा । उ०—(क) रोज सरोजनि के परै, हँसी ससी की होय ।—बिहारी । (ख) जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज ।—जायसी ।

रोज़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दिन । दिवस । जैसे,—उसे गए चार रोज़ हो गए ।

अव्य० प्रति दिन । नित्य । जैसे—वह हमारे यहाँ रोज़ आता है ।

रोज़गार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जीविका या धन संचय के लिये हाथ में लिया हुआ काम जिसमें कोई बराबर लगा रहे । व्यवसाय । धंधा । उद्योग । उद्यम । पेशा । कारबार ।

मुहा०—रोज़गार चमकना = व्यवसाय में खूब लाभ होना । **रोज़गार छूटना** = जीविका न रहना । **रोज़गार चलना** = कारबार में लाभ होना । व्यवसाय जारी रहना । **रोज़गार लगना** = जीविका का प्रबंध होना । गुज़र के लिये कोई काम मिलना । **रोज़गार लगाना** = जीविका का प्रबंध करना । कोई काम देना । निर्वाह के लिये कोई मार्ग बताना । **रोज़गार से होना** = निर्वाह के लिये किसी काम में लगना ।

(२) क्रय विक्रय आदि का आयोजन । व्यापार । तिजारत । जैसे,—वहाँ गल्ले का रोज़गार खूब है ।

रोज़गारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] व्यपारी । सौदागर । वणिक ।

रोज़नामचा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह किताब या बही जिस पर रोज़ का किया हुआ काम लिखा जाता है । दिनचर्य्या की पुस्तक । (२) प्रति दिन का जमा खर्च लिखने की बही । कच्चा चिट्ठा । खाता ।

रोज़मर्रा- अव्य० [फ़ा०] प्रति दिन । हर रोज़ । नित्य ।

संज्ञा पुं० नित्य के व्यवहार में आनेवाली भाषा । बोलचाल । चलती बोली ।

रोज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) व्रत । उपवास । (२) वह व्रत जो मुसलमान रमज़ान के महीने में ३० दिन तक रहते हैं और जिसका अंत होने पर ईद होती है ।

क्रि० प्र०—रखना ।

मुहा०—रोज़ा टूटना = व्रत खंडित हो जाना । व्रत का निर्वाह न हो पाना । **रोज़ा तोड़ना** = व्रत खंडित करना । व्रत पूरा न करना । **रोज़ा खोलना** = दिन भर भूखे रहकर शाम को पहले पहल कुछ खाना ।

रोज़ाना-क्रि० वि० [फ़ा०] प्रति दिन । हर रोज । नित्य ।

रोज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रोज़ का खाना । नित्य का भोजन ।

क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।

यौ०—रोज़ी-रोजगार ।

मुहा०—रोज़ी चलना = भोजन वस्त्र मिलता जाना । **रोज़ी चलाना** = भोजन वस्त्र आदि का ठिकाना करना ।

(२) वह जिसके सहारे किसी को भोजन वस्त्र प्राप्त हो । काम धंधा जिससे गुज़र हो । जीवन-निर्वाह का अवलंब । जीविका । रोज़गार । जैसे,—किसी की रोज़ी लेना अच्छी बात नहीं । (३) एक प्रकार का पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार व्यापारियों के चौपायों को एक एक दिन राज्य का काम करना पड़ता था ।

संज्ञा स्त्री० [देश०] गुजरात में होनेवाली एक प्रकार की कपास जिसके फूल पीले होते हैं ।

रोज़ीदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसको रोज़ाना ख़र्च के लिये कुछ मिलता है ।

रोज़ीना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रोज़ का । नित्य का ।

संज्ञा पुं० प्रति दिन की मज़दूरी, वेतन या वृत्ति आदि । जैसे,—उसको २) रोज़ीना मिलता है ।

रोज़ीबिगाड़-संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़ी + हिं० बिगाड़ना] लगी हुई रोजी को बिगड़नेवाला । जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला । निखट्टू । निकम्मा ।

रोझ-संज्ञा स्त्री० [देश०] नीलगाय । गवय ।

रोट-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी] (१) गेहूँ के आटे की बहुत मोटी रोटी । लिट ।

विशेष—ऐसी रोटी गरीब लोग खाते हैं या हाथियों को रातिब में दी जाती है ।

(२) मीठी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओं को चढ़ाया जाता है ।

रोटका-संज्ञा पुं० [देश०] बाजरा ।

रोटिका†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोटी] छोटी रोटी । फुलकी ।

रोटिहा†-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + हा (प्रत्य०)] रोटियों पर रहनेवाला नौकर । केवल भोजन पर रहनेवाला चाकर । उ०—कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोलहि बिकाउँगो । —तुलसी ।

रोटिहान†-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी] चूल्हे के पास का वह मिट्टी का छोटा चबूतरा जिस पर रोटियाँ पकाकर रखी जाती हैं ।

रोटी-संज्ञा स्त्री० [?] (१) गुँधे हुए आटे की आँच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया जो नित्य के खाने के काम में आती है । चपाती । फुलका ।

क्रि० प्र०—पकाना ।—बनाना ।—सेंकना ।

मुहा०—रोटी पोना = (१) रोटी पकाना । (२) चकले पर बेलकर गुँधे हुए आटे की टिकिया बनाना ।

(२) भोजन । रसोई । खाना । जैसे,—तुम्हारे यहाँ कब रोटी तैयार होती है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौ०—रोटी दाल।

मुहा०—**रोटी कपड़ा** = भोजन वस्त्र। खाना कपड़ा। जीवन निर्वाह की सामग्री। जैसे,—उस औरत ने रोटी कपड़े का दावा किया है। **रोटी कमाना** = जीविका उपार्जन करना। **रोटी को रोना** = भूखों मरना। अन्न-कष्ट भोगना। **किसी बात की रोटी खाना** = किसी बात से जीविका कमाना। जैसे,—वह इसी की तो रोटी खाता है। **रोटियों का मारा** = भूखा। अन्न बिना दुखी। **किसी के यहाँ रोटियाँ तोड़ना** = किसी के घर पड़ा रहकर पेट पालना। बैठे बैठे किसी का दिया खाना। **किसी को रोटियाँ लगना** = किसी को खाना पूरा मिलने से मोटाई सूझना। भरपेट भोजन पाने से इतराना। **दाल रोटी से खुश** = जिसे खाने पीने का अच्छा सुबीता हो। **रोटी दाल चलना** = जीवन-निर्वाह होना। **रोटी का पेट** = रोटी का वह पार्श्व या तल जो पहले गरम तवे पर डाला जाता है। **रोटी की पीठ** = रोटी का वह पार्श्व जो उलटने पर सेंका जाता है।

रोटीफल-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + फल] (१) एक फल जो खाने में बहुत अच्छा होता है। (२) इस फल का पेड़ जो मझोले आकार का होता है और दक्षिण में मदरास की ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोठा-संज्ञा पुं० [देश०] बाजरे की एक जाति।

रोड़ा-संज्ञा पुं० [सं० लोष्ठ, प्रा० लोट्ठ] (१) ईंट या पत्थर का बड़ा ढेला। बड़ा कंकड़। जैसे,—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा; भानमती ने कुनबा जोड़ा। (२) एक प्रकार का पंजाबी धान जो बिना सींचे उत्पन्न होता है।

मुहा०—**रोड़ा अटकाना या डालना** = विघ्न या बाधा डालना।

संज्ञा पुं० [सं० आरट्ट ?] पंजाब की अरोड़ा नामक जाति।

रोद*-संज्ञा पुं० [?] मुसलमान। (डिं०)

रोदन-संज्ञा पुं० [सं०] विलाप करना। क्रंदन। रोना। उ०—माता ताको रोदन देखि। दुख पायो मन माहिं बिसेखि। —सूर।

क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—होना।

रोदसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) भूमि। उ०—पूरित है भूरि धूरि रोदसिहि आस पास दिसि दिसि बरषा ज्यों बल निबलति है।—केशव।

रोदा-संज्ञा पुं० [सं० रोध = किनारा] (१) कमान की डोरी। धनुष की पतंचिका। चिल्ला। उ०—मानो अरविंद पै चंद्र को चढ़ाय दीनी मानो कमनैत बिनु रोदा की कमानैं द्वै।—पद्माकर। (२) सितार के परदे बाँधने की बारीक ताँत।

रोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। (२) किनारा। तट। (३) बारी।

रोधक-संज्ञा पुं० [सं०] रोकनेवाला।

रोधकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से पैंतालीसवाँ संवत्सर। (बृहत्संहिता)

रोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। अवरोध। (२) दमन। उ०—अति क्रोधन रन सोधन सदा अखिल रोधन पन किए।—गोपाल।

रोधना*-क्रि० स० [सं० रोधन] रोकना।

रोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपराध। पाप। (२) लोध्र। लोध।

रोना-क्रि० अ० [सं० रोदन, प्रा० रोअन] (१) पीड़ा, दुःख या शोक से व्याकुल होकर मुँह से विशेष प्रकार का स्वर निकालना और नेत्रों से जल छोड़ना। चिल्लाना और आँसू बहाना। रुदन करना।

संयो० क्रि०—उठना।—देना।—पड़ना।—लेना।

मुहा०—**रोना कलपना या रोना धोना** = विलाप करना। **रोना पीटना** = छाती या सिर पर हाथ मार मारकर विलाप करना। बहुत विलाप करना। **रो बैठना** = (किसी व्यक्ति या वस्तु के लिये) शोक कर चुकना। निराश होकर रह जाना। **रो रोकर** = (१) ज्यों त्यों करके। कठिनता से। दुःख और कष्ट के साथ। प्रसन्नता-पूर्वक नहीं। जैसे,—उसने रो रोकर काम किया है। (२) बहुत धीरे धीरे। बहुत रुक रुक कर। जैसे,—जब रुपया देना ही है, तब रो रोकर क्यों देते हो? **रो रोकर घर भरना** = बहुत विलाप करना। **किसी वस्तु को रोना** = किसी वस्तु के लिये पछताना या शोक करना। किसी वस्तु का दुःख मानना। जैसे,—किस्मत को रोना, नाम को रोना, रुपए को रोना। **रोना गाना** = विनती करना। दुःखपूर्वक निवेदन करना। गिड़गिड़ाना। जैसे,—उसने रो गाकर जुर्माना माफ़ करा लिया। (२) बुरा मानना। रंज मानना। चिढ़ना। जैसे,—तुम तो हँसी में रोने लगते हो। (३) दुःख करना। पछताना। जैसे,—रुपया डूब गया; अब रो रहे हैं।

संज्ञा पुं० दुःख। रंज। खेद। शोक। जैसे,—इसी का तो रोना है।

मुहा०—**रोना पड़ना या रोना पीटना पड़ना** = विलाप होना। शोक छाना। जैसे,—घर घर रोना पीटना पड़ गया।

वि० [स्त्री० रोनी] (१) थोड़ी सी बात पर भी दुःख माननेवाला। रोनेवाला। जैसे,—वह रोना आदमी है; उससे मत बोलो। (२) बात बात पर बुरा माननेवाला। चिढ़-चिढ़ा। (३) रोनेवाले का सा। मुहर्रमी। रोवाँसा। जैसे,—रोनी सूरत।

रोनी धोनी-वि० स्त्री० [हिं० रोना धोना] रोने धोनेवाली। शोक या दुःख की चेष्टा बनाए रहनेवाली। मुहर्रमी।

संज्ञा स्त्री० रोने धोने की वृत्ति। शोक या दुःख की चेष्टा। मनहूसी। जैसे,—रोनी धोनी पीछे जा; हँसनी खेलनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे आ। (स्त्रियाँ) (स्त्रियाँ बच्चों को नहलाते समय उनका अंग पोंछती हुई उक्त वाक्य कहा करती हैं।)

रोप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहराव। रुकावट। (२) मोहन। बुद्धि फेरना। (३) छेद। सूराख़। (४) बाण। तीर।
संज्ञा पुं० [देश०] हल की एक लकड़ी जो हरिस के छोर पर जंघे के पार लगी रहती है।

रोपक-वि० [सं०] (१) स्थापित करनेवाला। उठानेवाला। (२) स्थित करनेवाला। (३) जमानेवाला। लगानेवाला। (४) सोने चाँदी की एक तौल या मान जो सुवर्ण का ७० वाँ भाग होता है।

रोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रोपित, रोप्य] (१) ऊपर रखना या स्थापित करना। (२) लगाना। जमाना। बैठाना। (बीज या पौधा) (३) स्थापित करना। खड़ा करना। उठाना। (दीवार आदि) (४) मोहित करना। मोहन। (५) विचारों में गड़बड़ी डालना। बुद्धि फेरना। (६) घाव का सूखना या उस पर पपड़ी बँधना। (७) घाव पर किसी प्रकार का लेप लगाना।

रोपना-क्रि० स० [सं० रोपण] (१) जमाना। लगाना। बैठाना। (२) पौधे को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर जमाना। पौधा जमीन में गाड़ना। (३) अड़ाना। ठहराना। स्थापित करना। दृढ़ता के साथ रखना। उ०—बीच सभा अंगद पद रोप्यो, टर्‍यो न, निसिचर हारे।—सूर। (४) बीज रखना। बोना। जैसे,—बीज रोपना। (५) कोई वस्तु लेने के लिये हथेली या कोई बरतन सामने करना।
मुहा०—हाथ रोपना = माँगने के लिये हाथ फैलाना।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।

रोपनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोपना] रोपने का काम। धान आदि के पौधों को गाड़ने का काम। रोपाई। जैसे,—आज कल रोपनी हो रही है।

रोपित-वि० [सं०] (१) लगाया हुआ। जमाया हुआ। (२) स्थापित। रखा हुआ। (३) मोहित। भ्रांत। (४) उठाया हुआ। खड़ा किया हुआ।

रोब-संज्ञा पुं० [अ० रुअ़ब] [वि० रोबीला] बड़प्पन की धाक। आतंक। प्रभाव। दबदबा। तेज। प्रताप।
यौ०—रोबदार। रोबदाब।
मुहा०—रोब जमाना = बड़प्पन की धाक पैदा करना। आतंक उत्पन्न करना। रोब मिट्टी में मिलना = बड़प्पन की धाक न रह जाना। प्रभाव नष्ट होना। रोब दिखाना = बड़प्पन का प्रभाव डालना। आतंक उत्पन्न करनेवाली चेष्टा प्रकट करना। रोब में आना = (१) आतंक के कारण कोई ऐसी बात कर डालना जो यों न की जाती हो। दबदबे में पड़ जाना। बड़प्पन की चेष्टा देख प्रभावित होना। (२) भय मानना।

रोबदार-वि० [अ०] जिसकी चेष्टा से तेज और प्रताप प्रकट हो। रोबदाब वाला। भड़कीला। प्रभावशाली। तेजस्वी।

रोमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को फिर से मुँह में लाकर धीरे धीरे चबाना। जुगाली। पागुर।

रोम-संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] (१) देह के बाल। रोयाँ। लोम।
यौ०—रोमराजी। रोमावलि। रोमलता।
मुहा०—रोम रोम में = शरीर भर में। रोम रोम से = तन मन से। पूर्ण हृदय से। जैसे,—रोम रोम से आशीर्वाद देना।
(२) छेद। छिद्र। सूराख़। (३) जल। पानी।

रोमक-संज्ञा पुं० [सं०] साँभर झील का नमक। शाकंभरी लवण। पांशु लवण।
संज्ञा पुं० (१) रोम नगर का वासी। रोम देश का मनुष्य। रोमन। (२) रोम नगर या देश। (३) ज्योतिष-सिद्धांत का एक भेद।

रोमकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] ख़रगोश। खरहा।

रोमकूप-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के वे छिद्र जिनमें से रोएँ निकले हुए होते हैं। लोम छिद्र।

रोमकेशर-संज्ञा पुं० [सं०] चँवर। चामर।

रोमगुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] चँवर। चामर।

रोमद्वार-संज्ञा पुं० दे० "रोमकूप"।

रोमन कैथलिक-संज्ञा पुं० [अं०] ईसाइयों का प्राचीन संप्रदाय जिसमें ईसा की माता मरियम की, तथा अनेक संत महात्माओं की उपासना चलती है और गिरजों में मूर्त्तियाँ भी रखी जाती हैं।

रोमपाट-संज्ञा पुं० [सं०] ऊनी कपड़ा। दुशाला आदि। उ०—चामर चरम बसन बहु भाँती। रोमपाट पट अगनित जाती।—तुलसी।

रोमपाद-संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक प्राचीन राजा जिनका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण (बाल० सर्ग ९) में है।
विशेष—यह राजा बड़ा अन्यायी और अत्याचारी था। इसके पापों से एक बार भयंकर अनावृष्टि हुई। राजा ने शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर उपाय पूछा। सब ने ऋष्यशृंग मुनि को लाकर उनके साथ राजकन्या शांता का विवाह कर देने की राय दी। वेश्याओं के प्रयत्न से ऋष्यशृंग मुनि लाए गए और खूब वृष्टि हुई। तब राजा ने अपनी कन्या शांता उन्हें ब्याह दी।

रोमबद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्त्र जो रोयों से बँधा या बुना हो।
वि० जो रोयों से बँधा या बुना हो।

रोमभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। त्वक्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोमराजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रोमावलि। रोयों की पंक्ति। (२) रोयों की वह पंक्ति जो पेट के बीचो बीच नाभि से ऊपर की ओर जाती है।

रोमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोमावलि। रोमराजी। उ०—कटि अति सूक्षम उदर द्युति चलदल दल उपमान। रोमलता तन धूम अति चारु चिटीन समान।—केशव।

रोमहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रोंगटे खड़े होना। रोमांच। पुलक।

रोमहर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोयों का खड़ा होना जो अत्यंत आनंद के सहसा अनुभव से अथवा भय से होता है। (२) वेद व्यास का शिष्य, सूत पौराणिक।

वि० जिससे रोंगटे खड़े हों। भयंकर। भीषण। जैसे,—रोमहर्षण घटना।

रोमांच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद से रोयों का उभर आना। पुलक। (२) भय से रोंगटे खड़े होना।

रोमांचित-वि० [सं०] (१) पुलकित। हृष्टरोमा। (२) भय से जिसके रोंगटे खड़े हो गए हों।

रोमांतिका मसूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चेचक की तरह का एक रोग जिसमें रोमकूप के समान महीन महीन दाने शरीर भर में निकलते हैं और कई दिनों तक रहते हैं। खाँसी, ज्वर और अरुचि भी रहती है। इस रोग को छोटी माता भी कहते हैं।

रोमाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] रोएँ की नोक।

रोमाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति। रोमावली। रोमराजी।

रोमावलि, रोमावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति जो पेट के बीचो बीच नाभि से ऊपर की ओर गई होती है। रोमाली। रोमराजी। उ०—नाभिह्रद रोमावली अलि चारु सहज सुभाव।—सूर।

रोमोद्गम-संज्ञा पुं० [सं०] रोयों का हर्ष या भय से खड़ा होना।

रोमोद्भेद-संज्ञा पुं० [सं०] रोमहर्ष।

रोयाँ-संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] बाल जो सब दूध पिलानेवाले प्राणियों के शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं। लोम। रोम।

क्रि० प्र०—उखड़ना।—निकलना।—जमना।

मुहा०—एक रोयाँ न उखड़ना = कुछ भी हानि न होना। रोयाँ खड़ा होना = हर्ष या भय से रोमकूपों का उभरना। रोयाँ पसीजना = हृदय में दया उत्पन्न होना। करुणा होना। तरस आना। उ०—ईंगुर भा पहार जौ भीजा। पै तुम्हार नहिं रोवँ पसीजा।—जायसी।

रोर-संज्ञा स्त्री० [सं० रवण] (१) बहुत से लोगों के मुँह से निकलकर उठी हुई ऊँची सम्मिलित ध्वनि। कलकल। हल्ला। कोलाहल। रौला। शोर गुल। चिल्लाहट। उ०—(क) परी भोर ही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान।—तुलसी। (ख) जिनके जात बहुत दुख पायो, रोर परी यहि खेरे।—सूर।

क्रि० प्र०—उठना।—करना।—पड़ना।—मचना।

(२) बहुत से लोगों के रोने चिल्लाने का शब्द। उ०—घरी एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा।—जायसी। (३) धूम। घमासान। उपद्रव। हलचल। आंदोलन।

वि० (१) प्रचंड। तेज़। दुर्दमनीय। उ०—(क) देव-बंदीछोर, रन रोर केसरी-किसोर, जुग जुग तेरे बर विरद बिराजे हैं।—तुलसी। (ख) ते रन-रोर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।—तुलसी। (२) उपद्रवी। उद्धत। दुष्ट। अत्याचारी। उ०—(क) आपनी न बूझै, न कहे को राढ़ रोर, रे।—तुलसी। (ख) तालनि को बँधिबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरिए जू।—केशव।

रोरा-संज्ञा पुं० [हिं० रोड़ा] चूर गाँजा।

संज्ञा पुं० दे० "रोर"।

रोरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचनी] हलदी चूने से बनी हुई लाल रंग की बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। रोली। उ०—मुख मंडित रोरी रंग सेंदुर माँग छुही।—सूर।

क्रि० प्र०—लगाना।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० रोर] चहल पहल। धूम। उ०—सकल सुढंग अंग भरी भोरी। पिय निर्तत मुसकनि मुख मोरी, परिरंभन रस रोरी।—हरिदास।

वि० [हिं० रूरा] सुंदर। रुचिर। उ०—स्याम तनु राजत पीत पिछोरी। उर बनमाल, काछनी काछे, कटि किंकिनि छबि रोरी।—सूर।

संज्ञा पुं० [हिं० रोली ?] लहसुनिया नग। एक प्रकार का रत्न।

रोरुदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुदन और विलाप।

रोलंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर। भौंरा। भँवर। (२) सूखी जमीन।

वि० विश्वास न करनेवाला। अविश्वासी।

रोल*-संज्ञा स्त्री० [सं० रवण, हिं० रोर] (१) रोर। हल्ला। कोलाहल। (२) शब्द। ध्वनि। उ०—आजु भोर तमचुर की रोल। गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने ढोल।—सूर।

संज्ञा पुं० पानी का तोड़। रेला। बहाव।

संज्ञा पुं० [देश०] रुखानी की तरह का एक औज़ार जिससे बरतन की नकाशी की ज़मीन साफ़ की जाती है।

संज्ञा पुं० [सं०] हरा अदरक।

रोलर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) ढुलकनेवाली वस्तु। बेलन। बेलना। (२) छापेखाने में स्याही देने का बेलन। यह सरेस और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुड़ मिलाकर बनता है। इसी पर स्याही लगाकर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम-संज्ञा पुं० [अं०] बेलन की कमानी।

विशेष—इसमें रोलर लगाकर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहे का एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठ की दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़कर सिल पर स्याही पीसते और हर्फ़ों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] सरेस का बेलन ढालने का साँचा। यह दो प्रकार का होता है।--(१) चोंगा, जिसमें से बेलन ठेलकर निकाला जाता है। बेलन ढालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंडी का तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्ड में सरेस न पकड़ ले। (२) दो- फाँका--जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देने से रोलर सहज में निकल आता है।

रोला-संज्ञा पुं० [सं० रावण] (१) रोर। शोर गुल। कोलाहल। हल्ला। (२) घमासान युद्ध।

संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ + १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। (किसी किसी का मत है कि इसके अंत में दो गुरु अवश्य आने चाहिएँ; पर यह सर्वसम्मत नहीं है।)

† संज्ञा पुं० [देश०] जूठे बरतन माँजने का काम। चौका बरतन करने का काम।

रोली-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचनी] चूने हल्दी से बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। श्री।

विशेष—लोहे की कड़ाही में चूने का पानी भरकर उसमें हलदी, खटाई और सोना गलाने का सुहागा डालकर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखाकर छान लेते हैं।

रोवनहार*-संज्ञा पुं० [हिं० रोवना + हारा (प्रत्य०)] (१) रोनेवाला। (२) किसी के मर जाने पर उसका शोक करनेवाला कुटुंबी। उ०--रामविमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनहारा।--तुलसी।

रोवना-क्रि० अ० दे० "रोना"।

वि० [स्त्री० रोवनी] (१) बहुत जल्दी रोनेवाला। बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। (२) हँसी या खेल में भी बुरा मान जानेवाला। चिढ़नेवाला। उ०—तहौं न पायो सुयस आजु रोवना सब बोलैं।—विश्राम।

रोवनिहारा*-वि० दे० "रोवनिहारा"। उ०—राम विमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।—तुलसी।

रोवनी धोवनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना धोवना] रोनी धोनी। रोने धोने की वृत्ति। दुःख या शोक की चेष्टा। मनहूसी।

वि० दे० "रोनी धोनी"। उ०—सुख नींद कहति आली आइहौं। रोवनि धोवनि, अनखानि, अनरसनि डीठि मूठि निठुर नसाइहौं। हँसनि खेलनि, किलकनि आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं।--तुलसी।

रोवाँ†-संज्ञा पुं० दे० "रोयाँ"।

रोवासा-वि० [हिं० रोवना] [स्त्री० रोवासी] जो रोने पर तैयार हो। जो रो देना चाहता हो।

रोशन-वि० [फ़ा०] (१) जलता हुआ। प्रदीप्त। प्रकाशित। जैसे,—चिराग रोशन करना। (२) प्रकाशमान। चमकदार। (३) प्रसिद्ध। मशहूर। जैसे,—नाम रोशन होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) प्रकट। जाहिर। जैसे,—जो बात है, वह आप पर रोशन है।

मुहा०—किसी पर रोशन होना = किसी पर जाहिर होना। प्रकट होना। मालूम होना।

रोशन चौकी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] फूँककर बजाने का एक बाजा। शहनाई का बाजा। नफीरी।

विशेष—इसे प्रायः पाँच आदमी मिलकर बजाते हैं। एक केवल स्वर भरता है; दो उसके द्वारा राग रागिनी का गान करते हैं; एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और झाँझ के द्वारा ताल देता है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बाबुओं के द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है; इसी से चौकी कहलाता है।

रोशनदान-संज्ञा पुं० [फा०] प्रकाश आने का छिद्र। गवाक्ष। मोखा।

रोशनाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अक्षर लिखने की स्याही। काली। मसि। स्याही। (२) प्रकाश। रोशनी। उजाला। उ०—घाट घाट बाट बाट हाट हाट दीप ठाट जागी रोशनाई जगती के ग्राम ग्राम में।—रघुराज।

रोशनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) उजाला। प्रकाश। (२) दीपक। चिराग। जैसे,—रोशनी लाओ तो सूझे। (३) दीपमाला का प्रकाश। दीपकों की पंक्ति का उजाला। जैसे,—इस खुशी में शहर भर में रोशनी हुई। (४) ज्ञान का प्रकाश। शिक्षा का प्रकाश। जैसे,—नई रोशनी के युवक।

रोष-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रुष्ट] (१) क्रोध। कोप। गुस्सा। (२) चिढ़। कुढ़न। (३) बैर। विरोध। द्वेष। उ०—भूलि गयो सब सों रस रोष मिटैं भव के मम रैनि विभातो।—केशव। (४) लड़ाई की उमंग। जोश। उ०--विगत जलद नभ नील खड़ग यह रोस बढ़ावत।--हरिश्चंद्र।

रोषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) कसौटी। (३) ऊसर जमीन।

वि० क्रोध करनेवाला। क्रुद्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोषान्वित-वि० [सं०] क्रुद्ध ।

रोषित-वि० [सं०] क्रुद्ध । नाराज़ ।

रोषी-वि० [सं० रोषिन्] रोषयुक्त । क्रोधी । गुस्सावर । उ०--तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महाकपटी अति रोषी ।--तुलसी ।

रोस-संज्ञा पुं० दे० "रोष" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "रौस" ।

रोसनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनाई" ।

रोसनी-संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनी" ।

रोसा-संज्ञा पुं० [सं० रोहिश] रूसा नामक सुगंधित घास ।

रोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़ना । चढ़ाई । (२) कली । (३) अंकुर । अँखुवा ।

संज्ञा पुं० [देश०] नील गाय । उ०--रोह मृगा संशय बन हाँके पारथ बाना मेले ।--कबीर ।

रोहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़नेवाला । (२) रथ, घोड़े आदि पर सवारी करनेवाला । सवार ।

रोहग-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल द्वीप का एक पहाड़ जिसे अब "आदम की चोटी" कहते हैं । विदूराद्रि ।

रोहज*-संज्ञा पुं० [डिं०] नेत्र ।

रोहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़ना । चढ़ाई । (२) ऊपर को बढ़ना । (३) (पौधे का) उगना । जमना । अंकुरित होना । (४) शुक्र । वीर्य्य । (५) एक राजा का नाम । (६) विदूराद्रि पर्वत । रोहग पर्वत ।

रोहन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे सूहन और सूमी भी कहते हैं ।

विशेष—यह बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्य भारत के जंगलों में बहुत होता है। इसकी लकड़ी मकानों में लगती है और मेज़, कुरसी आदि सजावट के समान बनाने के काम में आती है । हीर की लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिए काले रंग की होती है । शिशिर में यह पेड़ पत्ते झाड़ता है ।

रोहना *-क्रि० अ० [सं० रोहण] (१) चढ़ना । (२) ऊपर की ओर जाना । (३) सवार होना ।

क्रि० स० (१) चढ़ाना । ऊपर करना । (२) सवार कराना । (३) अपने ऊपर रखना । धारण करना । उ०--एक दमयंती ऐसी हरै हँसि हंस बंस, एक हंसिनी सी विष हार हिये रोहिए ।--केशव ।

रोहि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष । पेड़ । (२) बीज । (३) व्रती । तपस्वी ।

रोहिण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल । (२) गूलर । (३) रोहिस घास । (४) दिन का दूसरा पहर जिसमें श्राद्धादि कृत्य किए जाते हैं ।

रोहिणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोध से लाल स्त्री ।

रोहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय । (२) तड़ित् । बिजली । (३) कटुंभरा । कटुका । तिक्ता । कुटकी । (४) करंज । कंजा । (५) रीठा । (६) महाश्वेता । सफ़ेद कौवाठोंठी । (७) लोहिता । रक्तपुनर्नवा । लाल गदहपूरना । (८) जैनों की विद्यादेवी । (९) काश्मरी । कंभारी । गंभारी । (१०) छोटी लंबी पीली हड़ जो गोल न हो । (इसे 'व्रणरोपिणी' भी कहते हैं।) (११) धैवत स्वर की तीन श्रुतियों में दूसरी श्रुति । (१२) रोहू की तरह की एक मछली जिसमें काँटे कम होते हैं । (१३) मंजिष्ठा । मजीठ । (१४) वसुदेव की स्त्री जो बलराम की माता थीं । (१५) नौ वर्ष की कन्या की संज्ञा । (स्मृति) (१६) पाँच वर्ष की कुमारी । (१७) सत्ताइस नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र, जो पाँच तारों से मिलकर बना हुआ और रथ की आकृति का माना गया है । पुराणों के अनुसार यह दक्ष की कन्याओं में से है और चंद्रमा की स्त्री है । (१८) ब्राह्मी बूटी । (१९) गले का एक रोग । (२०) त्वचा की छठी परत ।

रोहिणीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) वसुदेव ।

रोहिणी योग-संज्ञा पुं० [सं०] आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में रोहिणी का चंद्रमा के साथ योग ।

रोहिणीवल्लभ-संज्ञा पुं० दे० "रोहिणीपति" ।

रोहिणीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेवजी । (२) चंद्रमा ।

रोहित्-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृगी । (२) एक लता । (३) लाल रंग की घोड़ी । बड़वा । (४) नदी ।

रोहित-वि० [सं०] लाल रंग का । रक्त वर्ण । लोहित ।

संज्ञा पुं० (१) लाल रंग । (२) रोहू मछली । (३) एक प्रकार का मृग । (४) रोहितक नाम का पेड़ । (५) इंद्र-धनुष । (६) कुसुम का फूल । बर्रें का फूल । (७) केसर । कुंकुम । (८) रक्त । लहू । खून । (९) गंधर्वों की एक जाति । (वाल्मी०)

रोहितक-संज्ञा पुं० [सं०] रोहित का पेड़ । रोहेड़ा । कूट शाल्मली ।

रोहितवाह-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

रोहिताश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । (२) राजा हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम । (३) एक प्राचीन गढ़ का नाम जो सोन के किनारे पर था ।

रोहिनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "रोहिणी" ।

रोहिश-संज्ञा पुं० [सं०] रूसा नामक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है ।

रोहिष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रूसा घास । (२) रोहू मछली । (३) एक प्रकार का मृग जो गधे से मिलता जुलता होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोही-वि० [सं० रोहिन्] [स्त्री० रोहिणी] चढ़नेवाला।
संज्ञा पुं० (१) गूलर का पेड़। (२) पीपल का पेड़। (३) एक प्रकार का मृग। रोहिष। (४) रोहिष घास। (५) कूट शाल्मली। रोहित का पेड़। रुहेड़ा। (६) रोहू मछली।
संज्ञा पुं० [देश०] एक हथियार। उ०—तेगा, असील रोही। सिप्पर कि दो सिरोही।—सूदन।

रोहुन-संज्ञा पुं० [देश०] रोहन नाम का पेड़।

रोहू-संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिष] (१) एक प्रकार की बड़ी मछली इसका मांस अति स्वादिष्ट होता है। इसके सिरे को लोग अत्यंत स्वादिष्ट बनाते हैं। इसके ऊपर सेहरा होता है। (२) एक वृक्ष जो पूर्व हिमालय में विशेषतः दारजिलिंग में होता है।

रौंट†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना] (१) खेल या हँसी में बुरा मानना या रोना। जैसे,—तुमसे क्या खेलें; तुम तो खेल में रौंट करते हो। (२) चिढ़कर बेईमानी करना।
क्रि० प्र०—करना।

रौंद-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] रौंदने का भाव या क्रिया।
संज्ञा स्त्री० [अं० राउंड] चक्कर। गश्त। (सिपाही)
मुहा०—रौंद पर जाना = गश्त के लिये निकलना।

रौंदन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] रौंदने की क्रिया या भाव। मर्दन।

रौंदना-क्रि० स० [सं० मर्दन = पीड़ित करना] (१) पैरों से कुचलना। मर्दित करना। पददलित करना। जैसे,—(क) मिट्टी रौंदना। (ख) तुमने सारे पौधों को रौंद डाला। उ०—मट्टी कहै कुम्हर सों तू क्या रौंदे मोहिं। एक दिन ऐसा होयगा मैं रौंदौंगी तोहि।—कबीर।
क्रि० प्र०—डालना।—देना।
(२) लातों से मारना। खूब पीटना।

रौंदी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] चौपायों के रहने का घेरा। चौपायों के रहने का बाड़ा।

रौंसा-संज्ञा पुं० [सं० लोमश, रोमश = रोएँ वाला] (१) केवाँच। (२) केवाँच के बीज। (३) लोबिया। बोड़ा। (४) लोबिया के बीज।

रौ-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गति। चाल। रफ़्तार। (२) वेग। झोंक। जैसे,—उसकी रौ के सामने जो कुछ पड़ेगा, वह सब समेट लेगा। (३) पानी का बहाव। तोड़। (४) किसी बात की धुन। किसी काम के करने की झोंक। वेग से चलता हुआ सिलसिला। जैसे,—बात की रौ में मैंने ध्यान नहीं दिया। (५) चाल। ढंग।
ॐ‡ संज्ञा पुं० दे० "रव"।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

रौक्म-वि० [सं०] (१) रुक्म-संबंधी। (२) सोने का बना हुआ।

रौक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] रूखापन। रुखाई। रूक्षता।

रौखुर†-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो बाढ़ की बालू पड़ने से खराब हो गई हो।

रौग़न-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तेल। (२) लाख आदि का बना हुआ पक्का रंग जो चीज़ों पर चमक आदि लाने के लिये चढ़ाया जाता है।

रौग़नी-वि० [अ०] (१) तेल का। (२) रोग़न फेरा हुआ। जिस पर लाख आदि का पक्का रंग चढ़ाया गया हो। जैसे,—रौग़नी बरतन।

रौचनिक-वि० [सं०] गोरोचन या रोली संबंधी। गोरोचन या रोली से रँगा हुआ।

रौच्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्वदंड धारण करनेवाला संन्यासी।

रौज़न-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) छिद्र। बिल। सूराख़। (२) दरार। दरज़। (३) गवाक्ष। मोखा। रोशनदान।

रौज़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बाग। बगीचा। (२) बड़े पीर, बादशाह या सरदार आदि की क़ब्र के ऊपर बनी हुई इमारत। बड़े लोगों की कब्र। समाधि। जैसे,—ताज बीबी का रौज़ा।

रौत †-संज्ञा पुं० [हिं० रावत] ससुर।

रौताइन-संज्ञा स्त्री० [हिं० राव, रावत] (१) राव या रावत की स्त्री। ऊँचे पद की स्त्री। ठकुराइन। (२) स्त्रियों के लिये आदर-सूचक संबोधन।

रौताई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रावत + आई (प्रत्य०)] (१) राव या रावत होने का भाव। (२) राव या रावत का पद। ठकुराई। सरदारी। उ०—(क) दानि कहाउब औ कृपनाई। होइ कि पेम कुसल रौताई।—तुलसी। (ख) मीठो अरु कठवति भरो, रौताई औ पेम।—तुलसी। (ग) रौताई औ कूसल पेमा।—जायसी।

रौदा ‡-संज्ञा पुं० दे० "रोदा"।

रौद्र-वि० [सं०] (१) रुद्र संबंधी। (२) अत्यंत उग्र और प्रचंड। भयंकर। डरावना। (३) क्रोधपूर्ण या क्रोध-सूचक। ग़ज़बनाक।
संज्ञा पुं० (१) क्रोध। गुस्सा। रोष। (२) काव्य के नौ रसों में से एक जिसमें क्रोधसूचक शब्दों और चेष्टाओं का वर्णन होता है। (३) धूप। घाम। (४) यमराज। (५) ग्यारह मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर १४४ हो सकते हैं। (६) साठ संवत्सरों में से ५४ वाँ संवत्सर। (७) एक प्रकार का अस्त्र। (८) एक केतु जिसकी चोटी नुकीली और ताम्रवर्ण कही गई है।

रौद्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के पूर्व दक्षिण मार्ग में शूल के अग्र भाग के समान कपिश (कपासी), रूक्ष (रूखा), ताम्रवर्ण किरणों से युक्त और आकाश के तीन भाग तक में गमन करनेवाला एक केतु।—बृहत्संहिता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रौद्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डरावनापन । भयंकरता । भीषणता । (२) प्रचंडता । प्रखरता । उग्रता ।

रौद्रदर्शन–वि० [सं०] देखने में डरावना । भयंकर रूप का । भीषण आकृति और चेष्टावाला ।

रौद्रार्क–संज्ञा पुं० [सं०] २३ मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर ४६३६८ प्रकार के हो सकते हैं ।

रौद्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्र की पत्नी, गौरी । देवी । (२) गांधार स्वर की दो श्रुतियों में से पहली श्रुति ।

रौन ॐ–संज्ञा पुं० दे० "रमण" ।

रौनक़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वर्ण और आकृति । रूप । (२) चमक दमक । तेज । दीप्ति । कांति । जैसे,—चेहरे पर रौनक होना । (३) प्रफुल्लता । विकास । जैसे,—सुनते ही चेहरे की रौनक़ उड़ गई । (४) शोभा । छटा । चहल पहल । सुहावनापन । जैसे,—व्यापार गिर जाने से शहर की रौनक़ जाती रही ।

रौना †–संज्ञा पुं० [सं० रमण] द्विरागमन । गौना । मुकलावा । संज्ञा पुं० दे० "रोना" । उ०—टौना अँखि बस करन कौ करे हेत इन जाइ । अब उलटे रौना पर्‍यौ गरे दृगन के आइ ।—रसनिधि ।

रौनी ॐ–संज्ञा स्त्री० दे० "रमणी" ।

रौप्य–संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी । रूपा ।

वि० चाँदी का बना हुआ । चाँदी का । रूपे का ।

रौमक–संज्ञा पुं० [सं०] साँभर नमक ।

रौम लवण–संज्ञा पुं० [सं० [साँभर नमक ।

रौरव–वि० [सं०] (१) भयंकर । डरावना । घोर । (२) बे-ईमान । धूर्त्त । कपटी । (३) बात पर दृढ़ न रहनेवाला । चंचल । (४) रुरु मृग संबंधी ।

संज्ञा पुं० एक भीषण नरक का नाम जो २१ नरकों में से पाँचवाँ कहा गया है ।

रौरा †–संज्ञा पुं० दे० "रौला" ।

† सर्व० [हिं० रावरा] [स्त्री० रौरी] आपका ।

रौराना †–क्रि० स० [हिं० रोर, रौरा] प्रलाप करना । व्यर्थ बोलना या हल्ला करना । बकना । उ०—अब यह और सृष्टि विरहिन की बकत बाइ रौरानी ।—सूर ।

रौरे †–सर्व० [हिं० राव, रावल] आप । (आदर का संबोधन) उ०—भलउ कहत दुख रौरेहि लागा ।—तुलसी ।

रौला–संज्ञा पुं० [सं० रवण] (१) हल्ला । गुल । शोर । हुल्लड़ । धूम । (२) ऊधम । हलचल ।

क्रि० प्र०—करना ।—मचना ।—मचाना ।—होना ।

रौलि †–संज्ञा स्त्री० [देश०] धौल । चपत । झापड़ । तमाचा । उ०—बाँका गढ़ बाँका मता बाँकी गढ़ की पौलि । काढ़ि कबीरा नीकसा जम सिर घाली रौलि ।—कबीर ।

रौशन–वि० दे० "रोशन" ।

रौशनदान–संज्ञा पुं० दे० "रोशनदान" ।

रौशनी–संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनी" ।

रौस–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रविश] (१) गति । चाल । (२) रंग ढंग । तौर तरीक़ा । चाल ढाल । (३) बाग़ की पटरी । बाग की क्यारियों के बीच का मार्ग । उ०—रौस हौज बहु कटी कियारी । चौक चारु चहुँ कित चित हारी ।—रघुराज ।

रौसली–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिकनी उपजाऊ मिट्टी । डाकर ।

रौसा–संज्ञा पुं० दे० "रौंसा" ।

रौहाल–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) घोड़े की एक चाल । (२) घोड़े की एक जाति । उ०—यदपि तेज रौहाल बर लगी न पलकौ बार । तउ ग्वैंडौ घर कौ भयौ पैंडौ कोस हज़ार ।—बिहारी ।

रौहिण–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन ।

रौहिणेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिणी के पुत्र, बलराम । (२) बुध ग्रह । (३) पन्ना । मरकत । (४) गाय का बछड़ा ।

र्‍यासद †–संज्ञा स्त्री० दे० "रियासत" । उ०—दुर्जन दुरासद वर सभासद विश्व र्‍यासद शाह हैं ।—रघुराज ।

र्‍योरी–संज्ञा स्त्री० दे० "रेवड़ी" ।

ल

ल–व्यंजन वर्ण का अट्ठाईसवाँ वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंत है । इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं । यह अल्पप्राण है ।

लंक–संज्ञा स्त्री० [सं०] कमर । कटि ।

संज्ञा स्त्री० [सं० लंका] लंका नामक द्वीप ।

विशेष—इस रूप में इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है । जैसे,—लंकनाथ, लंकपति ।

लंकटंकटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुकेश राक्षस की माता और विद्युत्केश की कन्या का नाम । (२) संध्या की कन्या का नाम ।

लंकनाथ, लंकनायक–संज्ञा पुं० [हिं० लंक + सं० पति या नायक] (१) रावण । (२) विभीषण । उ०—(क) तब लंकनाथ रिसाय कै । भो चलत लव पहँ धाय कै ।—लवकुश चरित्र । (ख) जाति बानर लंकनायक दूत अंगद नाम है ।—केशव ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंकलाट-संज्ञा पुं० [अं० लांग क्लाथ] एक प्रकार का मोटा बढ़िया कपड़ा जो प्रायः धुला हुआ होता है।

लंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भारत के दक्षिण का एक टापू जहाँ रावण का राज्य था। लोगों का विश्वास है कि रावण के समय यह टापू सोने का था। (२) शिंबी धान्य। (३) असबरग। स्पृक्का। (४) काला चना। (५) शाखा। डाली।

लंकादाही-संज्ञा पुं० [सं० लंकादाहिन्] हनुमान।

लंकाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

लंकापति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण। (२) विभीषण। उ०—भेंट्यौ हरि भरि अंक भरत ज्यौं लंकापति मनु भायो।—तुलसी।

लंकायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] असबरग। स्पृक्का।

लंकारि-संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र।

लंकाल-संज्ञा पुं० [डिं०] सिंह। शेर।

लंकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षसी जिसे हनुमान जी ने लंका में प्रवेश करते समय घूँसों से मार डाला था।

लंकेश-संज्ञा पुं०[सं०] (१) रावण। (२) विभीषण।

लंकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

लंकोई-संज्ञा स्त्री० दे० "लंकोदक"।

लंकोदक-संज्ञा पुं०[सं०] असबरग। स्पृक्का।

लंग-संज्ञा स्त्री० दे० "लाँग"। उ०—लोगन की लंग ज्यौं लुगाइन की लाग री।—देव।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] लँगड़ापन।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का यार। उपपति।

लंगक-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का यार। उपपति।

लँगटी-संज्ञा स्त्री० दे० "लँगोटी"।

लंगड़-वि० दे० "लँगड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "लंगर"।

लँगड़ा-वि० [फ़ा० लंग] (१) जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हो। (२) जिसका एक पाया टूटा हो।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बढ़िया कलमी आम जो प्रायः बनारस में होता है।

लँगड़ाना-क्रि० अ० [हिं० लँगड़ा] चलने में दोनों या चारों पैरों का ठीक ठीक और बराबर न बैठना, बल्कि किसी एक पैर का कुछ रुक या दबकर पड़ना। लंग करते हुए चलना। लँगड़े होकर चलना।

लँगड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगड़ा] एक प्रकार का छंद। उ०—साज आलै अबज में, तेहि प्रकाश चहुँ ओर। सब तिथि निशि में अतिथि सी राकी कन्यो प्रकाश।—गुमान।

वि० [हिं०] बली। बलवान्। जोरावर।

लंगर-संज्ञा पुं० [फा० मि० अं० एन्कर] (१) लोहे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत बड़ा काँटा जिसके बीच में एक मोटा लंबा छड़ होता है; और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी झुकी हुई नुकीली शाखाएँ और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है। इसका व्यवहार बड़ी बड़ी नावों या जहाजों को जल में किसी एक ही स्थान पर ठहराए रखने के लिये होता है। इसके ऊपर कड़े में मोटा रस्सा या जंजीर आदि बाँधकर इसे नीचे पानी में छोड़ देते हैं। जब यह तल में पहुँच जाता है, तब इसके टेढ़े अँकुड़े जमीन के कंकड़-पत्थरों में अड़ जाते हैं, जिसके कारण नाव या जहाज उसी स्थान पर रुक जाता है; और जब तक यह फिर खींचकर ऊपर नहीं उठा लिया जाता, तब तक नाव या जहाज आगे नहीं बढ़ सकता।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—छोड़ना।—डालना।—फेंकना।—होना।

यौ०—लंगरगाह।

(२) लकड़ी का वह कुंदा जो किसी हरहाई गाय के गले में रस्सी द्वारा बाँध दिया जाता है। इसके बाँधने से गाय इधर उधर भाग नहीं सकती। ठेंगुर। (३) रस्सी या तार आदि से बँधी और लटकती हुई कोई भारी चीज जिसका व्यवहार कई प्रकार की कलों में और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदि में होता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—हिलना।

विशेष—इस प्रकार का लंगर प्रायः निरंतर एक ओर से दूसरी ओर आता जाता रहता है। कुछ कलों में इसका व्यवहार ऐसे पुरजों का भार ठीक रखने में होता है, जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधर उधर हटते बढ़ते रहते हैं। बड़ी घड़ियों में जो लंगर होता है, वह चाभी दी हुई कमानी के जोर से एक सीधी रेखा में इधर से उधर चलता रहता है और घड़ी की गति ठीक रखता है।

(४) जहाजों में का मोटा बड़ा रस्सा। (५) लोहे की मोटी और भारी जंजीर उ०—हाथी ते उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में।—भूषण।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

(६) चाँदी का बना हुआ तोड़ा जो पैर में पहना जाता है। इसकी बनावट जंजीर की सी होती है। (७) किसी पदार्थ के नीचे का वह अंश जो मोटा और भारी हो। (८) कमर के नीचे का भाग। (९) अंडकोश। (बाजारू) (१०) पहलवानों का लँगोट।

मुहा०—लंगर बाँधना = (१) पहलवानी करना। (२) ब्रह्मचर्य्य धारण करना। लंगर लँगोट कसना या बाँधना = लड़ने को तैयार होना। लंगर लँगोट (किसी को) देना या आगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखना = पहलवानी सीखने के लिये किसी पहलवान का शिष्य बनना।

(११) वह (स्थान या व्यक्ति आदि) जिसके द्वारा किसी को किसी प्रकार का आश्रय या सहारा मिलता हो। (क्व०) (१२) कपड़े में के वे टाँके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा अथवा एक साथ सीए जानेवाले दो कपड़े अपने स्थान से हट न जायँ। इस प्रकार के टाँके पक्की सिलाई करने से पहले डाले जाते हैं; और इसी लिये इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—तोड़ना।—भरना।

(१३) वह उभड़ी हुई रेखा जो अंडकोश के नीचे के भाग से आरंभ होकर गुदा तक जाती है। सीयन। सीवन। (१४) वह पका हुआ भोजन जो प्रायः नित्य किसी निश्चित समय पर दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटा जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।—लगाना।

यौ०—लंगरखाना।

(१५) वह स्थान जहाँ दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटने के लिये भोजन पकाया जाता हो। (१६) वह स्थान जहाँ बहुत से लोगों का भोजन एक साथ पकता हो।

वि० (१) जिसमें अधिक बोझ हो। भारी। वजनी। (२) शरीर। नटखट। ढीठ। उ०—(क) लरिका लैबे के मिसनि लंगर मो ढिग आय। गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय।—बिहारी। (ख) सूर श्याम दिन दिन लंगर भयो दूरि करौं लँगरैया।—सूर।

मुहा०—लंगर करना = शरारत या ढिठाई करना। उ०—बोलि लियो बलरामहिं यशुमति। आवहु लाल सुनो हरि के गुण कालिहि ते लंगर्‌यो करत अति।—सूर।

वि० दे० "लँगड़ा"।

लँगरई ॐ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] ढिठाई। शरारत। नटखटपन। उ०—बाँधौं आजु कौन तोहि छोरै। बहुत लँगरई कीन्ही मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै।—सूर।

लंगरखाना–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ से दरिद्रों को बना बनाया भोजन बाँटा जाता हो।

लंगरगाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] किनारे पर का वह स्थान जहाँ लंगर डालकर जहाज ठहराए जाते हैं।

लँगराई ॐ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर + आई (प्रत्य०)] ढिठाई। शरारत। उ०—अजहूँ छोड़ोगे लँगराई दोउ कर जोरि जननि पै आये।—सूर।

लँगराना †–क्रि० अ० दे० "लँगड़ाना"।

लंगूर–संज्ञा पुं० [सं० लांगूली] (१) बंदर। (२) पूँछ। दुम। (बंदर की) (३) एक विशेष प्रकार का बंदर जो साधारण बंदर से बड़ा होता है और जिसकी पूँछ बहुत अधिक लंबी होती है। इसके सारे शरीर पर सफेद रंग के रोएँ होते हैं और मुँह, हाथ की हथेलियाँ तथा पैर के तलवे और उँगलियाँ आदि काली होती हैं।

लंगूरफल–संज्ञा पुं० [हिं० लंगूर + सं० फल] नारियल। उ०—वानरमुख लंगूरफल नारिकेलि सुभ काम। ये तरुनी के नारियर तो कहँ करत प्रनाम।—नंददास।

लंगूरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगूर + ई (प्रत्य०)] (१) घोड़े की एक चाल जिसमें वह उछल उछलकर चलता है। (२) वह इनाम जो चोरों को उस समय दिया जाता है, जब वे चोरी गए हुए मवेशियों का पता लगा देते हैं।

लंगूल–संज्ञा पुं० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम।

लँगोट, लँगोटा–संज्ञा पुं० [सं० लिंग + ओट] [स्त्री० लँगोटी] कमर पर बाँधने का एक प्रकार का बना हुआ वस्त्र जिससे केवल उपस्थ ढका जाता है। यह प्रायः लंबी पट्टी के आकार का अथवा तिकोना होता है, जिसमें दोनों ओर कमर पर लपेटने के लिये बंद लगे रहते हैं। प्रायः पहलवान लोग कुश्ती लड़ने या कसरत करने के समय इसे पहना करते हैं। रूमाली।

यौ०—लँगोटबंद = ब्रह्मचारी। स्त्री-त्यागी।

लँगोटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगोट] कोपीन। कछनी। भगई। उ०—रोटी गहे हाथ में सुचोटी गुहे माथ में, लँगोटी कछे नाथ साथ बालक बिलासी है।

मुहा०—लँगोटिया यार = बचपन का मित्र। उस समय का मित्र, जब कि दोनों लँगोटी बाँधकर फिरते हों। लँगोटी पर फाग खेलना = थोड़ा ही साधन होने पर विलासी होना। कम सामर्थ्य होने पर भी बहुत अधिक व्यय करना। लँगोटी बँधवाना = बहुत दरिद्र कर देना। इतना धनहीन कर देना कि पास में लँगोटी के सिवा और कुछ न रह जाय। लँगोटी बिकवाना = इतना दरिद्र कर देना कि पहनने के वस्त्र तक न रह जायँ।

लंघक–वि० [सं०] (१) लाँघनेवाला। अतिक्रमण करनेवाला। (२) नियम का भंग करनेवाला। कायदा तोड़नेवाला।

लंघन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपवास। अनाहार। फाका। कुछ न खाना। उ०—(क) जिन नैनन को है सही मोहन रूप अहार। तिनको बैद बतावहीं लंघन को उपचार।—रसनिधि। (ख) धाम धाम माँगैं भीख लंघन सुनाई है।—रघुराज। (२) लाँघने की क्रिया। डाँकना। (३) अतिक्रमण। (४) घोड़े की एक चाल जिसमें वह बहुत तेज चलता है। (५) वह उपाय जिससे किसी काम में लाघव या सुभीता हो।

लंघनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके द्वारा लाँघा जाय। (२) सेतु। पुल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंघनाॐ-क्रि० स० [सं० उल्लंघन] किसी वस्तु के ऊपर से होकर इस ओर से उस ओर जाना । लाँघना । नाँघना । डाँकना । उ०—जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधरे को सब कछु दरसाई ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] अवमानना । उपेक्षा । लापरवाही ।

लंघनीय-वि० [सं०] (१) लाँघने के योग्य । (२) उल्लंघन करने के योग्य ।

लंज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर । पाँव । (२) काछ । (३) पूँछ । दुम । (४) लंपटता । (५) स्रोत । सोता ।

संज्ञा स्त्री० लक्ष्मी ।

लंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।

लंठ-वि० [हिं० लट्ठ] मूर्ख । उजड्ड ।

लंड-संज्ञा पुं० [सं०] पुरीष । विष्ठा । गू ।

संज्ञा पुं० [सं० लिंग] पुरुष की मूत्रेंद्रिय ।

लँडूरा-वि० [देश० या सं० लांगूल] बिना पूँछ का । जिसकी सब पूँछ कट गई हो । (पक्षी)

लंतरानी-संज्ञा स्त्री० [अ०] व्यर्थ की बड़ी बड़ी बातें । शेखी ।

क्रि० प्र०—करना ।—हाँकना ।

लंप-संज्ञा पुं० [अं०] दीपक । चिराग ।

लंपक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक संप्रदाय ।

लंपट-वि० [सं०] व्यभिचारी । विषयी । कामी । कामुक । उ०—लोभी लंपट लोलुप चारा । जे ताकहिं पर धन पर दारा ।—तुलसी ।

संज्ञा पुं० स्त्री का उपपति । यार ।

लंपटता-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंपट होने का भाव । दुराचार । कुकर्म ।

लंपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंपट । दुराचारी । (२) पुराणानुसार एक देश का नाम जिसे मुरंड भी कहते थे । यह देश भारत के उत्तर-पश्चिम में था ।

लंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रेखा जो किसी दूसरी रेखा पर इस भाँति गिरे कि उसके साथ समकोण बनावे ।

क्रि० प्र०—गिराना ।—डालना ।

(२) एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था । इसी को प्रलंबासुर भी कहते हैं । (३) शुद्ध राग का एक भेद । (४) वह जो नाचता हो । नाचनेवाला । (५) अंग । (६) पति । (७) एक दैत्य का नाम । (८) एक मुनि का नाम । (९) ज्योतिष में एक प्रकार की रेखा जो विषुव रेखा के समानांतर होती है । (१०) ज्योतिष में ग्रहों की एक प्रकार की गति ।

संज्ञा स्त्री० दे० "विलंब" ।

वि० [सं०] लंबा । उ०—(क) युग अवलंब लंब भुज चारी ।—रघुराज । (ख) अस कहि लंब फरस बिछवायो ।—रघुराज ।

लंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पुस्तक का एक अध्याय । (२) मुख का एक रोग । (३) ज्योतिष में एक प्रकार के योग जो संख्या में पंद्रह होते हैं ।

लंबकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा । (२) हाथी । (३) अंकोट वृक्ष । (४) राक्षस । (५) बाज पक्षी । (६) गदहा । खर । (७) खरगोश ।

वि० जिसके कान लंबे हों ।

लंबग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।

लंबतड़ंग-वि० [सं० लंब + ताड़ + श्रृंग] ताड़ के समान लंबा । बहुत लंबा ।

लंबदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहल देश की पिप्पली ।

लंबन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले का वह हार जो नाभि तक लटकता हो । (२) झूलने की क्रिया । (३) अवलंब । आश्रय । सहारा । (४) कफ ।

लंबपयोधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

लंबर-संज्ञा पुं० दे० "नंबर" ।

लंबरदार-संज्ञा पुं० दे० "नंबरदार" ।

लंबा-वि० [सं० लंब] [स्त्री० लंबी] (१) जिसके दोनों छोर एक दूसरे से बहुत अधिक दूरी पर हों । जिसका विस्तार, आयतन की अपेक्षा, बहुत अधिक हो । जो किसी एक ही दिशा में बहुत दूर तक चला गया हो । "चौड़ा" का उलटा । जैसे,—लंबा बाल, लंबा बाँस, लंबा सफर ।

मुहा०—लंबा करना = (१) (आदमी को) रवाना करना । चलता करना । (२) जमीन पर पटक या लेटा देना । चित करना । उ०—खर नास्यो इन समर अनल खरनासै जैसे । कियो भूमि पर लंब नासि परलंबहि तैसे ।—गि० दास । लंबा बनना या होना = चल देना । रवाना होना । प्रस्थान करना । (व्यंग्य और परिहास)

यौ०—लंबा चौड़ा = जिसका आयतन और विस्तार दोनों बहुत अधिक हों । जैसे,—लंबा चौड़ा मैदान ।

(२) जिसकी ऊँचाई अधिक हो । ऊपर की ओर दूर तक उठा हुआ । जैसे,—लंबा आदमी । (३) (समय) जिसका विस्तार अधिक हो । जैसे,—(क) गरमी में दिन बहुत लंबा होता है । (ख) तुम तो सदा लंबी मुद्दत का वादा करते हो । (४) विशाल । दीर्घ । बड़ा । जैसे,—इतना लंबा खर्च रखना ठीक नहीं ।

लंबाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा होने का भाव । लंबापन । जैसे,—(क) इस जमीन की लंबाई पचास गज है । (ख) यह कपड़ा लंबाई में कुछ कम है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लंबान-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा] लंबाई।

लंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले के अंदर की घंटी।

लंबित-वि० [सं०] लंबा।

संज्ञा पुं० मांस।

लंबी-वि० स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा का स्त्री-लिंग रूप।

मुहा०—लंबी तानना = लेटकर सो जाना। उ०—इस समय मेरे अतिरिक्त सब लंबी ताने सोते होंगे।—हरिऔध। लंबी साँस लेना = अत्यंत दुःख या खेद से साँस लेना। ठंढी साँस लेना।

लंबुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नाग का नाम। (२) ज्योतिष में एक प्रकार के योग जिनकी संख्या पंद्रह है। लंबक।

लंबोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) वह जो बहुत अधिक खाता हो। पेटू।

लंबोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) एक प्रकार के क्षेत्रपाल देवता।

लंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि। (२) लांछना। कलंक।

ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) पृथ्वी।

लउआ †-संज्ञा पुं० दे० "घिया"।

लउकी †-संज्ञा स्त्री० दे० "घिया"।

लकच-संज्ञा पुं० दे० "लकुच"।

लकड़बग्घा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + बाघ] एक मांसाहारी जंगली जंतु जो भेड़िए से कुछ बड़ा होता है। यह कुत्तों का मांस बहुत पसंद करता है। लग्घड़।

लकड़हारा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + हारा] जंगल से लकड़ी तोड़ कर बेचनेवाला।

लकड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] लकड़ी का मोटा कुंदा। लक्कड़।

लकड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] (१) पेड़ का कोई स्थूल अंग (डाल, तना आदि) जो कटकर उससे अलग हो गया हो। काष्ठ। काठ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः मेज, कुरसी, किवाड़े आदि सामान बनाने में होता है।

(२) ईंधन। जलावन।

मुहा०—लकड़ी देना = मुरदे को जलाना।

(३) गतका। (४) छड़ी। लाठी।

मुहा०—लकड़ी सा = बहुत दुबला पतला। लकड़ी चलना = लाठी से मारपीट होना। लकड़ी होना = (१) सूख कर काँटा होना। बहुत दुबला पतला होना। (२) सूखकर बहुत कड़ा हो जाना। जैसे,—रोटी सूखकर लकड़ी हो गई।

लक़ब-संज्ञा पुं० [अ०] उपाधि। खिताब। पदवी।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

लकरी †-संज्ञा स्त्री० दे० "लकड़ी"।

लक़लक़-संज्ञा पुं० [अ०] लंबी गर्दन का एक जलपक्षी। ढेंक।

वि० बहुत दुबला पतला।

लक़वा-संज्ञा पुं० [अ०] एक वात रोग जिसमें प्रायः चेहरा टेढ़ा हो जाता है। यह चेहरे के अतिरिक्त और और अंगों में भी होता है; और जिस अंग में होता है, उसे बिलकुल बेकाम कर देता है। इसमें शरीर के ज्ञान तंतुओं में एक प्रकार का विकार आ जाता है, जिससे कोई कोई अंग हिलने डोलने या अपना ठीक ठीक काम करने के योग्य नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—गिरना।

मुहा०—लकवा मारना या मार जाना = शरीर के किसी अंग में लकवे का रोग हो जाना।

लकसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी + अँकुसी] फल आदि तोड़ने की लग्गी जिसके ऊपरी सिरे पर लोहे का चंद्राकार फल या एक तिरछी छोटी लकड़ी बँधी रहती है। इसी लग्गी को हाथ में लेकर ऊपरी सिरे में बँधी हुई छोटी लकड़ी या फल की सहायता से ऊँचे वृक्षों के फल आदि तोड़ते हैं।

लकाटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके नरों के अंडकोशों में से एक प्रकार का मुश्क निकलता है।

लकीर-संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा, हिं० लीक] (१) कलम आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार बनी हुई वह सीधी आकृति जो बहुत दूर तक एक ही सीध में चली गई हो। रेखा। खत।

मुहा०—लकीर का फकीर = वह जो बिना समझे बूझे किसी प्राचीन प्रथा पर चला चलता हो। आँखें बंद करके पुराने ढंग पर चलनेवाला। लकीर पीटना = बिना समझे बूझे पुरानी प्रथा पर चले चलना। लकीर पर चलना = दे० "लकीर पीटना"

क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।

(२) वह चिह्न जो दूर तक रेखा के समान बना हो। (३) धारी। (४) पंक्ति। सतर।

क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।

लकुच-संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर।

संज्ञा पुं० दे० "लकुट"।

लकुट-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लाठी। छड़ी।

संज्ञा पुं० [सं० लकुच] (१) मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में और विशेषतः बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। इसकी डालियाँ टेढ़ी मेढ़ी और छाल पतली तथा खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों के सिरे पर गुच्छों में पत्ते लगते हैं जो अनीदार और कँगूरेदार होते हैं। साथ में सफेद रंग के छोटे छोटे फूलों के भी गुच्छे लगते हैं। (२) इस वृक्ष का फल जो प्रायः गुलाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामुन के समान होता और वसंत ऋतु में पकता है। यह फल मीठा होता है और खाया जाता है। लुकाठ। लखोट।

लकुटी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] लाठी। छड़ी।

लकोटा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जिसके बालों से शाल, दुशाले आदि बनाए जाते हैं।

लक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] काठ का बड़ा कुंदा।

लक्का-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का कबूतर जो खूब छाती उभाड़कर चलता है और जिसकी पूँछ पंखे सी होती है।

लक्का कबूतर-संज्ञा पुं० [हिं० लक्का + कबूतर] (१) नाच की एक गत जिसमें नाचनेवाला कमर के बल इतना झुकता है कि सिर प्रायः भूमि के निकट तक पहुँच जाता है। यह झुकाव बगल की ओर होता है। (२) दे० "लक्का"।

लक्खी-वि० [हिं० लाख] लाख के रंग का। लाखी।

संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति।

संज्ञा पुं० [हिं० लाख (संख्या)] वह जिसके पास लाखों रुपए हों। लखपती।

लक्त-वि० [सं०] लाल। सुर्ख।

लक्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलता, जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। अलक्तक। (२) बहुत फटा हुआ पुराना कपड़ा। चीथड़ा। लत्ता।

लक्तकर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लोध।

लक्ष-वि० [सं०] एक लाख। सौ हजार।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अंक जिससे एक लाख की संख्या का ज्ञान हो। जैसे,—१००००० । (२) पैर। (३) चिह्न। निशान। (४) दे० "लक्ष्य"। (५) अस्त्र का एक प्रकार का संहार। उ०—लक्ष अलक्ष युगल दृढ़नाभ सुनाभ दशाक्ष शतानन।—रघुराज।

लक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो लक्ष करा दे। जता देनेवाला। (२) वह शब्द जो संबंध या प्रयोजन से अपना अर्थ सूचित करे।

लक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ की वह विशेषता जिसके द्वारा वह पहचाना जाय। वे गुण आदि जो किसी पदार्थ में विशिष्ट रूप से हों और जिनके द्वारा सहज में उसका ज्ञान हो सके। चिह्न। निशान। आसार। जैसे,—आकाश के लक्षण से जान पड़ता है कि आज पानी बरसेगा। (२) नाम। (३) परिभाषा। (४) शरीर में दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोग के सूचक हों। जैसे,—इस रोगी में क्षय के सभी लक्षण दिखाई देते हैं। (५) दर्शन। (६) सारस पक्षी। (७) सामुद्रिक के अनुसार शरीर के अंगों में होनेवाले कुछ विशेष चिह्न जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। जैसे,—चक्रवर्त्ती और बुद्ध के लक्षण एक से होते हैं। (८) शरीर में होनेवाला एक विशेष प्रकार का काला दाग जो बालक के गर्भ में रहने के समय सूर्य्य या चंद्रग्रहण लगने के कारण पड़ जाता है। लच्छन। (९) चाल ढाल। तौर तरीका। रंग ढंग। जैसे,—आजकल तुम्हारे लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। (१०) दे० "लक्ष्मण"।

लक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लक्षण शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अर्थ लक्षित हो जाता है। शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अभिप्राय सूचित होता है।

विशेष—कभी कभी ऐसा होता है कि शब्द के साधारण अर्थ से उसका वास्तविक अभिप्राय नहीं प्रकट होता। वास्तविक अभिप्राय उसके साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है। शब्द की जिस शक्ति से उसका वह साधारण से भिन्न और दूसरा वास्तविक अर्थ प्रकट होता है, उसे लक्षणा कहते हैं। साहित्य में यह शक्ति दो प्रकार की मानी गई है—निरूढ़ और प्रयोजनवती। (वि० दे० ये दोनों शब्द।)

(२) मादा हंस। हंसी। (३) मादा सारस। सारसी। (४) छोटी भटकटैया। (५) एक अप्सरा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

लक्षणी-वि० [सं० लक्षणिन्] (१) जिसमें कोई लक्षण या चिह्न हो। (२) लक्षण जाननेवाला।

लक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लाख की संख्या।

लक्षि-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"। उ०—सुनहिं सुमुखि तो को ल्यावतो लक्षि दासी।—केशव।

संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्य"। उ०—बाण की वायु उड़ाय कै लक्षन लक्षि करौं अरिहा समरत्थहि।—केशव।

लक्षित-वि० [सं०] (१) बतलाया हुआ। निर्दिष्ट। (२) देखा हुआ। (३) अनुमान से समझा या जाना हुआ। (४) जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना हो।

संज्ञा पुं० वह अर्थ जो शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षित लक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा।

लक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियों को मालूम हो जाय। जिसका पर-पुरुष-प्रेम दूसरों को ज्ञात हो।

लक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गंगाधर और खंजन भी कहते हैं। उ०—कोटि बाधा कटैं पाप सारे घटैं शंभु शंभू रटैं नाथ जो मान कै।—जगन्नाथप्रसाद।

लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रघुवंशी राजा दशरथ के चार पुत्रों में से दूसरे पुत्र, जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। जब मिथिला में रामचंद्रजी ने धनुष तोड़ा था, तब विश्वामित्र के बिगड़ने पर इन्होंने उनसे वादविवाद किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी अवसर पर ऊर्म्मिला के साथ इनका विवाह हुआ था। यद्यपि इनका स्वभाव बहुत ही उग्र और तीव्र था, तथापि ये अपने बड़े भाई रामचंद्र के बहुत बड़े भक्त थे; और सदा उनके अनुगामी रहते थे। जब रामचंद्रजी वन को जाने लगे थे, तब ये भी अयोध्या का सारा सुख छोड़कर केवल भक्ति और प्रेमवश उनके साथ हो लिए थे। वन में ये सदा सब प्रकार से उनकी सेवा किया करते थे। रावण की बहन शूर्पनखा की नाक इन्हींने काटी थी। जिस समय मारीच सोने के मृग का रूप धरकर आया था और रामचंद्र उसे मारने निकले थे, उस समय सीता की रक्षा के लिये यही कुटी में थे। पर पीछे से सीता के बहुत आग्रह करने पर ये रामचंद्र का पता लगाने के लिये जंगल में गए। राम-रावण युद्ध के समय ये बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे और मेघनाद का वध इन्हींने किया था। उस युद्ध में ये एक बार शक्ति-बाण लगने के कारण मूर्च्छित हो गए थे, जिस पर रामचंद्रजी ने बहुत अधिक विलाप किया था। पर शीघ्र ही इनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी और ये फिर उठकर लड़ने लगे थे। जिस समय सीताजी अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिये अग्निप्रवेश करने को प्रस्तुत हुई थीं, उस समय रामचंद्रजी की आज्ञा से इन्हींने सीता के लिये चिता तैयार की थी। रामचंद्र के वनवास के कारण ये अपने पिता राजा दशरथ और भाई भरत से बहुत अप्रसन्न हो गए थे; पर पीछे से भरत की ओर से इनका मन साफ़ हो गया था और इन्होंने समझ लिया था कि इसमें भरत का कोई दोष नहीं है। ये बहुत ही तेजस्वी, वीर और शुद्ध चरित्र के थे। पुराणानुसार ये शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। (२) दुर्योधन के एक पुत्र का नाम। (३) चिह्न। लक्षण। (४) नाग। (५) सारस।

वि० जो श्री से युक्त हो। जिसमें शोभा और कांति हो।

लक्ष्मणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्र देश के राजा बृहत्सेन की कन्या जो कृष्णजी को व्याही थी और उनकी आठ पटरानियों में से एक थी। (२) दुर्योधन की बेटी का नाम। (३) कृष्ण के पुत्र सांब की स्त्री का नाम। (४) एक जड़ी जो पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदन की सी बूँदें होती हैं। इसका कंद सफ़ेद होता है और वही ओषधि के काम में आता है।

पर्य्या०—पुत्रकंदा। पुत्रदा। नागपत्री। जननी।

लक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंदुओं की एक प्रसिद्ध देवी जो विष्णु की पत्नी और धन की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं। भिन्न भिन्न पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में प्रसिद्ध है कि देवताओं और दानवों के समुद्र मथने से जो चौदह रत्न निकले थे, उन्हीं में से एक यह भी थीं। इनका वर्ण श्वेत चंपक या कंचन के समान, कमर बहुत पतली, नितंब बहुत विशाल और चार भुजाएँ मानी जाती हैं। यह भी कहा गया है कि ये अत्यंत सुंदरी हैं और सदा युवती रहती हैं। ये महालक्ष्मी भी कही जाती हैं और इनकी पूजा अनेक अवसरों पर, विशेषतः धन तेरस और दीवाली की रात को होती है। मूर्त्तियों में ये या तो अकेली बैठी हुई और या क्षीर सागर में सोते हुए विष्णु भगवान् के चरण दबाती हुई दिखलाई जाती हैं।

पर्य्या०—पद्मालया। पद्मा। कमला। श्री। हरिप्रिया। इंदिरा। लोकमाता। मा। क्षीराब्धितनया। रमा। जलधिजा। भार्गवी। हरिवल्लभा।

(२) धन-संपत्ति। दौलत।

यौ०—लक्ष्मीवान्। लक्ष्मीपति = धनवान।

(३) शोभा। सौंदर्य। छवि। उ०—जय अरि जय हित चल्यौ बदन लक्ष्मी बर ढंगी।—गिरिधर। (४) दुर्गा का एक नाम। (५) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण, एक गुरु और एक लघु अक्षर होता है। उ०—जाहि पावैं नहीं संत। खेल सो लक्ष्मी कंत। (६) आर्या छंद के २६ भेदों में से पहला भेद जिसके प्रत्येक चरण में २७ गुरु और ३ लघु वर्ण होते हैं। (७) सीताजी का एक नाम। (८) ऋद्धि नाम की ओषधि। (९) वृद्धि नाम की ओषधि। (१०) वीर स्त्री। (११) घर की मालकिन। गृहस्वामिनी। (१२) हल्दी। (१३) शमी वृक्ष। (१४) मोती। (१५) मोक्ष की प्राप्ति। (१६) वह वृक्ष जो फलता हो अथवा जिसमें फल लगे हों। (१७) पद्म। कमल। (१८) सफेद्र तुलसी। (१९) मेढ़ासिंगी।

लक्ष्मीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनवान्। अमीर। (२) भाग्यवान्।

लक्ष्मीकांत-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण।

लक्ष्मीगृह-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

लक्ष्मीजनार्दन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिन पर एक ओर चार चक्र रहते हैं।

लक्ष्मी टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी + हिं० टोड़ी] एक प्रकार की संकर रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

लक्ष्मीताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में १८ मात्राओं का एक ताल जिसमें १५ आघात और ३ खाली होते हैं।

× १ २ ० ३
इसके मृदंग के बोल इस प्रकार हैं—धा केटे धा धा केटे
४ ५ ० ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३
ताग धा केटे तागे नेना आन खून ग्रेदे ने ता घेम गे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ १५० +
तेटे गदिघेने । धा ॥ (२) श्रीताल नामक वृक्ष ।

लक्ष्मीधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्रग्विणी छंद का दूसरा नाम। (२) विष्णु ।

लक्ष्मीनारायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिन पर एक ओर चार चक्र बने होते हैं । लक्ष्मी जनार्दन ।

लक्ष्मीनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] राजा जनक के पुत्र का नाम ।

लक्ष्मीनृसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जिन पर दो चक्र और एक बनमाला बनी होती है । ऐसे शालग्राम गृहस्थों के लिये बहुत शुभ माने जाते हैं ।

लक्ष्मीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । नारायण । (२) कृष्ण । (३) राजा । (४) लौंग का वृक्ष । (५) सुपारी का वृक्ष ।

लक्ष्मीपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव । (२) घोड़ा । (३) सीता के पुत्र लव और कुश ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माणिक । लाल । (२) पद्म । कमल ।

लक्ष्मीफल-संज्ञा पुं० [सं०] बेल । श्रीफल ।

लक्ष्मीरमण-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण ।

लक्ष्मीवत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) कटहल का वृक्ष । (३) अश्वत्थ का वृक्ष ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

लक्ष्मीवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] ताड़पीन ।

लक्ष्मीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) आम का वृक्ष ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीसहज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

लक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु जिस पर किसी प्रकार का निशाना लगाया जाय । निशाना । (२) वह जिस पर किसी प्रकार का आक्षेप किया जाय । (३) अभिलषित पदार्थ । उद्देश्य । (४) अस्त्रों का एक प्रकार का संहार । (५) वह जिसका अनुमान किया जाय । अनुमेय । (६) वह अर्थ जो किसी शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा निकलता हो।
वि० देखने योग्य । दर्शनीय ।

लक्ष्यज्ञत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्ञान जो चिह्नों को देखकर उत्पन्न हो । (२) वह ज्ञान जो दृष्टांत के द्वारा उत्पन्न हो ।

लक्ष्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्य का भाव या धर्म्म । लक्ष्यत्व ।

लक्ष्यभेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निशाना जिसमें तेजी से चलते या उड़ते हुए लक्ष्य को भेदते हैं । जैसे,—आकाश में फेंके हुए पैसे या उड़ते हुए पक्षी पर निशाना लगाना ।

लक्ष्यवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह उपाय या कर्म्म जिससे जीवन का उद्देश्य सिद्ध होता हो । (२) ब्रह्मलोक का मार्ग, जिसे देवयान पथ भी कहते हैं ।

लक्ष्यवेधी-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्यवेधिन्] वह जो लक्ष्य वेध करता हो । उड़ते या तेजी से चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना लगानेवाला ।

लक्ष्यार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह अर्थ जो लक्षणा से निकले ।

लखन*†-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] श्री रामचंद्रजी के छोटे भाई, लक्ष्मण का नाम ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० लखना] लखने की क्रिया या भाव ।

लखना*†-क्रि० स० [सं० लक्ष] (१) लक्षण देखकर अनुमान कर लेना । समझ या जान लेना । ताड़ना । उ०—(क) लखन लखेउ भा अनरथ आजू । यह सनेह बस करिहि अकाजू ।—तुलसी । (ख) लखै न रानि निकट दुख कैसे ।—तुलसी । (ग) लखन लख्यो प्रभु हृदय खँभारू ।—तुलसी । (२) देखना । उ०—(क) लहाछेह अतिगतिन की सबन लखे सब पास ।—बिहारी । (ख) चहियत जुगुल किसोर लखि लोचन जुगुल अनेक ।—बिहारी ।

लखपती-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष + पति] लाखों रुपयों का अधिपति । जिसके पास लाखों रुपयों की संपत्ति हो ।

लखमीतात-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + तात] समुद्र । (डिं०)

लखमीवर-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + वर] विष्णु । (डिं०)

लखर-संज्ञा पुं० [देश०] काकड़ासिंगी का पेड़ । इसे अरकोल भी कहते हैं ।

लखलखा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) कोई सुगंधित द्रव्य । (२) एक विशेष प्रकार का बना हुआ सुगंधित द्रव्य जो प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़ककर अथवा इसी प्रकार के और द्रव्यों से तैयार किया जाता है और जिसे सुँघाकर बेहोश आदमी को होश में लाते हैं । मूर्च्छा दूर करने का कोई सुगंधित द्रव्य ।

लखाउ*-संज्ञा पुं० [हिं० लखना] (१) लक्षण । पहचान । चिह्न । उ०—(क) अउर एक तोहिं कहौं लखाऊ । मैं एहि भेस न आउब काऊ ।—तुलसी । (ख) बूझि भरत सतभाउ कुभाऊ । आयहु बेगि न होइ लखाऊ ।—तुलसी । (२) चिह्न के रूप में दिया हुआ कोई पदार्थ । निशानी में दी हुई चीज । उ०—कियो सीय प्रबोध मुँदरी दियो कपिहि लखाउ ।—तुलसी ।

लखाना*†-क्रि० अ० [हिं० लखना] दिखाई पड़ना । उ०—सिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखाय । ज्यौं ज्यौं मद लाली चढ़े त्यौं त्यौं उघरति जाय । - बिहारी ।
क्रि० स० (१) दिखलाना । (२) अनुमान करा देना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझा देना। सुझा देना। उ०—मेरोइ फोरिबे जोग कपार किधौं कछु काहू लखाइ दयो है। —तुलसी।

लखांव*—संज्ञा पुं० दे० "लखाउ"।

लखिमी*†—संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] (१) धन संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी। (२) धन-संपत्ति। दौलत।

लखिया*†संज्ञा पुं० [हिं० लखना + इया (प्रत्य०)] लखनेवाला। जो लखता हो।

लखुआ†—संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा = लाख] (१) लाखा या लाही नामक रोग जो गेहूँ के पौधों में लगता है। (२) लाल मुँहवाला बंदर।

संज्ञा पुं० दे० "लखिया"।

लखुवा—संज्ञा पुं० दे० "लखुआ"।

लखेदना*—क्रि० स० [हिं० खेदना या रगेदना] खदेड़ना। भगाना। खेदना।

लखेरा—संज्ञा पुं० [हिं० लाख + एरा (प्रत्य०)] (१) वह जो लाख की चूड़ी आदि बनाता हो। (२) हिंदुओं में एक जाति जो लाख की चूड़ियाँ आदि बनाती है।

लखोट, लखोठ—संज्ञा पुं० दे० "लकुट"।

लखौट†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लाख + औट (प्रत्य०)] लाख की चूड़ी आदि जो स्त्रियाँ हाथों में पहनती हैं। उ०—हाथन लखौट पाइ चूरा पचमणी गरे, गोरी की जुगुल जानु कोरी मनो केश की। —देव।

लखौटा—संज्ञा पुं० [हिं० लाख + औटा (प्रत्य०)] (१) चंदन, केसर आदि से बना हुआ अंगराग। उ०—दरशन तो मुख को भयो सुमुखी मोहिं रसाल। बिना लखौटा छू लगे अधर ओठ अति लाल। —लक्ष्मण। (२) एक प्रकार का छोटा डिब्बा जो प्रायः पीतल का बनता है और जिसमें स्त्रियाँ प्रायः सिंदूर आदि सौभाग्य के द्रव्य रखती हैं। इसके ढकने में प्रायः शीशा भी लगा होता है।

संज्ञा पुं० [हिं० लेख + औटा (प्रत्य०)] लिखावट।

लखौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाखा + औरी (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की भ्रमरी का घर जो वह मिट्टी से घरों के कोनों में बनाती है। भृंगी का घर। (२) भारत की एक प्रकार की छोटी पतली ईंट जो प्रायः पुराने मकानों में पाई जाती है और जिसका व्यवहार अब कम होता जा रहा है। नौ-तेरही ईंट। ककैया ईंट।

संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष, हिं० लाख (संख्या)] किसी देवता को उसके प्रिय वृक्ष की एक लाख पत्तियाँ या फल आदि चढ़ाना। जैसे,—शिव जी को बेलपत्र की या लक्ष्मी-नारायण को तुलसी की लखौरी चढ़ाना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

लगंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + अंत (प्रत्य०)] (१) लगन होने की क्रिया या भाव। उ०—आलम में जब बहार की आकर खिलंत है। दिल की नई लगन को मज़े की लगंत है।—नज़ीर। (२) लगने या स्त्रीप्रसंग करने की क्रिया या भाव।

लग—क्रि० वि० [हिं० लौं] (१) तक। पर्यंत। ताईं। उ०—एक मुहूरत लग कर जोरी। नयन मूँदि श्रीपतिहिं निहोरी।—रघुराज। (२) निकट। समीप। नज़दीक। पास। उ०—यहि भाँति दिगीश चले मग में। इक सोर सुन्यो अति ही लग में।—गुमान।

संज्ञा स्त्री० लगन। लाग। प्रेम। उ०—झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिबे की इहाँ खेल नहीं फिर।—पद्माकर।

अव्य० (१) वास्ते। लिये। उ०—भृगुपति जीति परसु तुम पायो। ता लग हौं लंकेश पठायो।—हृदयराम। (२) साथ। संग। उ०—लगलगी बातनि अलग लग लगी आवै लोगनि की लंग ज्यों लुगाइन की लाग री।—देव।

लगढग—क्रि० वि० दे० "लगभग"।

लगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पलक पर एक छोटी, चिकनी, कड़ी गाँठ हो जाती है। इस गाँठ में न तो पीड़ा होती है और न यह पकती है।

लगदी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बिछौना जिसे बच्चेवाली स्त्रियाँ बच्चों के नीचे इसलिये बिछाकर उन्हें अपने पास सुलाती हैं कि जिसमें उनके मलमूत्र से और बिछौने खराब न होने पावें। कथरी। पोतड़ा।

लगन—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) किसी ओर ध्यान लगने की क्रिया। प्रवृत्ति का किसी एक ओर लगना। लौ। जैसे,—आज कल तो आपको बस कलकत्ते जाने की लगन लगी है।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(२) प्रेम। स्नेह। मुहब्बत। प्यार।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(३) लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध।

संज्ञा पुं० [सं० लग्न] (१) विवाह के लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त्त। ब्याह का मुहूर्त्त या साइत। (२) वे दिन जिनमें विवाह आदि होते हों। सहालग। (३) दे० "लग्न"।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) ताँबे, पीतल आदि की एक प्रकार की थाली जिसमें रखकर मोमबत्ती जलाई जाती है। (२) कोई बड़ी थाली जिसमें आटा गूँधते या मिठाई आदि रखते हैं। (३) मुसलमानों में विवाह की एक रीति जिसमें विवाह से पहले थालियों में मिठाइयाँ आदि भरकर वर के लिये भेजी जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगनपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नपत्रिका] विवाह-समय के निर्णय की चिट्ठी जो कन्या का पिता वर के पिता को भेजता है।

लगना-क्रि० अ० [सं० लग्न] (१) दो पदार्थों के तल आपस में मिलना। एक चीज की सतह पर दूसरी चीज की सतह का होना। सटना। जैसे,—टेबुल पर कपड़ा लगना, तसवीर पर शीशा लगना, दीवार पर इश्तहार लगना। उ०—मिट्टी में सनी हुई बदहवास एक पत्थर से लगी हुई थी।—देवकीनंदन। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में संलग्न होना। मिलना। जुड़ना। जैसे,—तसवीर में चौखटा लगना, अलमारी में शीशा लगना, किसी के गले लगना। उ०—लागति है जाय कंठ नाग दिगपालन के मेरे जान सोई कृत कीरति तिहारी है।—केशव। (३) किसी पदार्थ के तल पर पड़ना। जैसे,—पैर में कीचड़ लगना, कपड़े में मिट्टी लगना, कागज में दाग लगना। (४) एक चीज का दूसरी चीज पर सीया, जड़ा, टाँका या चिपकाया जाना। जैसे,— चादर में बेल लगना, धोती में फीता लगना, कोट में बटन लगना। उ०—(क) जटित जराय की जँजीर बीच नीलमणि लगि रहे लोकनि के नैन मानो मनहर।—केशव। (ख) सिर पर फौलादी टोपी जिसमें एक हुमा के पर की लाँबी कलगी लगी हुई थी।—देवकीनंदन। (५) सम्मिलित होना। शामिल होना। मिलना। जैसे,—पुस्तक में परिशिष्ट लगना, रजिस्टर में पन्ने लगना। (६) उत्पन्न होना। जमना। उगना। जैसे,—(क) यह गुलाब इस जमीन में न लगेगा। (ख) इस पेड़ में खूब आम लगे हैं। (७) छोर या प्रांत आदि पर पहुँचकर टिकना या रुकना। ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—किनारे पर नाव लगना, दरवाजे पर गाड़ी या बरात लगना। (८) क्रम से रखा या सजाया जाना। सिलसिले से रखा जाना। जैसे,—अलमारी में किताबें लगना, दूकान पर माल लगना, बरात लगना, हाट लगना, नुमाइश लगना। (९) व्यय होना। खर्च होना। जैसे,—(क) ब्याह में दस हजार रुपए लगे। (ख) उसे दौड़ने दो; तुम्हारा क्या लगता है। (१०) जान पड़ना। मालूम होना। अनुभव होना। जैसे,—डर लगना, मोह लगना, पेशाब लगना, अच्छा लगना, बुरा लगना, जाड़ा लगना, गरमी लगना। उ०—चंद्रकांता के विरह में मोरों की आवाज तीर सी लगती है।—देवकीनंदन। (११) स्थापित होना। कायम होना। जैसे,—मकान में कल लगना, छत के नीचे खंभा लगना। (१२) संबंध या रिश्ते में कुछ होना। जैसे,—वह हमारा भाई लगता है। उ०—दशरथ आपके कौन लगते हैं और आप दशरथ के कौन लगते हो।—वाल्मीकीय रामायण। (१३) आघात पड़ना। चोट पहुँचना। जैसे,—लाठी लगना, थप्पड़ लगना, तलवार लगना। उ०—धौल का लगना था कि वह पत्थर का आदमी उठ बैठा।—देवकीनंदन। (१४) टक्कर खाना। टकराना। जैसे,—जरा सा ढकेलते ही उसका सिर दीवार से जा लगा। (१५) किसी चीज के ऊपर लेप किया जाना। पोता जाना। मला जाना। जैसे,—लकड़ी पर वारनिश लगना, फोड़े पर दवा लगना, पान पर कत्था लगना, सिर में तेल लगना। (१६) किसी पदार्थ का किसी प्रकार की जलन या चुनचुनाहट आदि उत्पन्न करना। जैसे,—(क) यह सूरन बहुत लगता है। (ख) यह दवा पहले तो कुछ लगेगी; पर फिर ठंढक डाल देगी। (१७) खाद्य पदार्थ का (पकने के समय जल आदि के अभाव या आँच की अधिकता के कारण) बरतन के तल में जम जाना। जैसे,—खिचड़ी में पानी छोड़ो; नहीं तो लग जायगी। (१८) किसी प्रकार की प्रवृत्ति आदि का आरंभ होना। जैसे,—चाट गना, चसका लगना। (१९) आरंभ होना। शुरू होना। जैसे,—(क) अब तो ग्रहण लग गया है। (ख) कल से चैत लगेगा। (ग) उनकी नौकरी लग गई है। (२०) उपयोग में आना। काम में आना। जैसे,—(क) जितना मसाला आया था, वह सब एक ही मकान में लग गया। (ख) तुम्हारी चारों साड़ियाँ लग गईं। (२१) काम के लिये आवश्यक होना। जरूरी होना। जैसे,—(क) इस महीने में हमें चार गाड़ी भूसा लगेगा। (ख) अब तो उन्हें भी चश्मा लगता है। (ग) रजिस्टरी में दो आने का टिकट लगता है। (घ) तुम्हें जो जो चीजें लगें, सब मुझसे माँग लेना। (२२) जारी होना। चलना। जैसे,—(क) आज कल दोनों में खूब लड़ाई लगी है। (ख) अब तो तुम्हारा ही काम लगा है; दो चार दिन में पूरा हो जायगा। (ग) दो चार दिन में काम लगेगा। (२३) एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना। जैसे,—चलने में घोड़े के पैर लगना, गाड़ी का पहिया लगना। (२४) सड़ना। गलना। जैसे,—(क) यह आम लग गया है। (ख) इस बैल का कंधा लग गया है। (२५) किसी ऐसे कार्य्य का आरंभ होना जिसमें बहुत से लोगों के एकत्र होने की आवश्यकता हो। जैसे,—महफिल लगना, मेला लगना। (२६) प्रभाव पड़ना। असर होना। जैसे,—(क) परदेस में हमें पानी बहुत जल्दी लगता है। (ख) कड़ाही में आँच लग रही है। (ग) तुम्हें डाक्टरी दवा नहीं लगती। (घ) तुम्हें उसी का शाप लगा है। (च) सुरती बहुत तेज थी; लग गई है।

मुहा०—लगती बात कहना = ऐसी पते की बात कहना कि सुननेवाला मन मसोसकर रह जाय। मर्म्मभेदी बात कहना। चुटकी लेना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२७) दातव्य नियत होना। देना निश्चित होना। जैसे,—टैक्स लगना, ब्याज लगना, किराया लगना। (२८) आरोप होना। जैसे,—दफा लगना, हत्या लगना, पाप लगना। (२९) प्रज्वलित होना। जलना। जैसे,—आग लगना, दीआ लगना। उ०—औचक ही कर माँझ साँझ ही अगिनि लगी बड़ो अनुरागी रहि गई सोऊ डारिए।—प्रियादास। (३०) काम में आने योग्य होना। ठीक बैठना। उपयुक्त होना। जैसे,—यह ताली इस ताले में लग जाती है। (३१) हिसाब होना। गणित होना। जैसे,—पुरजा लगना, जोड़ लगना। (३२) पीछे पीछे चलना। साथ होना। शामिल होना। जैसे,—(क) बाजार में पहुँचते ही दलाल लगते हैं। (ख) तुम्हारे साथ भी सदा एक न एक आदमी लगा रहता है। उ०—लगे वाके पाछे काछे काछ की न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तनु छीजिए।—प्रियादास।

मुहा०—लग चलना = किसी के साथ या पीछे हो लेना। जैसे,—जहाँ तुमने कोई मालदार असामी देखा, वहाँ तुम उसके पीछे लग चले।

(३३) संबद्ध होना। चिमटना। जैसे,—रोग लगना। (३४) किसी कार्य्य में प्रवृत्त या तत्पर होना। जैसे,—(क) तुम्हें इन सब झगड़ों से क्या मतलब; तुम अपने काम में लगो। (ख) वह सवेरे से लिखने में लगा है। (३५) स्पर्श करना। छूना। उ०—कृपा करी निज धाम पठायो अपनो रूप दिखाय। वाके आश्रम जोउ बसत है माया लगत न ताय।—सूर। (३६) गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं का दूहा जाना। जैसे,—यह भैंस दिन में तीन बार लगती है। (३७) गड़ना। चुभना। धँसना। उ०—इह काँटे मो पाय लगि लीन्ही मरति जिवाय। प्रीति जनावति भीति सों मीत जु काढ्यो आय।—बिहारी। (३८) बदले में जाना। मुजरा होना। जैसे,—उनके दोनों मकान कर्ज में लग गए। (३९) समीप पहुँचना। पास जाना। छूना। जैसे,—पैरों लगना। उ०—(क) उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। जानो उलट गगन कहँ लागा।—जायसी। (ख) चितचोरन चितचोर मैं ब्यौरो इतनो आइ। इन्हैं पायकै मारिए, उनके लगियै पाय। (४०) छेड़खानी करना। छेड़छाड़ करना। जैसे,—ऐसे आदमियों से मत लगा करो। उ०—औरन सों करि रहे अचगरी मोसों लगत कन्हाई।—सूर। (४१) बंद होना। मुँदना। जैसे,—किवाड़ा लगना। उ०—अर्जुन के मंदिर पगु धारा। देखे लगे कपाट दुआरा।—सबल। (४२) जूए की बाजी पर रखा जाना। दाँव पर रखा जाना। बदना। जैसे,—(क) पाँच रुपए इस दाँव पर लगे हैं। (ख) अच्छा, इसी बात पर शर्त्त लगी। (४३) अंकित होना। चिह्नित होना। जैसे,—तिलक लगना, निशान लगना, मोहर लगना, ठप्पा लगना। (४४) धारदार चीज की धार का तेज किया जाना। जैसे,—उस्तरा लगना, कैंची लगना। (४५) घात में रहना। ताक में रहना। जैसे,—(क) उस रास्ते में संध्या के बाद डाकू लगते हैं। (ख) इस जंगल में शेर लगते हैं। (४६) किसी स्थान पर एकत्र होना। जैसे,—(क) इस घाट पर मछलियाँ लगती हैं। (ख) बाग में मच्छड़ लगते हैं। (४७) दाम आँका जाना। जैसे,—बाजार में घड़ी का दाम २०) लगा है। (४८) किसी चीज का विशेषतः खाने की चीज का अभ्यस्त होना। परचना। सधना। जैसे,—लड़का रोटी पर लग गया है। (४९) अपने नियत स्थान या कार्य्य आदि पर पहुँचना। जैसे,—पारसल लगना, रजिस्टरी लगना। (५०) फैलना। बिछना। जैसे,—बिछौना लगना, जाल लगना। (५१) संभोग करना। मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू) (५२) होना। जैसे,—(क) अभी हमें यहाँ देर लगेगी। (ख) वहाँ से हट जाओ; नहीं तो तुम्हारा ही नाम लगेगा। (ग) वह गाँव यहाँ से चार कोस लगता है। (घ) अब की अमावस को ग्रहण लगेगा। (च) यहाँ तो किताबों का ढेर लगा है। (५३) जहाज का छिछले पानी में अथवा किनारे की जमीन पर चढ़ जाना। (लश०) (५४) एक जहाज का दूसरे जहाज के सामने या बराबर आना। (लश०) (५५) पाल का खींचकर चढ़ाया जाना। (लश०)

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ यह क्रिया लगकर भिन्न भिन्न अर्थ देती है। जैसे,—नींद लगना, दाँत लगना, बात लगना, समाधि लगना, नैवेद्य लगना आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहा० में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में जाना, पड़ना आदि अलग अलग संयो० क्रियाएँ लगती हैं।

लगनि-संज्ञा स्त्री० दे० "लगन"। उ०—नैन लगे तिहिं लगनि सौं छुटे न छूटैं प्रान। काम न आवत एकहू तेरे सौकि सयान।—बिहारी।

लगभग†–क्रि० वि० [हिं० लग = पास + भग अनु०] प्रायः। करीब करीब। जैसे,—(क) वहाँ लगभग सौ आदमी उपस्थित थे। (ख) इस काम में लगभग एक महीना लगेगा।

लगमात-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + सं० मात्रा] स्वरों के वे चिह्न जो उच्चारण के लिये व्यंजनों में जोड़े जाते हैं। जैसे,—ए का `, ओ का ो।

लगर†-संज्ञा पुं० [देश०] चील की तरह का एक शिकारी पक्षी। लग्घड़। उ०—(क) नैन लगर घूँघुट खुलहि पवन खोल जब केश। नेही मन फिरवान कन झपट मनूना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देत।—रसनिधि। (ख) जुर्रा बाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने टोने जरकटी त्यों शचान सानवारे हैं।

लगलग–वि० [अ० लक़लक़] बहुत दुबला पतला। अति सुकुमार। उ०—अँखियाँ अधर चूमि हाहा छाँडो कहै झूमि छतियाँ सों लगी लगलगी सी हलकि कै।—देव।

लगवा–वि० [अ० लग्‍वो] (१) झूठ। मिथ्या। असत्य। (२) व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन।

लगवाना–क्रि० स० [हिं० लगाना का प्रेर०] लगाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लगाने में प्रवृत्त करना। उ०—(क) प्रथम खबरि लगवाइ कै कूबर दीन्ह सुधारि।—विश्राम। (ख) तहाँ एक दिन नंद कन्हाई। गए खरिक लगवावन गाई।—विश्राम।

लगवार–संज्ञा पुं० [हिं० लगना = प्रसंग करना + वार (प्रत्य०)] स्त्री का उपपति। यार। आशना। उ०—साँझ सकार दिया लै बारै। खसम छोड़ि सुमिरै लगवारै।—कबीर।

लगहर–संज्ञा पुं० [हिं० लाग + हर (प्रत्य०)] वह काँटा या तराजू जिसमें पासँग हो।

लगातार–क्रि० वि० [हिं० लगना + तार = सिलसिला] एक के बाद एक। सिलसिलेवार। बराबर। निरंतर। सतत। जैसे,—(क) आज चार दिन से लगातार पानी बरस रहा है। (ख) वह लगातार दो घंटे तक व्याख्यान देता रहा।

लगान–संज्ञा पुं० [हिं० लगना या लगाना] (१) लगने या लगाने की क्रिया या भाव। (२) किसी मकान के ऊपरी भाग से मिला हुआ कोई ऐसा स्थान जहाँ से कोई वहाँ आ जा सकता हो। लाग। जैसे,—इस मकान में दोनों तरफ से लगान है। (३) वह स्थान जहाँ पर मजदूर आदि सुस्ताने के लिये अपने सिर का बोझ उतारकर रखते हैं। (४) वह स्थान जहाँ पर नावें आकर ठहरा करती हैं। (५) भूमि पर लगनेवाला वह कर जो खेतिहरों की ओर से जमींदार या सरकार को मिलता है। राजस्व। भू-कर। जमाबंदी। पोत।

यौ०—लगान मुकर्ररी = नियत भू-कर। लगान वाकई = वास्तविक भू-कर।

लगाना–क्रि० स० [हिं० लगना का स० रूप] (१) एक पदार्थ के तल के साथ दूसरे पदार्थ का तल मिलाना। सतह पर सतह रखना। सटाना। जैसे,—दीवार पर कागज लगाना, दफ्ती पर तसवीर लगाना, कपड़े में अस्तर लगाना, लिफाफे पर टिकट लगाना। (२) दो पदार्थों को परस्पर संलग्न करना। मिलाना। जोड़ना। जैसे,—दराज में मुठिया लगाना, चाकू में दस्ता लगाना। (३) किसी पदार्थ के तल पर कोई चीज डालना, फेंकना, रगड़ना, चिपकाना या गिराना। जैसे,—चेहरे पर गुलाल लगाना, सिर में तेल लगाना। उ०—दीन्ह लगाय चून निज पानी। तेहि फल भई अवध की रानी।—विश्राम। (४) एक चीज पर दूसरी चीज सीना, टाँकना, चिपकाना या जोड़ना। जैसे,—टोपी में कलगी लगाना, कोट में बटन लगाना। (५) सम्मिलित करना। शामिल करना। साथ में मिलाना। जैसे,—किताब में जिल्द लगाना, मिसिल में चिट्ठी लगाना, शब्द में प्रत्यय लगाना। (६) वृक्ष आदि आरोपित करना। जमाना। उगाना। जैसे,—बाग में पेड़ लगाना। (७) एक ओर या किसी उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना। जैसे,—बंदरगाह में जहाज लगाना। (८) क्रम से रखना या सजाना। कायदे या सिलसिले से रखना। सजाना। चुनाना। जैसे,—दस्तरखान लगाना, कमरे में तसवीरें लगाना, गुच्छा लगाना, बाजार लगाना। (९) खर्च करना। व्यय करना। जैसे,—उन्होंने हजारों रुपए लगाए, तब जाकर मकान मिला। उ०—धन निज रघुपति हेतु लगावै। राम भक्ति हिय में उपजावै।—रघुराज। (१०) अनुभव कराना। मालूम कराना। जैसे,—यह दवा तुम्हें बहुत भूख लगावेगी। (११) स्थापित करना। कायम करना। जैसे,—उन्होंने अपने यहाँ बिजली का इंजन लगा रखा है। (१२) आघात करना। चोट पहुँचाना। जैसे,—थप्पड़ लगाना, मुक्का लगाना। (१३) लेप करना। पोतना। मलना। जैसे,—जूते पर स्याही लगाना। (१४) किसी में कोई नई प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना। जैसे,—आपने ही तो उन्हें सिगरेट का चसका लगाया है। (१५) उपयोग में लाना। काम में लाना। जैसे,—झगड़ा लगाना, नौकरी लगाना। (१६) सड़ाना। गलाना। जैसे,—(क) तुमने लापरवाही से सब पान लगा दिए। (ख) खाली जीन कसते कसते तुमने घोड़े की पीठ लगा दी। (१७) ऐसा कार्य करना जिसमें बहुत से लोग एकत्र या सम्मिलित हों। जैसे,—तुम तो जहाँ जाते हो, मेला लगा देते हो। (१८) दातव्य निश्चित करना। यह तै करना कि इतना अवश्य दिया जाय। जैसे,—कर लगाना। (१९) आरोपित करना। अभियोग लगाना। जैसे,—जुर्म लगाना।

मुहा०—किसी को लगाकर कुछ कहना या गाली देना = बीच में किसी का संबंध स्थापित करके किसी प्रकार का आरोप करना।

(२०) प्रज्वलित करना। जलाना। जैसे,—कड़ाही के नीचे आँच लगा दो। उ०—सेवा प्रभु करौ नेक रहौं पाँव धरौ जाइ कहो तुम बैठो कहीं आग सी लगाई है।—प्रियादास। (२१) ठीक स्थान पर बैठाना। जड़ना। जैसे,—घड़ी में सूई लगाना, चौखटे में शीशा लगाना। (२२) गणित करना। हिसाब करना। जैसे,—ब्याज लगाना, जोड़ लगाना। (२३) किसी के पीछे या साथ नियुक्त करना। शामिल करना। जैसे,—तुम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके पीछे अपना दूत लगा दो। (२४) किसी प्रकार साथ में संबद्ध करना। जैसे,—तुमने यह अच्छी बला मेरे पीछे लगा दी। (२५) किसी के मन में दूसरे के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना। कान भरना। चुगली खाना। जैसे,—(क) किसी ने उन्हें मेरी तरफ से कुछ लगा दिया है। (ख) तुम तो योंही इधर की उधर लगाया करते हो।

यौ०—लगाना बुझाना = लड़ाई झगड़ा कराना। दो आदमियों में वैमनस्य उत्पन्न करना।

(२६) अपने साथ या पीछे ले चलना। जैसे,—वह बहुतों को अपने साथ लगाए फिरता है। (२७) किसी कार्य में प्रवृत्त या तत्पर करना। नियुक्त करना। जैसे,—(क) लड़के को किसी रोजगार में लगा दो। (ख) जो काम किया करो, वह मन लगाकर किया करो। उ०—जिनको चारिहु द्वारन प्रथम लगायो राम।—रघुराज। (२८) गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं को दूहना। जैसे,—वह गौ लगाने गया है। (२९) गाड़ना। धँसाना। ठोंकना। जड़ना। जैसे,—दीवार में कील लगाना। (३०) समीप पहुँचाना। पास ले जाना। सटाना। जैसे,—वह दरवाजे के पास कान लगाकर सुनने लगा। (३१) स्पर्श कराना। छुआना। जैसे,—उसने तुरंत गिलास उठाकर मुँह से लगाया। (३२) बंद करना। जैसे,—दरवाजा लगाना, कुरते की घुंडी लगाना, ताला लगाना। (३३) जूए की बाजी पर रखना। दाँव पर रखना। जैसे,—(क) उसने अपने पास के सब रुपए दाँव पर लगा दिए। (ख) मैं तुमसे बाजी नहीं लगाता। उ०—देश कोश नृप सकल लगाई। जीति लेब सब रहि नहिं जाई।—सबल। (३४) किसी विषय में अपने आपको बहुत दक्ष या श्रेष्ठ समझना। किसी बात का अभिमान करना। जैसे,—वह गाने में अपने आपको बहुत लगाता है। (३५) अंग पर पहनना, ओढ़ना या रखना। धारण करना। जैसे,—चश्मा लगाना, छाता लगाना। (३६) बदले में लेना। मुजरा करना। जैसे,—यह अँगूठी तो हमने अपने लहने में लगा ली। (३७) अंकित करना। चिह्नित करना। जैसे,—तिलक लगाना, निशान लगाना, मोहर लगाना। (३८) धारदार चीज की धार तेज करना। सान पर चढ़ाना। जैसे,—खुरपा लगाना, कैंची लगाना। (३९) खरीदने के समय चीज का मूल्य कहना। दाम आँकना। जैसे,—मैंने उनके मकान का दाम ५०००) लगा दिया है। (४०) किसी चीज का, विशेषतः खाने की चीज का अभ्यस्त करना। परचाना। सधाना। जैसे,—लड़के को दाल रोटी पर लगा लो; दूध कहाँ तक दिया करोगे। (४१) नियत स्थान या कार्य पर पहुँचाना। जैसे,—पारसल लगाना, मनी आर्डर लगाना। (४२) फैलाना। बिछाना। जैसे,—बिछौना लगाना, जाल लगाना। (४३) संभोग करना। मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू) (४४) करना। जैसे,—(क) आपने वहाँ बहुत दिन लगा दिए। (ख) यहाँ कपड़ों का ढेर मत लगाना। उ०—अब जनि देर लगावहु स्वामी। देखि प्रीति बोले ऋषि ज्ञानी। —विश्राम। (४५) जहाज को छिछली या किनारे की जमीन पर चढ़ाना। (लश०) (४६) एक जहाज को दूसरे जहाज के सामने या बराबर ले जाना। (लश०) (४७) पाल खींचकर चढ़ाना। (लश०)

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ इस क्रिया के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। जैसे,—दाँत लगाना, समाधि लगाना, कान लगाना, दम लगाना आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहा० में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में छोड़ना, डालना, देना, रखना आदि अलग अलग संयो० क्रियाएँ लगती हैं।

लगाम-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) लोहे का वह काँटेदार ढाँचा जो घोड़े के मुँह के अंदर रखा जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़े का तस्मा आदि बँधा रहता है।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—लगाना।

मुहा०—लगाम चढ़ाना या देना = (१) किसी को कोई कार्य्य करने से, विशेषतः बोलने से रोकना। (२) लँगोट कसना। (बाजारू)

(२) इस ढाँचे के दोनों ओर बँधा हुआ रस्सा या चमड़े का तस्मा जो सवार या हाँकनेवाले के हाथ में रहता है। सवार या हाँकनेवाला इसी रस्से या तस्मे की सहायता से घोड़े को चलाता, रोकता, इधर उधर मोड़ता और अपने वश में रखता है। रास। बाग।

मुहा०—लगाम लिए फिरना = किसी को पकड़ने, बाँधने या वश में करने के लिये उसका पीछा करना। बराबर ढूँढ़ते फिरना।

लगारछ्ठ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + आर (प्रत्य०)] (१) नियमित रूप से कोई काम करने या कोई चीज देने की क्रिया या भाव। बंधी। बंधेज। (२) लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध। उ०—बार बार फन घात के बिष ज्वाला की झार। सहसौ फन फन फूँकरै नैन न तनहि लगार। —सूर। (३) तार। क्रम। सिलसिला। उ०—सात दिवस नहिं मिटी लगार। बरष्यो सलिल अखंडित धार। —सूर। (४) लगन। प्रीति। लगावट। मुहब्बत। उ०—चकोर भरोसे चंद के ताता गिलै अँगार। कहै कबीर छोड़ै नहीं ऐसी वस्तु लगार।—कबीर। (५) वह जो किसी की ओर से भेद लेने के लिये भेजा गया हो। वह जो किसी के मन की बात जानने के लिये किसी की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गया हो। उ० —और सखी एक श्याम पठाई। हरि को बिरह देखि भइ व्याकुल मान मनावन आई। बैठी आइ चतुरई काछे वह कछु नहीं लगार। देखति हौ कछु और दसा तुम बूझति बारंबार।—सूर। (६) वह जिससे घनिष्ठता का व्यवहार हो। मेली। संबंधी। (७) रास्ते में बीच का वह स्थान जहाँ से जुआरी लोग जूआ खेलने के स्थान तक पहुँचाए जाते हैं। टिकान।

विशेष—प्रायः जूआ किसी गुप्त स्थान पर होता है, जिसके कहीं पास ही संकेत का एक और स्थान नियत होता है। जब कोई जुआरी वहाँ पहुँचता है, तब या तो उसे जूए के स्थान का पता बतला दिया जाता है और या उसे वहाँ पहुँचाने के लिये कोई आदमी उसके साथ कर दिया जाता है। इसी संकेत स्थान को, जहाँ से जुआरी जूआ खेलने के स्थान पर भेजे जाते हैं, जुआरी लोग "लगार" कहते हैं।

लगालगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) लाग। लगन। प्रेम। स्नेह। प्रीति। उ०—(क) क्यौं बसिये क्यों निबहिये नीति नेह पुर नाहिं। लगालगी लोयन करैं नाहक मन बँध जाहिं।—बिहारी। (ख) लगालगी लोपों गली लगे लागलै लाल। गैल गोप गोपी लगे पालागों गोपाल।—केशव। (२) संबंध। मेल जोल।

लगाव—संज्ञा पुं० [हिं० लगना + आव (प्रत्य०)] लगे होने का भाव। संबंध। वास्ता। जैसे,—(क) इन दोनों मकानों में कोई लगाव नहीं है। (ख) मैं ऐसे लोगों से कोई लगाव नहीं रखता।

लगावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + आवट (प्रत्य०)] (१) संबंध। वास्ता। लगाव। (२) प्रेम। प्रीति। लगन। मुहब्बत। जैसे,—लगावट की बातें।

लगावन*†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगाव] लगाव। संबंध। वास्ता। उ०—हम हैं अफ़सर तुम हौ बावन। हमरी तुमरी कहाँ लगावन।—रामकृष्ण वर्म्मा।

लगावना—क्रि० स० दे० "लगाना"। उ०—केती लाए फौज और क्या आवनी। सो सब लेउ बुलाइ न देर लगावनी।—सूदन।

लगि*†-अव्य० दे० "लग"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"। उ०—(क) लहलहाति तन तरुनई लचि लगि लौं लपि जाइ। लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाइ।—बिहारी। (ख) जंघ जुगल लोयन निरे करे मनौ बिधि मैन। केलि तरुन दुःख दैन ये केलि तरुन सुख दैन।—बिहारी। (ग) नाम लगि ल्याय लासा ललित बचन कहि व्याध ज्यों त्रिषय त्रिहंगनि बझावौं।—तुलसी।

लगी*†—संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"। उ०—एहि बिष-चारइ सब बुधि ठगी। अउ भा काल हाथ लेइ लगी।—जायसी।

लगु*†-अव्य० दे० "लग"।

लगुड़—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंड। डंडा। लाठी। (२) प्रायः दो हाथ लंबा लोहे का एक विशेष प्रकार का डंडा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में पैदल सैनिक अस्त्रों के समान करते थे। (३) लाल कनेर।

लगुल—संज्ञा पुं० [सं० लांगूल ?] शिश्न। (डिं०)

लगुवा†—वि० [हिं० लगना + उवा (प्रत्य०)] पीछे लगनेवाला। पीछे पीछे चलनेवाला। पिठलग्गू।

लगूर*—संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम। उ०—जरा लगूर सुराता उहाँ। निकसि जो भागि भएउँ करमुहाँ।—जायसी।

लगूल*-संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम। उ०—हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल। सुर बार बार बरनहिं लगूल।—तुलसी।

लगे†—अव्य० दे० "लग"।

लगे लगे †—संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] बंदर।

विशेष—बहुधा बंदरों के आने पर स्त्रियाँ और बच्चे "लगे लगे" (मारो, मारो) का शोर मचाते हैं; और बंदर का नाम लेना लोग ठीक नहीं समझते; इसलिये प्रायः "बंदर" के अर्थ में इस सांकेतिक शब्द का प्रयोग करते हैं।

लगौहाँ—वि० [हिं० लगना + औहाँ (प्रत्य०)] जिसे लगन लगाने की कामना हो। लगने का आकांक्षी। रिझवार। उ०—(क) लगौंहीं चितवनि औरहि होति। दुरति न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति।—हरिश्चंद्र। (ख) कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न। कहा करौ जो जाहिं ये लगैं लगौंहैं नैन।—बिहारी।

लग्गत †-संज्ञा स्त्री० दे० "लागत"।

लग्गा—संज्ञा पुं० [सं० लगुड़] (१) लंबा बाँस। (२) वृक्षों से फल आदि तोड़ने का वह लंबा बाँस जिसके आगे एक अँकुसी लगी रहती है। लकसी। (३) वह लंबा बाँस जिसके सहारे से छिछले पानी में नाव चलाते हैं। लग्गी। (४) घास या कीचड़ आदि हटाने का एक प्रकार का फरसा जिसमें दस्ते की जगह एक लंबा बाँस लगा रहता है।

संज्ञा पुं० [हिं० लगना] कार्य्य आरंभ करना। काम में हाथ लगाना।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल "लगना" और "लगाना" क्रियाओं के साथ ही होता है।

लग्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] लंबा बाँस। वि० दे० "लग्गा"।

लग्घड़—संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाज़। शचान। (२) एक प्रकार का चीता जो सामान्य चीते से बड़ा होता है। इसे शिकार करना सिखाया जाता है। यह प्रायः ६ फुट लंबा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इसकी आँखों पर एक जंजीर से पट्टियाँ बँधी रहती हैं। इसी को 'लकड़बग्घा' भी कहते हैं।

लग्घा-संज्ञा पुं० दे० "लग्गा"।

लग्घी-संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"।

लग्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में दिन का उतना अंश, जितने में किसी एक राशि का उदय रहता है।

विशेष—पृथ्वी दिन रात में एक बार अपनी धुरी पर घूमती है; और इस बीच में वह एक बार मेष आदि बारह राशियों को पार करती है। जितने समय तक वह एक राशि में रहती है, उतने समय तक उस राशि का लग्न कहलाता है। किसी राशि में उसे कुछ कम समय लगता है और किसी में अधिक। जैसे,—मीन राशि में प्रायः पौने चार दंड, कन्या में प्रायः साढ़े पाँच दंड, और वृश्चिक में प्रायः पौने छः दंड। लग्न का विचार प्रायः बालक की जन्मपत्री बनाने, किसी प्रकार का मुहूर्त्त निकालने अथवा प्रश्न का उत्तर देने में होता है।

(२) ज्योतिष के अनुसार कोई शुभ कार्य्य करने का मुहूर्त्त। (३) विवाह का समय। उ०—एकहि लग्न सबहि कर पकरेउ, एक मुहूर्त्त बियाहे।—सूर। (४) विवाह। शादी। (५) विवाह के दिन। सहालग। (६) वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। वंदीजन। सूत।

वि० (१) लगा हुआ। मिला हुआ। (२) लज्जित। शरमिंदा। (३) आसक्त।

संज्ञा पुं० दे० "लगन"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लगन"।

लग्नकंकण-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंकण या मंगल सूत्र जो विवाह के पूर्व वर और कन्या के हाथ में बाँधा जाता है।

लग्नक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जमानत करे। प्रतिभू। जामिन। (२) एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

लग्नकुंडली-संज्ञा [illegible] सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र या कुंडली जि[illegible] यह पता चलता है कि किसी के जन्म के समय कौ[illegible] कौन से ग्रह किस किस राशि में थे। जन्मकुंडली।

लग्नदंड-संज्ञा पुं० [सं०] गाने या बजाने के समय स्वर के मुख्य अंशों या श्रुतियों को आपस में एक दूसरे से अलग न होने देना और सुंदरता से उनका संयोग करना। लाग डाँट। (संगीत)।

लग्नदिन-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के लिये निश्चित दिन।

लग्नपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे संबंध रखनेवाले दूसरे कृत्यों का लग्न स्थिर करके ब्योरेवार लिखा जाता है।

लग्नपत्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "लग्नपत्र"।

लग्नायु-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में वह आयु जो लग्न के अनुसार स्थिर की जाती है।

लग्नेश-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो लग्न का स्वामी हो।

लग्नोदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी लग्न के उदय होने का समय। (२) लग्न के उदय होने का कार्य्य।

लघड़बग्गा-संज्ञा पुं० दे० "लग्घड़" (२)।

लघमीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीपुष्प] पद्मराग मणि। लाल। माणिक्य। मानिक। (डिं०)

लघिना-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का धारदार अस्त्र जिसमें दस्ता लगा होता था और जिससे भैंसे आदि काटे जाते थे।

लघिमा-संज्ञा स्त्री० [सं० लघिमन्] (१) आठ सिद्धियों में से चौथी सिद्धि। कहते हैं कि इसे प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता है। (२) लघु या ह्रस्व होने का भाव। लघुत्व।

लघु-वि० [सं०] (१) शीघ्र। जल्दी। (२) जो बड़ा न हो। कनिष्ठ। छोटा। जैसे,—लघु स्वर, लघु मात्रा। (३) सुंदर। बढ़िया। (४) जिसमें किसी प्रकार का सार या तत्त्व न हो। निःसार। (५) थोड़ा। कम। (६) हलका। (७) नीच। (८) दुर्बल। दुबला।

संज्ञा पुं० (१) काला अगर। (२) उशीर। खस। (३) हस्त, अश्विनी और पुष्य ये तीनों नक्षत्र जो ज्योतिष में छोटे माने गए हैं और जिनका गण "लघुगण" कहा गया है। (४) समय का एक परिमाण जो पंद्रह क्षणों का होता है। (५) तीन प्रकार के प्राणायामों में से वह प्राणायाम जो बारह मात्राओं का होता है। शेष दो प्राणायाम मध्यम और उत्तम कहलाते हैं। (६) व्याकरण में वह स्वर जो एक ही मात्रा का होता है। जैसे,—अ, इ, उ, ओ, ए आदि। (७) वह जिसमें एक ही मात्रा हो। एक-मात्रिक। इसका चिह्न (।) है।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग संगीत में ताल के संबंध में और छंदःशास्त्र में वर्ण के संबंध में होता है।

(८) वंशी का छोटा होना, जो उसके छः दोषों में से एक माना जाता है। (९) चाँदी। (१०) पृक्का। असबरग। (११) वह जिसका रोग छूट गया हो। (रोग छूटने पर शरीर कुछ हलका जान पड़ता है।)

लघुकंकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंकोल जो साधारण कंकोल से छोटा होता है।

लघुकंटकी-संज्ञा स्त्री० [सं० [लजालू।

लघुकटाई-संज्ञा स्त्री० दे० "कंटकारी"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकण-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा।

लघुकर्कंधु-संज्ञा पुं० [सं०] भुँई बेर।

लघुकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्व्वा।

लघुकाम-संज्ञा पुं० [सं०] बकरी।

लघुकाश्मर्य-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष।

लघुकिन्नरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

लघुक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] जल्दी जल्दी चलने की क्रिया। तेज चाल।

लघुगण-संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी, पुष्य और हस्त इन तीनों नक्षत्रों का समूह।

लघुगर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैरा नाम की मछली। (२) टेंगरा या त्रिकंटक नाम की मछली।

लघुचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।

लघुचित्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका मन बहुत ही दुर्बल या चंचल हो।

लघुचित्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मन के बहुत ही दुर्बल या चंचल होने का भाव।

लघुचेता-संज्ञा पुं० [सं० लघुचेतस्] वह जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और बुरे हों। नीच।

लघुच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महा शतावरी। बड़ी शतावर।

लघुजल-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी।

लघुजांगल-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी।

लघुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लघु होने का भाव। छोटापन। लाघव। (२) हलकापन। तुच्छता।

लघुतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] मुरदासंग।

लघुतुपक-संज्ञा स्त्री० [सं०] तमंचा। पिस्तौल।

लघुत्तमापवर्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सब से छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओं में से प्रत्येक को पूरा पूरा भाग दे सके।

लघुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लघु होने का भाव। लघुता। (२) हलकापन। छोटापन। तुच्छता।

लघुदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी दंती। वि० दे० "दंती"।

लघुदुंदुभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी दुंदुभी। डुग्गी।

लघुद्राक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।

लघुनामकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह कर्म जिससे जीव का शरीर न तो बहुत भारी होता है और न बहुत हलका होता है; बल्कि साधारण सम विभक्त होता है।

लघुनामा-संज्ञा पुं० [सं० लघुनामन्] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।

लघुपंचक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिपर्णी, पिठवन, कटाई (छोटी), कटेहरी (बड़ी) और गोखरू इन पाँचों की जड़ों का समूह जो वैद्यक के अनुसार पाचक, बलकारक, ग्राहक और ज्वर, श्वास तथा अश्मरी आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।

लघुपंचमूल-संज्ञा पुं० दे० "लघुपंचक"।

लघुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।

लघुपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वत्थ वृक्ष।

लघुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। मरोड़फली। (२) शतमूली। सतावर।

लघुपाक-संज्ञा पुं० [सं०] वह खाद्य पदार्थ जो सहज में पच जाय।

लघुपाकी-संज्ञा पुं० [सं० लघुपाकिन्] चेना नामक कदन्न।

लघुपाती-संज्ञा पुं० [सं० लघुपातिन्] कौवा।

लघुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ कदंब।

लघुपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला केवड़ा। स्वर्ण केतकी।

लघुप्रयत्न-संज्ञा पुं० [सं०] आलसी।

लघुफल-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर।

लघुमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी गनियारी।

लघुमति-वि० [सं०] छोटी समझवाला। कमसमझ। मूर्ख।

लघुमांस-संज्ञा पुं० [सं०] तीतर नामक पक्षी।

लघुमांसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जटामाँसी।

लघुमान-संज्ञा पुं० [सं०] नायिका का वह मान या अल्प रोष जो नायक को किसी दूसरी स्त्री से बातचीत करते देखकर उत्पन्न होता है।

लघुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करेले की बेल। (२) अनंतमूल।

लघुलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) पीला बाला या लामज नाम की घास।

लघुलोणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनी का साग।

लघुशंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्रोत्सर्ग। पेशाब करना।

लघुशंख-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।

लघुशिखर-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।

लघुशीत-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा।

लघुहस्त-संज्ञा संज्ञा [सं०] वह जो बहुत जल्दी जल्दी बाण चला सकता हो।

लघ्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर नामक फल। (२) असबरग। स्पृक्का।

लच-संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचकने की क्रिया। लचक।

लचक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] (१) लचकने की क्रिया या भाव। लचन। झुकाव।

क्रि० प्र०—खाना।—जाना।

(२) वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु दबती या झुकती हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जो ६०-७० हाथ लंबी होती है। यह मक़सूदाबाद की तरफ़ बनती है और इसे बहुत से लोग मिलकर खेते हैं।

लचकना-क्रि० अ० [हिं० लच (अनु०)] (१) किसी लंबे पदार्थ का बोझ पड़ने या दबने आदि के कारण बीच से झुकना। लचना। जैसे,—यह छड़ी बहुत कमजोर है; जरा सा बोझ देने से ही लचक जाती है।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) स्त्रियों की कमर का कोमलता या नखरे आदि के कारण झुकना। जैसे,—जब वह चलती है, तब उसकी कमर लचकती है। (३) स्त्रियों का कोमलता या नखरे आदि के कारण चलने के समय रह रहकर झुकना। जैसे,—वह जब चलती है, तब लचकती चलती है।

लचकनि%-संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] (१) लचीलापन। (२) लचक।

लचका-संज्ञा पुं० [हिं० लचकना] एक प्रकार का गोटा।

लचकाना-क्रि० स० [हिं० लचकना] किसी पदार्थ को लचने में प्रवृत्त करना। झुकाना। लचाना।

लचकीला-वि० [हिं० लचक + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लचकीली] जो सहज में लच या दब जाय। लचकने योग्य। लचकदार।

लचन, लचनि-संज्ञा स्त्री० दे० "लचक"।

लचना-क्रि० अ० दे० "लचकना"।

लचलचा-वि० [हिं० लचना] जो लचक जाय। लचीला। लचकनेवाला।

लचलचापन-संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचीले होने का भाव। लचीलापन।

लचकेदार-वि० [हिं० लचक + फ़ा० दार (प्रत्य०)] मजेदार। बढ़िया। (बाजारू)

लचाना-क्रि० स० [हिं० लचना का स० रूप] लचकाना। झुकाना।

लचार *†-वि० दे० "लाचार"।

लचारी-संज्ञा स्त्री० दे० "लाचारी"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह कर जो कोई व्यक्ति अपने से बड़े को देता है। भेंट। नजर। उ०—विमल मुक्तमाल लसत उच्च कुचन पर मदन महादेव मनो दई है लचारी। —सूर। (२) एक प्रकार का गीत।

संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार] एक प्रकार का आम का अचार जो खाली नमक से बनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता। अचारी।

लचुई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे की बनी हुई पतली और मुलायम पूरी। लुची। लुचुई।

लच्छ%-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्य] (१) व्याज। बहाना। मिस। (२) वह वस्तु या स्थान जिस पर शस्त्र चलाना हो। निशाना। ताक।

संज्ञा पुं० सौ हजार की संख्या। लाख।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"। उ०—(क) चहे लच्छ बावर कबि सोई। जहँ सरस्वती लच्छ कित होई।—जायसी। (ख) मरकतमय साखा सुपुत्र मंजरिअ लच्छ जेहि।—तुलसी।

लच्छण-संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] स्वभाव। (डिं०)

*†-संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"।

लच्छन*-संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"। उ०—(क) नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।—तुलसी। (ख) बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू। राम भक्त कर लच्छन एहू।—तुलसी। (ग) कछु देखि कै लच्छन छोटो बड़ो सम बात चलें कहि आवतु है।—रघुनाथ।

संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्मण"।

लच्छना-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्षणा"।

लच्छमण-वि० [सं० लक्ष्मीवान्] धनवान्। अमीर। (डिं०)

लच्छमी-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

लच्छा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) कुछ विशेष प्रकार से लगाए हुए बहुत से तारों या डोरों आदि का समूह। गुच्छे या झुप्पे आदि के रूप में लगाए हुए तार। जैसे,—रेशम का लच्छा, सूत का लच्छा।

यौ०—लच्छे की साड़ी = बनारसी काम की वह साड़ी जिसके किनारे आदि के तार ताने के साथ ही तने गए हों।

(२) किसी चीज के सूत की तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े। जैसे,—प्याज का लच्छा, आदी का लच्छा। (३) इस आकार की किसी तरह बनाई हुई कोई चीज। जैसे,—रबड़ी का लच्छा। (४) मैदे की एक प्रकार की मिठाई जो प्रायः पतले लंबे सूत की तरह और देखने में उलझी हुई डोर के समान होती है। (५) एक प्रकार का गहना जो तारों की जंजीरों का बना होता है। यह हाथों में पहनने का भी होता है और पैरों में पहनने का भी। (६) एक प्रकार का घटिया केसर जो नीवल या निकृष्ट श्रेणी के केसर में थोड़ा सा बढ़िया केसर मिलाकर बनाया जाता है।

लच्छा साख-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की संकर रागिनी।

लच्छि%-संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] लक्ष्मी। उ०—(क) एहि बिधि उपजइ लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।—तुलसी। (ख) बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष।—तुलसी। (ग) माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] लाख की संख्या।

लच्छित%-वि० [सं० लक्षित] (१) आलोचित। देखा हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) निशान किया हुआ। अंकित। चिह्नित। (३) लक्षण युक्त। लक्षणवाला। उ०—शुभ लच्छन लच्छित हय सोई। तुरँग साल देखिय जो होई। - मधुसूदन।

लच्छिनाथ–संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनाथ] लक्ष्मीपति, विष्णु। (डिं०)

लच्छिनिवास–संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनिवास] विष्णु। नारायण। उ०—दुलहिनि लेइगे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।—तुलसी।

लच्छी–वि० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—कोइ कमुली अँबोज कोइ कच्छी। बोत मेमना मुंजी लच्छी।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लच्छा] सूत, रेशम, ऊन, कलाबत्तू इत्यादि की लपेटी हुई गुच्छी। अट्टी।

लच्छेदार–वि० [हिं० लच्छा + फ़ा० दार (प्रत्य०)] (१) (खाद्य-पदार्थ) जिसमें लच्छे पड़े हों। लच्छोंवाला। (२) (बात चीत) जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुनने में मन लगता हो। मजेदार या श्रुतिमधुर (बात)।

लछन–संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] राम के छोटे भाई, लक्ष्मण। उ०—दसरथ सों ऋषि आनि कह्यो। असुरन सों यज्ञ हौन म पावत राम लछन तब संग दयो।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"।

लछना–क्रि० अ० दे० "लखना"।

लछमन–संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्मण"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मणा" (४)।

लछमन झूला–संज्ञा पुं० [हिं० लछमन + झूला] (१) बदरीनारायण के मार्ग में एक स्थान। यहाँ पहले पुरानी चाल का रस्सों का एक लटकौवाँ पुल था, जिसे झूला कहते थे। (२) रस्सों या तारों आदि से बना हुआ वह पुल जो बीच में झूले की तरह नीचे लटकता हो। (३) एक प्रकार की लता या बेल।

लछमना–संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मणा"। उ०—बहुरि लछमना सुमिरन कीन्हो। ताहि स्वयंवर में हरि लीन्हो।—सूर।

लछमी–संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

लज–संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] शर्म। हया। लाज। उ०—सुघर सौति बस पिय सुनन दुलहिनि दुगुन हुलास। लखी सखी तन दीठि करि सगरब सजल सहास।—बिहारी।

लजना–क्रि० अ० [सं० लज्जा] लजाना। शरमाना। लज्जित होना।

लजनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लजाना] लजालू का पौधा।

लजवाना–क्रि० स० [हिं० लजाना] दूसरे को लज्जित करना।

लजाधुर–वि० [सं० लज्जाधर] जो बहुत लज्जा करे। लज्जावान्। शर्मीला।

संज्ञा पुं० लजालू नाम का पौधा।

लजाना–क्रि० अ० [सं० लज्जा] अपने किसी बुरे या भद्दे व्यवहार का ध्यान करके वृत्तियों के संकोच का अनुभव होना। लज्जित होना। शर्म में पड़ना। उ०—कंप-किसोरी दरस ते खरे लजाने लाल।—बिहारी।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० लज्जित करना।

लजारू–संज्ञा पुं० [सं० लज्जालु] लजालू पौधा। उ०—जनक-बचन छुए बिरवा लजारू के से, बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै।—तुलसी।

लजालू–संज्ञा पुं० [सं० लज्जालु] हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक काँटेदार छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ छूने से सुकड़कर बंद हो जाती हैं और फिर थोड़ी देर में धीरे धीरे फैलती हैं।

विशेष—इसके डंठल का रंग लाल होता है और महीन महीन पत्तियाँ शमी या बबूल की पत्तियों के समान एक सींके के दोनों ओर पंक्ति में होती हैं। हाथ लगते ही दोनो ओर की पत्तियाँ संकुचित होकर परस्पर मिल जाती हैं; इसी से इस पौधे का नाम लजालू पड़ा। फूल गुलाबी रंग की गोल गोल घुंडियों की तरह के होते हैं, जिनके झड़ जाने पर छोटे छोटे चिपटे बीज पड़ते हैं। भारत के गरम भागों में यह सर्वत्र होता है; जैसे, बंगाल के दक्षिण भाग में कहीं कहीं बहुत दूर तक रास्ते के दोनों ओर यह लगा मिलता है।

वैद्यक में यह कटु, शीतल, कषाय तथा रक्तपित्त, अतीसार, दाह, श्रम, श्वास, व्रण, कुष्ठ, कफ तथा योनिरोग को दूर करनेवाला माना जाता है। कहीं कहीं पथरी की पीड़ा शांत करने के लिये तथा भगंदर अच्छा करने के लिये इसकी जड़ और डंठल का काढ़ा और पत्तियों का चूर्ण सेवन करते हैं। रासायनिक परीक्षा से पता चला है कि इस पौधे में सौ में दस भाग कषाय-धातु (टैनीन) होती है। इसके डंठल के चूर्ण को हीरा कसीस के साथ मिलाने से बड़ी अच्छी स्याही बनती है।

पर्य्या०—लज्जावती लता। वाराहक्रांता। रक्तपादी। शमीपत्रा। स्पृक्का। खदिरपत्रिका। संकोचिनी। समंगी। नमस्कारी। प्रसारिणी। सप्तपर्णी। खदिरी। गंडमालिका। लज्जा। लज्जिरी। स्पर्शलज्जा। अस्त्ररोधिनी। रक्तमूला। ताम्रमूला। स्वगुप्ता। महाभीता। वशिनी। महौषधि।

लजावन–क्रि० स० दे० "लजावना" या "लजाना"। उ०—कोटि मनोज लजावनहारे।—तुलसी।

विशेष—समस्त पद में किसी शब्द के आगे आने से इसका अर्थ होता है "लज्जित करनेवाला"। जैसे,—मनोज-लजावन।

लजियाना–क्रि० अ० दे० "लजाना"।

क्रि० स० दे० "लजवाना"।

लज़ीज़–वि० [अ०] लज्ज़तदार। स्वादिष्ट। सुस्वादु। (खाद्य पदार्थ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लजीला-वि० [हिं० लाज + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लजीली] जिसमें लज्जा हो । लज्जायुक्त । लज्जाशील । जैसे,—लजीला मनुष्य,लजीली आँखें।

लजुरी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, माग० लज्जु] कुएँ से पानी भरने की डोरी । रस्सी ।

लजोर*†-वि० [हिं० लाज + श्रावर (प्रत्य०)] लज्जाशील। जो बहुत जल्दी लज्जित हो । उ०—विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखियाँ बड़ी लजोर ।—रसनिधि ।

लजोहा†-वि० [सं० लज्जावह] [स्त्री० लजोही] जिसमें लज्जा हो; या जिससे लज्जा सूचित होती हो। लजीला। शर्मीला। उ०-कुंजभवन राधा मनमोहन । रति विलास करि मगन भए अति निरखत नैन लजोहन ।—सूर ।

लजौहाँ-वि० [सं० लज्जावह] [स्त्री० लजौहीं] जिसमें लज्जा हो या जिससे लज्जा सूचिक होती हो । लज्जाशील । लजीला । शर्मीला । जैसे,—लजौहीं स्त्री, लजौहीं आँखें ।

लउज़का-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनकपास ।

लज़्ज़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वाद । ज़ायक़ा । मज़ा । (खाने पीने की वस्तुओं के लिये)

लज़्ज़तदार-वि० [अ० लज्जत + फ़ा० दार] स्वादिष्ट । मजेदार । जायकेदार ।

लज्जरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू लता । लज्जावंती ।

लज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० लज्जित] (१) अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें स्वभावतः अथवा अपने किसी भद्दे या बुरे आचरण की भावना के कारण दूसरों के सामने वृत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं, चेष्टा मंद पड़ जाती है, मुँह से शब्द नहीं निकलता, सिर निचा हो जाता है और सामने ताका नहीं जाता । लाज । शर्म । हया ।

पर्य्या०—ह्री । त्रपा । व्रीड़ा । मंदास्य ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—(किसी बात की) लज्जा करना = किसी बात की बड़ाई की रक्षा का ध्यान करना । मर्य्यादा का विचार करना । इज्जत का खयाल करना । जैसे,—अपने कुल की लज्जा करो ।

(२) मान-मर्य्यादा । पत । इज्ज़त । जैसे,—भगवान् लज्जा रखे ।

क्रि० प्र०—रखना

लज्जाप्रद-वि० [सं०] जिससे लज्जा उत्पन्न हो । लज्जाजनक ।

लज्जाप्राया-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक

लज्जालु-संज्ञा पुं० [सं०] लजालू का पौधा। लाजवंती ।

लज्जावंत-वि० [सं० लज्जावत्] शर्मीला । लज्जायुक्त । लजीला । संज्ञा पुं० लजालू का पौधा । लाजवंती ।

लज्जावती-वि० स्त्री० [सं०] लज्जाशील । शर्मीली । संज्ञा स्त्री० लजालू का पौधा ।

लज्जावान् वि० [सं० लज्जावत्] [स्त्री० लज्जावती] लज्जाशील । जिसमें लज्जा हो । शर्मदार । हयादार ।

लज्जाशील-वि० [सं०] जिसमें लज्जा हो । जो बात बात में शरमाता हो । लजीला ।

लज्जाशून्य-वि० [सं०] जिसे लज्जा न हो । जिसे कोई अनुचित या भद्दी बात करते कुछ संकोच या हिचक न हो । बेहया ।

लज्जाहीन-वि० [सं०] लज्जाशून्य । बेहया ।

लज्जित-वि० [सं०] लज्जा के वशीभूत । शर्म में पड़ा हुआ । शर्माया हुआ ।

लटंग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा में होता है ।

लट-संज्ञा स्त्री० [सं० लटवा] (१) सिर के बालों का समूह जो नीचे तक लटके । बालों का गिरा हुआ गुच्छा । केशपाश । अलक । केशलता ।

मुहा०—लट छिटकाना = सिर के बालों को खोलकर इधर उधर बिखराना ।

(२) एक में उलझे हुए बालों का गुच्छा । परस्पर चिमटे हुए बाल ।

मुहा०—लट पड़ना = बालों का परस्पर उलझ या चिमट जाना ।

(३) एक प्रकार का बेंत जो आसाम की ओर बहुत होता है । (४) एक प्रकार के सूत के से महीन कीड़े जो मनुष्य की आँतों में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं । चनूना ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लपट] लपट । लौ । अग्निशिखा । ज्वाला । उ०—(क) झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत, फल चटकि लट लटकि द्रुम नवायो ।—सूर । (ख) चट चट बोलहिं बाँस बहु सिखि लट लागि अकास ।—गोपाल ।

लटक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। नीचे की ओर गिरता सा रहने का भाव । (२) झुकाव । लचक । (३) अंगों की मनोहर गति या चेष्टा । लुभावनी चाल । अंग भंगी । उ०—प्राणनाथ सों प्राणपियारी प्राण लटक सों लीन्हें ।—सूर ।

यौ०—लटक चाल ।

(४) ढालू जमीन । ढाल । (पालकी के कहार)

लटकन-संज्ञा पुं० [हिं० लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव । नीचे की ओर गिरता सा रहने का भव । (२) किसी वस्तु में लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो । लटकनेवाली चीज । (३) मनोहर अंग भंगी । लुभावनी चाल। लटक । उ०—बझे जाइ खग ज्यों प्रिय छबि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लटकनी-लस ।—सूर । (४) नाक में पहनने का एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है । (यह या तो नाक के दोनों छेदों के बीच में पहना जाता है, अथवा नथ में लगा रहता है) । (५) कलगी या सिरपेंच में लगे हुए रत्नों का गुच्छा जो नीचे की ओर झुका हुआ हिलता रहता है । उ०—लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत मन्मथ कोटि वारनै गए री । —सूर । (६) मलखंभ की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों के अँगूठों में बेंत फँसाकर पिंडली को लपेटते हैं और पिंडली के ही बल पर अँगूठों से बेंत को ऊपर खींचते हुए जंघों के बल पर का सारा धड़ नीचे को लटका देते हैं ।

संज्ञा पुं० [हिं० लटकना ?] एक पेड़ जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं और जिसके बीजों को पानी में पीसने से गेरुआ रंग निकलता है । इस रंग से कपड़े रँगते हैं ।

लटकना-क्रि० अ० [सं० लडन = भूलना] (१) किसी ऊँचे स्थान से लग या टिककर नीचे की ओर अधर में कुछ दूर तक फैला रहना । ऊपर से लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । झूलना । जैसे,—छत से फ़ानूस लटकना, पेड़ से लता लटकना, कूएँ में डोरी लटकना ।

संयो० क्रि०—आना ।

विशेष—'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है । 'टँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकने या अड़ने का भाव प्रधान है, और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या अधर में हिलने डोलने का । जैसे,—(क) तसवीर बहुत नीचे तक लटकआई है । (ख) कूएँ में डोरी लटक रही है । ऐसे स्थलों पर 'टँगना' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

(२) ऊँचे आधार पर टिकी हुई वस्तु का कुछ दूर नीचे तक आकर इधर से उधर हिलना डोलना । झूलना । (३) किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग नीचे की ओर अधर में हों । टँगना । जैसे,—वह एक पेड़ की डाल से लटक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(४) किसी खड़ी वस्तु का किसी ओर को झुकना । नम्र होना । जैसे,—खंभा पूरब की ओर कुछ लटका दिखाई देता है । (५) लचकना । बल खाना । उ०—लटकत चलत नंदकुमार ।—सूर ।

मुहा०—लटकती चाल = बल खाती हुई मनोहर चाल । उ०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती लाल । चल चख चितवनि चोर चित लियो बिहारी लाल ।—बिहारी ।

(६) कोई काम पूरा न होने या किसी बात का निर्णय न होने के कारण दुबधा में पड़ा रहना । झूलना । जैसे,—अभी तक लटक रहे हैं; कुछ फैसला नहीं हो रहा है । (७) किसी काम का बिना पूरा हुए पड़ा रहना । देर होना ।

लटकवाना-क्रि० स० [हिं० लटकाना का प्रेर०] लटकाने का काम दूसरे से कराना ।

लटकहरा†-संज्ञा पुं० [देश०] तेली ।

लटका-संज्ञा पुं० [हिं० लटक] (१) गति । चाल । ढब । (२) बनावटी चेष्टा । हाव भाव । (३) बातचीत करने में स्वर का एक विशेष प्रकार से चढ़ाव उतार । बातचीत का बनावटी ढंग । जैसे,—लटके के साथ बात करना । (४) कोई शब्द या वाक्य जिसके बार बार प्रयोग का किसी को अभ्यास पड़ गया हो । सखुनतकिया । (५) मंत्र तंत्र की छोटी युक्ति । टोटका । (६) किसी रोग या बाधा की शांति की छोटी युक्ति । संक्षिप्त उपचार । छोटा नुसख़ा । जैसे,—यह फकीरी लटका है; इससे जरूर फायदा होगा । (७) एक प्रकार का चलता गाना । (८) लिंग । (बाजारू)

लटकाना-क्रि० स० [हिं० लटकना] (१) किसी ऊँचे स्थान से एक छोर लगा या टिकाकर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । जैसे,—छत में फ़ानूस लटकाना । कूएँ में डोरी लटकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—'टाँगना' और 'लटकाना' इन दोनों शब्दों के मूल भाव में अंतर है । 'टाँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकाने या अड़ाने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैलाने या हिलाने डुलाने का । जैसे,—(क) धोती और नीचे तक लटका दो । (ख) कूएँ में डोरी लटका दो ।

(२) किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग अधर में हों । एक छोर या अंश ऊपर टिकाना जिससे कोई वस्तु जमीन पर न गिरे । टाँगना । जैसे,—अँगरखा खूँटी में लटका दो । (३) किसी खड़ी वस्तु को किसी ओर झुकाना । लचकाना या नम्र करना । (४) किसी का कोई काम पूरा न करके उसे दुबधा में डालना । आसरे में रखना । इंतजार कराना । जैसे,—उसे क्यों लटकाए हो; जो कुछ देना हो, दे दो । (५) किसी काम को पूरा न करके डाल रखना । देर करना ।

लटकीला-वि० [हिं० लटक + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लटकीली] झूमता हुआ । बल खाता हुआ । लचकदार । जैसे,—लटकीली चाल ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लटकू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसकी छाल को उबालने से रंग निकलता है।

लटकौवा-वि० [हिं० लटकाना] लटकनेवाला। जो लटकता हो।

यौ०—लटकौवा मालखंभ = वह मालखंभ जिसकी लकड़ी गड़ी न रहकर ऊपर से लटकाई रहती है।

लटजीरा-संज्ञा पुं० [लट ? + हिं० जीरा] (१) अपामार्ग। चिचड़ा। (२) एक प्रकार का जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना-क्रि० अ० [सं० लड = हिलना डोलना] (१) थककर गिर जाना। लड़खड़ाना। उ०—(क) मर्कट विकट भट जुटत कटत, न लटत तन जर्जर भए।—तुलसी। (ख) लटे तन जात किते छत जात।—सूदन।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) श्रम, रोग आदि से शिथिल होना। अशक्त होना। दुबला और कमजोर होना। जैसे,—आजकल वे बीमारी से बहुत लट गए हैं। उ०—(क) श्री रघुबीर, निवारिए पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो।—तुलसी। (ख) तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो।—तुलसी। (ग) कटी कटीली कांति पै, लटी लटी अति जाथ।—रामसहाय। (३) ढीला पड़ना। मंद पड़ना। शक्ति और उत्साह से रहित होना। उ०—देखि भीरु लटै लगे, मन मन घटै लगे, पाछे पग हटै लगे क्रम क्रम नटै लगे।—गोपाल। (४) श्रम से निकम्मा हो जाना। अधिक काम करने के योग्य न रह जाना। शिथिल होना। थक जाना। उ०—रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।—तुलसी। (५) व्याकुल होना। विकल होना। उ०—फटे फन फनि के औ लटे दिगदंती दीह, घटे बल कूरम बिकलता को पाई है।—रघुनाथ।

क्रि० अ० [सं० लल, लड = ललचाना] (१) ललचाना। लेने के लिये लपकना। चाह करना। लुभाना। उ०—परिहरि सुरभनि सुनाम गुंजा लखि लटत।—तुलसी। (२) लिप्त होना। अनुरक्त होना। प्रेमपूर्वक तत्पर होना। लीन होना। उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिए जासों मन मान्यो। छपद कंज तजि बेलि सों लटि लटि प्रेम न जान्यो।—सूर। (ख) कित बिमोह नटो फटो गगन मगन सियत।—तुलसी।

लटपट-वि० दे० "लटपटा"।

लटपटा-वि० [हिं० लटपटाना] [स्त्री० लटपटी] (१) गिरता पड़ता। लड़खड़ाता हुआ। सीधे ढंग से न चलता हुआ। निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुकता हुआ। जैसे,—लटपटी चाल। उ०—धूरी धौत तनु,नैननि अंजन, चलत लटपटी चाल।—सूर। (२) जो ठीक बँधा न रहने के कारण ढीला होकर नीचे की ओर सरक आया हो। ढीला ढाला। जो चुस्त और दुरुस्त न हो। अस्त व्यस्त। बिना सँवारा हुआ। उ०—(क) लटपटी पाग उनींदे नैना डग डग डोलत डगमगात।—सूर। (ख) सूर देखि लटपटी पाग पर जावत की छबि लाल।—सूर। (३) (शब्द) जो स्पष्ट या ठीक क्रम से न निकले। टूटा फूटा। उ०—ज्यों ज्यों बलकति बैन लटपटे कहति छबीली।—व्यास। (४) जो ठीक क्रम से न हो। अव्यवस्थित। अंडबंड। अटसट। (५) थककर गिरा हुआ। हारा हुआ। अशक्त। बेबस। उ०—तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ?—तुलसी।

वि० (१) जो लेई की तरह गाढ़ा हो। जो न पानी की तरह पतला हो और न बहुत अधिक गाढ़ा। लुटपुटा। जैसे,—लटपटी तरकारी। (२) गिंजा हुआ। मला दला हुआ। जो इधर उधर सुकड़ा हुआ हो, साफ या बराबर न हो। जिसमें शिकन या सिलवट पड़ी हो। (कपड़ा इत्यादि) उ०—त्रिबली पलोटन सलोट लटपटी सारी चोट चटपटी अटपटी चाल अटक्यो।—सूर।

लटपटान-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] (१) लटपटाने की क्रिया या भाव। लड़खड़ाहट। (२) मनोहर गति या चाल। लटक। लचक। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी के राग रंग लटपटानि के भेद न्यारे न्यारे जैसे पानी में पानी नरीच।—हरिदास।

लटपटाना-क्रि० अ० [सं० लड = हिलना डोलना + पत् = गिरना] (१) सीधे ढंग से न चलकर निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना। गिरना पड़ना। लड़खड़ाना। उ०—करत बिचार चल्यो सम्मुख ब्रज। लटपटाइ पग धरनि धरत गज।—सूर।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) स्थिर न रहना। जमा न रहना। डिगना। विचलित होना। (३) ठीक तरह से न चलना। च्युत होना। चूक जाना। जैसे,—पैर लटपटाना, जीभ लटपटाना।

क्रि० अ० [सं० लल, लड = लुभाना] (१) लुभाना। मोहित होना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लटपटाइ रहे मानि सबै सुख चैन।—हरिदास। (२) लीन होना। लिप्त होना। अनुरक्त होना।

लटा†-वि० [सं० लट्ट] [स्त्री० लटी] (१) लोलुप। लंपट। (२) लुच्चा। नीच। (३) तुच्छ। हीन। (४) गिरा हुआ। पतित। (५) बुरा। ख़राब। उ०—जग में करो जो न कृत मानै। नीकी करी, लटी उर आनै।—लाल।

लटापटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] (१) लटपटाने की क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या भाव। (२) लड़ाई झगड़ा। भिड़ंत। उ०—लटापटी होवन लगी मोहि जुदा करि देहु।—गिरधर।

लटापोट⊛†–वि० [हिं० लोट पोट] लोट पोट। मोहित। मुग्ध। उ०—अटकि मुबारक मति गई लूटि सुखन की मोट। लटापोट ह्वै लपटिगो लटकत लट की ओट।—मुबारक।

लटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सूत आदि का लच्छा। लच्छी। आँटी।

मुहा०—लटिया करना = सूत को लपेट कर आँटी या लच्छे के रूप में करना।

लटिया सन–संज्ञा पुं० [हिं० लट + सन] पटसन।

लटी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लटा = बुरा] (१) बुरी बात। (२) झूठी बात। गप।

मुहा०—लटी मारना = गप हाँकना। सीटना। झूठी बात कहना। (३) साधुनी। भक्तिन। (४) वेश्या। रंडी।

लटुआ–संज्ञा पुं० दे० "लट्टू"। उ०—लटुआ लौं प्रभु कर गहै निगुनी गुन लपटाय। वहै गुनी कर तें छुटै निगुनीयै ह्वै जाय।—बिहारी।

लटुक–संज्ञा पुं० [सं० लकुच] लकुट नाम का पेड़ और उसका फल। वि० दे० "लकुट" या "लुकाट"।

लटुरी–संज्ञा स्त्री० दे० "लटूरी"। उ०—लटकन ललित लटुरियाँ मसि विंदु गोरोचन।—सूर।

लटू–संज्ञा पुं० दे० "लट्टू"। उ०—(क) चारु चकई लै घुनघुना लटू कंचन को खेलि घरे लाल बाल सखन बुलाय रे।—दीनदयाल। (ख) रन करत लटू को करम रथ, होत छ टूको सत्रु उर।—गोपाल।

लटूरा†–संज्ञा पुं० [हिं० लट्टू] कुप्पा।

लटूरी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सिर के बालों का लटकता हुआ गुच्छा। केश। अलक। उ०—लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरी।—तुलसी।

लटोरा–संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं। यह वसंत में पत्तियाँ झाड़ता है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है। फलों में बहुत सा लसदार गूदा होता है। फल औषध के काम में आता है और सूखी खाँसी को ढीली करने के लिये दिया जाता है। फ़ारसी में इसे 'सपिस्ताँ' कहते हैं; और हकीम लोग मिस्री मिलाकर इसका लऊक़ सपिस्ताँ नामक अवलेह बनाते हैं और खाँसी में चाटने के लिये देते हैं। संस्कृत में भी इसे 'श्लेष्मांतक' कहते हैं। संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जिसकी गर्दन और मुँह काला, डैने नीलापन लिए हुए भूरे और दुम काली होती है। इसकी लंबाई दस इंच होती है। यह भारत में स्थायी रूप से रहता है और प्रायः मैदानों में ही पाया जाता है। यह तीन से छः तक अंडे देता है। इसके कई भेद होते हैं। जैसे,—मटिया, कजला, खरखला।

लंट्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आदमी। दुर्जन।

लट्टपट्ट‡–वि० दे० "लथपथ"। उ०—प्रेम रंग लट्टपट्ट आवैं जायँ झट्टपट्ट देववृंद देखे परैं मानो नट्टबट्ट हैं।—रघुराज।

लट्टू–संज्ञा पुं० [सं० लुठन = लुढ़कना] गोले बट्टे के आकार का एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूत के द्वारा जमीन पर फेंककर लड़के नचाते हैं।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक कील जड़ी होती है, जिसे गूँज कहते हैं। इसमें डोरी लपेटकर जोर से फेंकते हैं, जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

क्रि० प्र०—नचाना।—फिराना।

मुहा०—(किसी पर) लट्टू होना = (१) मोहित होना। आसक्त होना। लुभाना। आशिक होना। उ०—(क) हम तौ रीझि लटू भईं लालन महाप्रेम तिय जाति।—सूर। (ख) रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।—बिहारी। (ग) ब्याह ही तें भए कान्ह लटू तब ह्वैहै कहा जब होयगो गौनो?—पद्माकर। (२) चाह में हैरान होना। प्राप्ति के लिये उत्कंठित होना। उ०—जा सुख की लालसा लटू सिव सनकादि उदासी।—तुलसी।

लट्टूदार पगड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्टूदार + पगड़ी] एक प्रकार की पगड़ी जिसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा सा भी निकला होता है। इसे छज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ–संज्ञा पुं० [सं० यष्टि = प्रा० लट्ठि] बड़ी लाठी। मोटा लंबा डंडा।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

यौ०—लट्ठबाज़। लट्ठमार।

मुहा०—किसी व्यक्ति या वस्तु के पीछे लट्ठ लिए फिरना = किसी का बराबर विरोध करना। किसी वस्तु के प्रतिकूल आचरण करना। जैसे,—तुम तो भक्त के पीछे लट्ठ लिए फिरते हो।

लट्ठबाज़–वि० [हिं० लट्ठ + फ़ा० बाज] (१) लाठी लड़नेवाला। लठैत। (२) बड़ी लाठी बाँधनेवाला।

लट्ठबाज़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठबाज + ई (प्रत्य०)] लाठी की लड़ाई या मार पीट।

लट्ठमार–वि० [हिं० लट्ठ + मारना] (१) लट्ठ मारनेवाला। (२) (बात या वचन) अप्रिय और कठोर। कर्कश। कड़वा। जैसे,—उसकी बात लट्ठमार होती है।

लट्ठर†–वि० [हिं० लट्ठ] कठोर। कड़ा। कर्कश।

लट्ठा–संज्ञा पुं० [हिं० लट्ठ] (१) लकड़ी का बहुत लंबा टुकड़ा। बल्ला। शहतीर। (२) घर की छाजन या पाटन में लगा हुआ लकड़ी का बल्ला। धरन। कड़ी। (३) लकड़ी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खंभा। जैसे,—तालाब का लट्ठा, सरहद का लट्ठा। (४) खेत या जमीन नापने का बाँस या बल्ला जो ५½ गज का होता है और नाप के रूप में चलता है। (५) एक प्रकार का गाढ़ा मोटा कपड़ा। गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा + फ़ा० बंदी] जमीन की साधारण नाप जो लट्ठे से की जाय।

लट्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) एक प्रकार का राग।

लट्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का करंज। (२) एक प्रकार का बाजा। (३) गौरा पक्षी। (४) कुसुंभ। (५) चित्र बनाने की कूँची। क़लम। तूलिका। (६) व्यभिचारिणी स्त्री। (७) बालों की लट। अलक।

लठ-संज्ञा पुं० दे० "लट्ठ"।

लठियल †-वि० [हिं० लाठी + इयल (प्रत्य०)] लाठी बाँधने या चलानेवाला। लठैत।

लठिया ‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाठी] लाठी। लकड़ी। डंडा।

लठैत-संज्ञा पुं० [हिं० लठ + ऐत (प्रत्य०)] लाठी चलानेवाला। लाठी की लड़ाई लड़नेवाला। लठबाज़।

लड़ंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] (१) लड़ाई। भिड़ंत। (२) सामना। मुकाबला।

लड़-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि, हिं० लड़ी] (१) सीध में गुछी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़। (२) रस्सी का एक तार (जैसे कई एक साथ मिलाकर बटे जायँ) पाम। पान। (३) पंक्ति। पाँत। क़तार। सिलसिला। श्रेणी।

मुहा०—(किसी के साथ) लड़ मिलाना = मेल करना। मित्रता करना। (किसी की) लड़ में रहना = दल या पक्ष में रहना। अनुयायिओं में रहना।

(४) पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़इता†-वि० दे० "लड़ैता"।

लड़कई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + ई] (१) लड़कपन। बचपन। बाल्यावस्था। (२) अज्ञता। नादानी। (३) चपलता। चंचलता। चिलबिलापन।

लड़कखेल-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] (१) बालकों का खेल। (२) सहज काम। साधारण बात।

लड़कखेलवा†-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] (१) बालकों का खेलवाड़। (२) सहज काम।

लड़कपन-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + पन] (१) वह अवस्था जिसमें मनुष्य बालक हो। बाल्यावस्था। जैसे,—लड़कपन में मैं वहाँ प्रायः जाया करता था। (२) लड़कों का सा चिलबिलापन। चपलता। चंचलता। जैसे,—हर दम लड़कपन मत किया करो।

क्रि० प्र०—करना।

लड़कबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + बुद्धि] बालकों की सी समझ। अपरिपक्व बुद्धि। अज्ञता। नासमझी।

लड़का-संज्ञा पुं० [सं० लट = लड़कों का सा आचरण करना। अथवा लाड़ = दुलार] [स्त्री० लड़की] (१) थोड़ी अवस्था का मनुष्य। वह जिसकी उम्र कम हो। बालक। (२) पुत्र। बेटा।

यौ०—लड़का बाला।

मुहा०—लड़कों का खेल = (१) बिना महत्त्व की बात। (२) सहज बात या काम। ऐसा काम जिसका करना बहुत सहज हो। जैसे,—यह काम करना लड़कों का खेल नहीं है। राह बाट का लड़का = ऐसा लड़का जिसे किसी ने रास्ते में पड़ा पाया हो, और जिसके माता पिता का पता न हो। लड़की लड़का = संतान। औलाद।

लड़काई †-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़कई"।

लड़का बाला-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + सं० बाल] (१) संतति। संतान। औलाद। बाल बच्चा। जैसे,—उन्हें कोई लड़का बाला नहीं है। (२) पुत्र कलत्र आदि। परिवार। कुटुंब। कुनबा। जैसे,—(क) परदेस में लड़के बालों की खबर न मिलने से जी घबराता है। (ख) वह अपने लड़के बालों की ख़बर नहीं लेता।

लड़किनी ‡-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़की"।

लड़की-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का] (१) छोटी अवस्था की स्त्री। बालिका। (२) कन्या। पुत्री। बेटी।

लड़कीवाला-संज्ञा पुं० [हिं० लड़की + वाला (प्रत्य०)] विवाह संबंध में कन्या का पिता या और कोई संरक्षक। जैसे,—लड़कीवाले को सदा दबकर रहना पड़ता है।

लड़कौरी-वि० स्त्री० [हिं० लड़का + औरी (प्रत्य०)] (स्त्री) जिसकी गोद में लड़का हो। जिसके पास पालने पोसने के योग्य अपना बच्चा हो। जैसे,—लड़कौरी स्त्री को तो बच्चे से ही छुट्टी नहीं मिलती।

लड़खड़ाना-क्रि० अ० [सं० लड़ = डोलना + खड़ा] (१) न जमने या न ठहरने के कारण इधर उधर हिल डोल जाना। पूर्ण रूप से स्थित न रहने के कारण खड़ा न रह सकना, इधर उधर झुक पड़ना। झोंका खाना। डगमगाना। डिगना। जैसे,—पैर लड़खड़ाना, आदमी का लड़खड़ा कर गिरना। उ०—(क) धनि जसुमति बड़भागिनी लिए स्याम खेलावै। तनक तनक भुज पकरि कै ठाढ़ो होन सिखावै। लरखरात गिरि परत है, चलि घुटरुवनि धावै। —सूर। (ख) दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट। —तुलसी। (ग) रघुनाथ दौरत में दामिनी सी लसति है, गिरति है, फेरि उठि दौरति है लरखराति।—रघुनाथ।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) डगमगाकर गिरना। झोंका खाकर नीचे आ जाना। उ०—गंजेउ सो गरजेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।—तुलसी। (३) ठीक तौर से न चलना। अपनी क्रिया में ठीक न रहना। विचलित होना। च्युत होना। चूकना। जैसे,—कोई चीज उठाने में उसका हाथ लड़खड़ाता है।

मुहा०—जीभ लड़खड़ाना=(१) ठीक ठीक या पूरे शब्द और वाक्य मुँह से न निकलना। मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। टूटे फूटे शब्द या वाक्य निकलना। (२) मुँह से रुक रुककर शब्द निकलना।

लड़खड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़खड़ाना] लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट।

लड़ना-क्रि० अ० [सं० रणन] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने का व्यापार करना। आघात प्रतिघात करना। एक दूसरे पर वार करना। एक दूसरे को चोट पहुँचाना। युद्ध करना। भिड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यौ०—लड़ना भिड़ना।

(२) एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न करना। कुश्ती करना। मल्ल युद्ध करना। जैसे,—पहलवानों का अखाड़े में लड़ना। (३) एक दूसरे को कठोर शब्द कहना। वाग्युद्ध करना। झगड़ा करना। कलह करना। हुज्जत करना। तकरार करना। जैसे,—इसी बात पर दोनों घंटों से लड़ रहे हैं। (४) वादविवाद करना। बहस करना। (५) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरे से जा लगना। टक्कर खाना। टकराना। भिड़ना। जैसे,—रेलगाड़ियों का लड़ना, नावों का लड़ना। (६) विरोधी या प्रतिपक्षी के हानि पहुँचानेवाले प्रयत्न को निष्फल करने और उसे विफल करने का उद्योग करना। व्यवहार आदि में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न करना। जैसे,—मुक़दमा लड़ना। (७) पूर्ण रूप से घटित होना। एक बात का दूसरी बात के अनुकूल पड़ना। लक्ष्य के अनुकूल होना। मेल मिल जाना। उपयुक्त उतरना। सटीक बैठना। जैसे,—बात ही तो है, लड़ गई।

मुहा०—हिसाब लड़ना=(१) लेखा ठीक उतरना। (२) किसी बात का सुभीता होना।

(८) अनुकूल पड़ना। ठीक होना। मुवाफ़िक उतरना। जैसे,—युक्ति लड़ना, किस्मत लड़ना। (९) बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। जैसे,—भिड़ लड़ गई। (पश्चिम) (१०) किसी स्थान पर पड़ना। किसी वस्तु से संयुक्त होना। लक्ष्य पर पहुँचना। भिड़ना। जैसे,—आँख लड़ना। निशाना लड़ना।

लड़बड़ाना-क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लड़बावर-वि० [सं० लड़=लड़कों का सा+बावरा] [स्त्री० लड़बावरी] (१) जो लड़कपन लिए हो। जो चतुर और गंभीर न हो। भोला भाला और उजड्ड। अल्हड़। मूर्ख। नासमझ। अहमक़। उ०—(क) सखियाँ लड़बावरी रावरी हैं तिनकी मति में अति दौरति हौं।—बेनीप्रवीन। (ख) नूर कहै न सुनै, लड़बावरी! चंदहि दोष कछू न भलोई।—नूर (२)। गँवार। अनाड़ी। उ०—एरी लड़बावरी! अहीरि ऐसी बूझौं तोहि नाहिं सो सनेह कीजै, नाह सों न कीजिए।—केशव। (३) मूर्खता से भरा हुआ। जिससे मूर्खता प्रकट हो। उ०—रावरी जो लड़बावरी बात है सो सुनि राखियो, मैं न सहूँगी।—रघुनाथ।

लड़बौरा-वि० दे० "लड़बावरा" उ०—सुन री राधा अति लड़बौरी जमुन गई तब संग कौन ही।—सूर।

लड़ाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना+आई (प्रत्य०)] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने की क्रिया। आघात प्रतिघात। एक दूसरे पर वार। एक दूसरे को चोट पहुँचाने की क्रिया या भाव। भिड़ंत। युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—लड़ाई भिड़ाई।

(२) सेनाओं का परस्पर आघात प्रतिघात। संग्राम। जंग। युद्ध। जैसे,—दोनों राज्यों के बीच लड़ाई हो रही है।

क्रि० प्र०—करना।—छिड़ना।—ठनना।—मचना।—होना।

मुहा०—लड़ाई का मैदान=रणक्षेत्र। लड़ाई पर जाना=योद्धा या सैनिक के रूप में रणक्षेत्र में जाना।

(३) एक दूसरे को पटकने का प्रयत्न। मल्लयुद्ध। कुश्ती। (४) परस्पर कठोर शब्दों का व्यवहार। वाग्युद्ध। झगड़ा। कलह। तकरार। हुज्जत। कहा सुनी।

यौ०—लड़ाई झगड़ा।

(५) वादविवाद। बहस। (६) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरी से जा लगना। टक्कर। (७) विरोधी या प्रतिपक्षी के व्यवहार से अपनी रक्षा करने और उसे विफल करने का परस्पर प्रयत्न। व्यवहार या मामले में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न या चाल। जैसे,—ज़मीन के लिये अदालत में लड़ाई। (८) अनबन। विरोध। बैर। बिगाड़। दुश्मनी। जैसे,—उन दोनों में आजकल लड़ाई है।

लड़ाका-वि० [हिं० लड़ना+आका (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ाकी] (१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़नेवाला। योद्धा। सिपाही। (२) बात बात में लड़ जानेवाला। बहुत झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। फ़सादी।

लड़ाकू-वि० [हिं० लड़ना] (१) युद्ध में व्यवहृत होनेवाला। लड़ाई में काम आनेवाला। जैसे,—लड़ाकू जहाज। (२) दे० "लड़ाका"।

लड़ाना-क्रि० स० [हिं० लड़ना का प्रेर०] (१) लड़ने का काम दूसरे से कराना। लड़ने में प्रवृत्त करना। जैसे,—उन दोनों को तुम्हीं लड़ा रहे हो। (२) झगड़े में प्रवृत्त करना। कलह के लिये उद्यत करना। (३) एक वस्तु को दूसरी से वेग या झटके के साथ मिला देना। टक्कर खिलाना। भिड़ाना। (४) लक्ष्य पर पहुँचाना। किसी स्थान पर फेंकना या डालना। जैसे,—निशाना लड़ाना, आँख लड़ाना। (५) परस्पर उलझाना। जैसे,—पतंग लड़ाना, डोरा लड़ाना। (६) सफलता के लिये व्यवहार में लाना। सिद्धि के लिये संचालित करना। जैसे,—युक्ति लड़ाना, बुद्धि लड़ाना।

क्रि० स० [हिं लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। प्रेम से पुचकारना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाई लाड़ली नाहीं नाहीं यहाँ ब्रज जावरो।—हरिदास।

लड़ायता†-वि० दे० "लड़ैता"। उ०—नंदरु यशोदा के लड़ाइते कुँवर हिय हरे ग्वार गोरिन के खोरिन बगे रहैं। —देव।

लड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्ठि, प्रा० लट्ठि] (१) सीध में गुछी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़ी। (२) रस्सी या गुच्छे का तार (जैसे, कई एक साथ मिलाकर बटे या गुछे जायँ)। (३) पंक्ति। कतार। सिलसिला। श्रेणी। जैसे,—यहाँ से वहाँ तक टीलों की एक लड़ी चली गई है। (४) पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लडुआ, लडुवा-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] मोदक। लड्डू।

लड़ैता-वि० [हिं० लाड़ = प्यार + ऐता (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ैती] (१) जिसका बहुत लाड़ प्यार हो। जिस पर बहुत प्रेम किया जाय। लाडला। दुलारा। जैसे,—लड़ैते लड़के बिगड़ जाते हैं। (२) जो लाड़ प्यार के कारण बहुत इतराया हो। जिसका स्वभाव किसी के बहुत प्रेम दिखाने के कारण बिगड़ गया हो। धृष्ट। शोख़। (३) प्यारा। प्रिय। उ०—जितही जित रुख करै लड़ैती तितही आपुन आवै। —सूर।

वि० [हिं० लड़ना] लड़नेवाला। योद्धा। वीर। उ०—कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।—बिहारी।

लड्डू-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] गोल बँधी हुई मिठाई। मोदक।

विशेष—लड्डू कई प्रकार के और कई चीजों के बनते हैं। जैसे,—बेसन के लड्डू, खोए के लड्डू, बेसन की बुँदिया के लड्डू जो बाबर के लड्डू और मोतीचूर कहलाते हैं।

मुहा०—लड्डू खिलाना = उत्सव मनाना। दावत करना। लड्डू मिलना = कोई अच्छा लाभ होना। जैसे,—वहाँ जाने से क्या लड्डू मिल गया? लड्डू बँटना = लाभ या प्राप्ति होना। जैसे,—वहाँ क्या लड्डू बँटता है? ठग के लड्डू खाना = पागल होना। नासमझी करना। होश हवास में न रहना। (पहले ठग लोग मुसाफ़िरों को धोखे से मादक वस्तु या विष मिला लड्डू खिला देते थे; और जब वे बेहोश हो जाते थे, तब उनका माल लूट लेते थे।) मन के लड्डू खाना या फोड़ना = व्यर्थ किसी बड़े लाभ की कल्पना करना जिसका होना बहुत कठिन हो।

लड्यावना*†-क्रि० स० [हिं० लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। उ०—(क) मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजे जाहिं पूत लौं लाड लड्यावति है।—लक्ष्मण। (ख) कहते हैं कि भर्त्ता की लड़याई हुई उस चंडी ने उसके प्रतिज्ञा किए हुए दो बरदान उगले।—लक्ष्मण।

लढ़ंत-संज्ञा पुं० [सं० लुंठन = लुढ़कना] कुश्ती का एक पेच जो मुरग़ों या ख़रगोशों की लड़ाई का अनुकरण है।

लढ़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० लुढ़ना] बैलगाड़ी।

लढ़िया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुढ़ना, लुढ़कना] बैलगाड़ी।

लत-संज्ञा स्त्री० [सं० रति = अनुरक्ति, लीनता] किसी बुरी बात का अभ्यास और प्रवृत्ति। बुरी आदत। दुर्व्यसन। बुरी टेव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

लतखोर-वि० दे० "लतखोरा"।

लतखोरा-वि० [हिं० लात + फा० खोर = खानेवाला] [स्त्री० लतखोरिन] (१) सदा लात खानेवाला। सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। (२) नीच। कमीना। (३ दास। किंकर। गुलाम। (४) देहली। दहलीज। चौखट। (५) दरवाज़े पर पड़ा हुआ पैर पोंछने का कपड़ा। पायंदाज। गुल्मगर्दा।

लतड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी नाम का अन्न।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लात = पैर] एक प्रकार की जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत-वि० दे० "लथपथ"।

लतमर्दन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लत + सं० मर्दन] (१) लातों से दबाने की क्रिया। पैरों से रौंदने की क्रिया। (२) लातों की मार। पदाघात।

लतर-संज्ञा स्त्री० [सं० लता] बेल। वल्ली।

लतरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जिसे 'बरबरा' और 'रेंवछ' भी कहते हैं। इसकी फलियों की तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास या पौधा जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेतों में मटर के साथ बोया जाता है और जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं। इसके दानों से दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'लोट' और 'खेसारी' भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लात] एक प्रकार की हलकी जूती जो केवल तले के रूप में होती है और अँगूठे को फँसाकर पहनी जाती है।

लतहा†-वि० [हिं० लात + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० लतही] लात मारनेवाला (बैल या घोड़ा)। जैसे,—लतही घोड़ी।

लतांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटशृंगी। काकड़ासींगी।

लता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पौधा जो सूत या डोरी के रूप में ज़मीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तु के साथ लिपट कर ऊपर की ओर चढ़े। वल्ली। बेल। बौंर।

विशेष—जिस लता में बहुत सी शाखाएँ इधर उधर निकलती हैं और पत्तियों का झापस होता है, उसे संस्कृत में प्रतालिनी कहते हैं।

(२) कोमल कांड या शाखा। जैसे,—पद्मलता।

विशेष—सौंदर्य्य, कोमलता और सुकुमारता का सूचक होने के कारण 'बाहु' या 'भुज' शब्द के साथ कभी कभी 'लता' शब्द लगा दिया जाता है। जैसे,—बाहुलता, भुजलता। सुंदरी स्त्री के लिये भी 'कनकलता' आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

(३) प्रियंगु। (४) स्पृक्का। (५) अशनपर्णी। (६) ज्योतिष्मती लता। (७) माधवी लता। (८) दूब। (९) कैवर्त्तिका। (१०) सारिवा। (११) जाती पुष्प का पौधा। (१२) सुंदरी स्त्री।

लताकरंज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का करंज या कंजा। कंटकरंज।

पर्य्या०—दुष्पर्श। वीराख्य। वज्रबीजक। धनदाक्षी। कंटफल। कुवेराक्षी।

विशेष—वैद्यक में यह कटु, उष्ण और वात्त-कफ-नाशक कहा गया है। इसका बीज दीपन, पथ्य तथा गुल्म और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

लताकर-संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक प्रकार।

लताकस्तूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो दक्षिण में होता है। वैद्यक में इसे तिक्त, स्वादु, वृष्य, शीतल, लघु, नेत्रों को हितकारी तथा श्लेष्मा, तृष्णा और मुख रोग को दूर करनेवाली माना है।

लताकुंज-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं से छाया हुआ स्थान।

लतागण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में सूत या डोरी के रूप में फैलनेवाले पौधों का वर्ग जिसके अंतर्गत ये पौधे हैं—पान, गुर्च, सोमवल्ली, विष्णुक्रांता, स्वर्णवल्ली, हड़संहारी, ब्रह्मदंडी, आकाशबेल, वटपत्री, हिंगुपत्री, वंशपत्री, बृहन्नला, अर्कपुष्पी, सर्पाक्षी, गूमा, मूसाकानी, पोई, मोरशिखा, बंधवल्ली, कनकलता (नागकेसर), जाती और माधवी।

लतागृह-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं से मंडप की तरह छाया हुआ स्थान।

लताजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

लताड़-संज्ञा स्त्री० दे० "लथाड़"।

लताड़ना-क्रि० स० [हिं० लात] (१) पैरों से कुचलना। रौंदना। (२) लातों से मारना। (३) हैरान करना। श्रम से शिथिल करना। थकाना। (४) लेटे हुए आदमी के शरीर पर खड़े होकर धीरे धीरे इधर उधर चलना, जिससे उसके बदन की थकावट दूर होती है। (पश्चिम)

लतातरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारंगी का पेड़। (२) ताड़ का पेड़। (३) शाल या साखू का पेड़।

लताताल-संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

लतानन-संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक ढंग।

लतापता-संज्ञा पुं० [सं० लतापत्र] (१) लता और पत्ते। पेड़ पत्ते। पेड़ों और पौधों का समूह। (२) पौधों की हरियाली। (३) जड़ी बूटी। जैसे,—गाँव के लोग लतापता से दवा कर लेते हैं।

लतापनस-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। कलींदा।

लतापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

लतापर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तालमूला। (२) मधूरिका। मेउँड़ी।

लतापाश-संज्ञा पुं० [सं०] लता का झापस या समूह। लताजाल।

लताफल-संज्ञा पुं० [सं०] पटोल। परवल।

लताभवन-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं का कुंज। लतागृह। उ०—लताभवन तें प्रगट भए तेहि अवसर दोउ भाइ। निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।—तुलसी।

लतामंडप-संज्ञा पुं० [सं०] छाई हुई लताओं से बना हुआ मंडप या घर।

लतामंडल-संज्ञा पुं० [सं०] छाई हुई लताओं का घेरा या कुंज।

लतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

लतामरुत्-संज्ञा पुं० [सं०] पृक्का।

लतायष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजिष्ठा। मजीठ।

लतायावक-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

लतार्क-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज का पौधा।

लतालक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

लतावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] शल्लकी। सलई का पेड़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लतावेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामशास्त्र में सोलह प्रकार के रतिबंधों में से तीसरा। (२) एक पर्वत जो द्वारकापुरी से दक्षिण की ओर पड़ता है। (हरिवंश)

लतावेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आलिंगन।

लताशंख-संज्ञा पुं० [सं०] शाल या साखू का पेड़।

लतासाधन-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र या वाम मार्ग की एक साधना जिसका प्रधान अधिकरण लता या स्त्री है।

विशेष—इसमें महारात्रि (शिवरात्रि) के दिन एक रजस्वला स्त्री को लेकर उसके योनि देश पर इष्टदेव का पूजन और जप करते हैं।

लतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी लता। बँवर। बेल। वि० दे० "लता"।

लतियर, लतियल-वि० [हिं० लात + इयल (प्रत्य०)] जो सदा लात खाता रहता हो। लतखोर।

लतियाना†-क्रि० स० [हिं० लात + आना (प्रत्य०)] (१) पैरों से दबाना या रौंदना। (२) खूब लातें मारना। प्रहार करना। दंड देना। जैसे,—इसे खूब लतियाओ, तब मानेगा।

लतिहर, लतिहल-वि० दे० "लतियर"।

लतीफ़-वि० [अ०] (१) मज़ेदार। सुस्वादु। जायकेदार। (२) अच्छा। बढ़िया। मनोहर।

लतीफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) हास्य रस पूर्ण छोटी कहानी। चुटकुला। (२) चुहल की बात। हँसी की बात। (३) चमत्कारपूर्ण बात। अनूठी बात।

लत्ता-संज्ञा पुं० [सं० लक्तक] (१) फटा पुराना कपड़ा। चीथड़ा। (२) कपड़े का टुकड़ा। वस्त्रखंड। (३) कपड़ा।

यौ०—कपड़ा लत्ता = पहनने का वस्त्र।

मुहा०—लत्ते लेना = आड़े हाथ लेना। व्यंग्य द्वारा उपहास करना। बनाना।

लत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधा। गोह।

लत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लात] (१) प्रहार के लिये उठाया या चलाया हुआ घोड़े, गदहे आदि का पैर। पशुओं का पाद-प्रहार। लात। (२) लात मारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—चलाना।—फटकारना।—मारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लत्ता] (१) कपड़े की लंबी धज्जी। (२) बाँस में बँधी हुई कपड़े की धज्जी जिसे ऊँचा करके कबूतर उड़ाते हैं। (३) पतंग की दुम अर्थात् नीचे बँधी हुई कपड़े की लंबी धज्जी। पुछिल्ला।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

लथपथ-वि० [अनु०] (१) जो भीग कर भारी हो गया हो। भीगा हुआ। तराबोर। जैसे,—(क) वह पानी में लथपथ हो गया। (ख) काम करते करते पसीने से लथपथ हो गए। (२) (कीचड़ आदि में) सना हुआ। जो कीचड़ आदि के लगने से भारी हो गया हो। जैसे,—वह कीचड़ में फिसलकर फिर लथपथ दौड़ा।

लथाड़-संज्ञा स्त्री० [अनु० लथपथ] (१) जमीन पर पटक कर इधर उधर लोटाने या घसीटने की क्रिया। चपेट। जैसे,—ऐसी लथाड़ दी कि होश ठिकाने हो गए।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—लथाड़ खाना = (१) पटका जाना। पछाड़ा जाना। (२) ध्वस्त किया जाना। नष्ट किया जाना। लथाड़ में पड़ना = कठिन स्थिति में पड़ना। झमेले या हैरानी में पड़ना।

(२) पराजय। हार। (३) हानि। नुक़सान। (४) झिड़की। डाँट डपट। भर्त्सना। गालियों की बौछाड़।

क्रि० प्र०—सुनना।

मुहा०—लथाड़ खाना = झिड़का जाना। डाँटा जाना। घुड़की सुनना। लथाड़ पड़ना = डाँटा जाना। झिड़की सुनाई जाना। जैसे,—आज उस पर खूब लथाड़ पड़ी।

लथाड़ना-क्रि० स० (१) दे० "लथेड़ना"। (२) दे० "लताड़ना"।

लथेड़ना-क्रि० स० [अनु० लथपथ] (१) कीचड़ आदि से लपेटना। कीचड़ आदि पोतकर भारी करना। जैसे,—दुपट्टे को क्यों कीचड़ में लथेड़ रहे हो। (२) मिट्टी, कीचड़ आदि लिपटाकर गंदा करना। जैसे,—कल ही कुरता पहना, आज ही मिट्टी में लथेड़ डाला। (३) जमीन पर पटककर इधर उधर लोटाना या घसीटना। उ०—हरि तेहि गहि महि माहिं लथेरा।—गोपाल।

संयो० क्रि०—डालना।

(४) कुश्ती या लड़ाई में पछाड़ना। पटकना। हराना। (५) श्रम से शिथिल करना। हैरान करना। थकाना। (६) बातों या गालियों की बौछाड़ से व्याकुल करना। भर्त्सना करना। झिड़कियाँ सुनाना। भला बुरा कहना। डाँटना डपटना।

लदन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लदना] लदाव।

लदना-क्रि० अ० [सं० ऋद्ध, प्रा० लिद्ध = भरा हुआ, ढेर लगाया हुआ] (१) भाराक्रांत होना। भारयुक्त होना। बोझ ऊपर लेना। बोझ से भरना। ऊपर पड़ी हुई वस्तुओं के ढेर से भरना। जैसे,—(क) मेज किताबों से लदी हुई है। (ख) गाड़ी असबाब से लदी हुई आ रही है।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) किसी वस्तु का किसी वस्तु के समूह से ऊपर ऊपर भर जाना। आच्छादित होना। पूर्ण होना। जैसे,—(क) यह पेड़ फलों या फूलों से लदा है। (ख) वह स्त्री गहनों से लदी है। (३) सामान ढोनेवाली सवारी (जैसे,—गाड़ी, घोड़ा, बैल, ऊँट) का वस्तुओं से पूर्ण होना। बोझ से भर जाना या भरा जाना। जैसे,—गाड़ी लद रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) किसी भारी या वज़नी चीज का दूसरी चीज के ऊपर होना या रखा जाना। किसी वस्तु के ऊपर बोझ के रूप में पड़ना या रखा जाना। जैसे,—(क) तुम उसकी पीठ पर लद जाओ। (ख) मेज पर किताबें लदी हुई हैं। (५) सामान ढोनेवाली सवारी पर वस्तुओं का रखा जाना। बोझ का डाला या रखा जाना। जैसे,—गाड़ी पर उनका असबाब लद रहा है। (६) जेलखाने जाना। क़ैद होना। जैसे,—वह सात बरस के लिये लद गया। (७) परलोक सिधारना। मर जाना। जैसे,—आज वे भी लद गए।

लदलद-क्रि० वि० [अनु०] किसी गीली और गाढ़ी या जमी हुई वस्तु के गिरने के शब्द का अनुकरण। जैसे,—भींगी मिट्टी ऊपर से लद लद गिर रही है।

लदवाना-क्रि० स० [हिं० लादना का प्रेर०] लादने का काम दूसरे से कराना। उ०—पाँच सहस इक सौ रथ आये। सहस निसान तोप लदवाये।—सबल।

लदाऊ*-वि० [हिं० लदना = भरना] लदाव। भराव। उ०—रेणुका की रासन में कीच कुस कासन में निकट निवासन में आसन लदाऊ के।—पद्माकर।

लदाना-क्रि० स० [हिं० लादना का प्रेर०] लादने का काम दूसरे से कराना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

लदा फँदा-वि० [हिं० लदना + फँदना] भारपूर्ण। बोझ से भरा या लदा हुआ।

लदाव-संज्ञा पुं० [हिं० लादना] (१) लादने की क्रिया या भाव। (२) भार। बोझ। (३) छत आदि का पटाव। (४) ईंटों की जोड़ाई जो बिना धरन या कड़ी के अधर में ठहरी हो। कड़े की जोड़ाई। जैसे,—लदाव की छत। (५) वह छत या महराब जिसमें ईंटों की जोड़ाई बिना धरन या कड़ी के सहारे अधर में ठहरी हो।

लदुवा-वि० [हिं० लादना] बोझ ढोनेवाला। पीठ पर बोझ लेकर चलनेवाला। जैसे,—लदुवा घोड़ा, लदुवा बैल।

लद्दू-वि० [हिं० लादना] बोझ ढोनेवाला। लदुवा। जैसे,—लद्दू घोड़ा।

लद्धड़-वि० [हिं० लदना = भारी होना] जिसमें तेजी और फुरती न हो। सुस्त। काहिल। आलसी। जैसे,—लद्धड़ आदमी, लद्धड़ घोड़ा।

लद्धड़पन-संज्ञा पुं० [हिं० लद्धड़ + पन (प्रत्य०)] काहिली। सुस्ती। ढिलाई।

लद्धना* क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध = प्राप्त] प्राप्त करना। हासिल करना। मिलना। पाना। भेंटना। उ०—चीठर जमिया चून का बैरी बिरहा खद्ध। बीछुरिया सो साजना बेर न काहू लद्ध।—कबीर।

लनटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या घास जिसका साग बनाकर खाया जाता है।

लना-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक पेड़ जिससे पंजाब में सज्जी निकाली जाती है। इसका एक भेद 'गोरालना' है। (२) शोरा।

लनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की बारी में की क्यारी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पंजाब में होनेवाला एक पेड़ जिससे सज्जी निकाली जाती है। छोटी जाति का 'लना' नाम का पेड़।

लप-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास, जिसे 'सुरारी' भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बेंत या लचीली छड़ी को पकड़ कर हिलाने से उत्पन्न शब्द या व्यापार। (२) छुरी, तलवार आदि की चमक की गति।

मुहा०—लप लप करना = (१) बेंत या लचीली छड़ी आदि का पकड़कर जोर से हिलाए जाने से शब्द करना। (२) झलकना। चमाचम करना। लप से = लौ या लपट की तरह तेजी से। झट से।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके। अँजली। जैसे,—लप भर आटा। (२) अँजली भर वस्तु। जैसे,—लप भर निकाल कर देना।

लपक-संज्ञा स्त्री० [अनु० लप] (१) ज्वाला। लपट। लौ। अग्निशिखा। (२) चमक। कांति। लपलपाहट। जैसे,—बिजली की लपक से आँखे चौंधिया गईं। (३) लौ या लपट की तरह निकलने या चलने की तेज़ी। वेग। (४) चलने का वेग। झपट। फुरती।

लपकना-क्रि० अ० [हिं० लपक] (१) चट पट या तेजी से चल पड़ना। तुरंत दौड़ पड़ना। जैसे,—उसने लपक कर भागते हुए चोर को पकड़ लिया। (२) वेग से गमन करना। तेज़ी से जाना या चलना। जैसे,—वह उसी ओर लपका चला जा रहा है।

मुहा०—लपक कर = (१) तुरंत तेजी से जाकर। (२) तुरंत। झट से। जैसे,—लपक कर तुम्हीं चले जाओ; लेते आओ। उ०—ताही समय उठे घनघोर दामिनी सी धाय उर लागी स्यामघन सों लपकि कै।—केशव।

(३) आक्रमण के लिये दौड़ पड़ना। झपटना। जैसे,—शेर उसकी ओर लपका। (४) कोई वस्तु लेने के लिये झट से हाथ बढ़ाना। जैसे,—तुम सभी चीजें लेने के लिये लपकते हो।

लपकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपकना] एक प्रकार की सीधी सिलाई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लपचा-संज्ञा पुं० [देश०] सिक्किम के पहाड़ों की एक जंगली जाति।

लपझप-वि० [अनु० लप + हिं० झपट] (१) चंचल । चपल । स्थिर न रहनेवाला । (२) चुपचाप न बैठनेवाला । अधीर । जैसे,—बाप चुप चुप, पूत लपझप । (३) तेज । फुरतीला ।

मुहा०—लपझप चाल = बेढंगी चाल । चपलता की चाल ।

लपट-संज्ञा स्त्री० [सं०लोक हिं० लौ + पट = विस्तार] (१) आग के दहकने से उठा हुआ जलती वायु का स्तूप । अग्निशिखा । ज्वाला । आग की लौ । उ०—इंद्रजाल कंदर्प को कहै कहा मतिराम । आगि लपट वर्षा करै ताप धरै घनस्याम ।—मतिराम । (२) तपी हुई वायु । हवा में फैली हुई गरमी । आँच ।

क्रि० प्र०—आना ।—लगना ।

(३) किसी प्रकार की गंध से भरा वायु का झोंका । जैसे,—क्या अच्छी गुलाब की लपट आ रही है। (४) गंध । महक । झक्षक । बू । उ०—सूरदास प्रभु को बानक देखे गोपी टारे न टरत निपट आवै सोंधे की लपट ।—सूर ।

† संज्ञा स्त्री० दे० "लिपट" ।

लपटना†-क्रि० अ० [सं० लिप्त + ना (प्रत्य०)] (१) अंगों से घेरना । लिपटना । चिमटना । आलिंगन करना । (२) किसी सूत की सी वस्तु का दूसरी वस्तु के चारो ओर कई फेरों में घेरना । (३) लग जाना । संलग्न होना । सटना । (४) उलझना । फँसना । लिप्त होना । उ०—आइ गयो काल मोहजाल में लपटि रह्यो महा विकराल यमदूत ही दिखाइए । —प्रियादास । (५) परिवेष्टित होना । घिर जाना । (६) लगा रहना । रत रहना ।

लपटा-संज्ञा पुं० [हिं० लपसी] (१) गाढ़ी गीली वस्तु । (२) लपसी । लेई । (३) कढ़ी ।

लपटाना†-क्रि० स० [हिं० लपटना] (१) अंगों से घेरना । लिपटाना । चिमटाना । (२) आलिंगन करना । गले लगाना । (३) किसी सूत की सी वस्तु को कई फेरे करके टिकाना या बाँधना । लपेटना । उ०—दरसन आयो राना रूप चतुर्भुज जू के रहे प्रभु पौढ़ि हार सीस लपटायो है ।—प्रियादास । (४) परिवेष्ठित करना । घेरना ।

ॐ †-क्रि० अ० (१) संलग्न सटना । उ०—यह नहिं भली तुम्हारी बानी । मैं गृहकाज रहौं लपटानी ।—सूर । (२) उलझना । फँसना ।

लपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख । मुँह । (२) भाषण । कथन ।

लपना†-क्रि० अ० [अनु० लप लप] (१) बेंत या लचीली छड़ी का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना । झोंक के साथ इधर उधर लचना । (२) झुकना । लचना । (३) लपकना । ललचना । उ०—साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत ।—तुलसी ।

लपलपाना-क्रि० अ० [अनु० लप लप] (१) बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना । झोंक के साथ इधर उधर लचना । लपना । जैसे,—बेंत का लपलपाना । (२) किसी लंबी कोमल वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकलना । जैसे,—साँप की जीभ लपलपाती है ।

मुहा०—जीभ लपलपाना = चखने की इच्छा या लोभ करना । जैसे,—मिठाई खाने के लिये उसकी जीभ लपलपाया करती है ।

(३) छुरी, तलवार आदि का चमकना । झलकना ।

क्रि० स० (१) बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर ज़ोर से इधर उधर झुकाना या झोंका देना । झोंक के साथ इधर उधर लचाना । फटकारना । लपाना । जैसे,—मारने के लिये बेंत लपलपाना । (२) किसी लंबी नरम चीज को इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकालना । जैसे,—साँप जीभ लपलपाता है । (३) छुरी, तलवार आदि को निकालकर चमकाना । चमचमाना ।

लपलपाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपलपाना + आहट (प्रत्य०)] (१) लपलपाने की क्रिया या भाव । लचीली छड़ी या टहनी आदि का झोंक के साथ इधर उधर लचकना । एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाते हुए बेंत आदि का झोंका । (२) चमक । झलक । जैसे,—तलवारों की लपलपाहट ।

लपसी-संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिका] (१) भुने हुए आटे में चीनी का शरबत डालकर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लेई जो खाई जाती है । थोड़े घी का हलुवा । (२) गीली गाढ़ी वस्तु । जैसे,—आज की तरकारी तो लपसी हो गई । (३) पानी में औटाया हुआ आटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेल में कैदियों को दिया जाता है । लपटा ।

लपहा-संज्ञा पुं० [देश०] पान का एक रोग । पान भी गेरुई ।

लपाना-क्रि० स० [अनु० लपलप] (१) लचीली छड़ी आदि को झोंक के साथ इधर उधर लचाना । फटकारना । (२) नरम लंबी चीज को डुलाना । (३) आगे बढ़ाना ।

लपित-वि० [सं०] कहा हुआ । बोला हुआ । कथित ।

लपिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शार्ङ्गिका नामक पक्षी की एक जाति ।

लपेट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव । (२) किसी सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु की परिधि को लपेटने या बाँधने की स्थिति । बंधन का चक्कर । घुमाव । फेरा । जैसे,—कई लपेट बाँधोगे, तब मज़बूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। (३) बँधी हुई गठरी में कपड़े की तह की मोड़। उ०—खोलिकै लपेट मध्य संपुट निहारि कौड़ा, समुझि बिचारे हारे, मत में न आयो है।—प्रियादास। (४) ऐंठन। बल। मरोड़। (५) किसी मोटी लंबी वस्तु की मोटाई के चारो ओर का विस्तार। घेरा। परिधि। जैसे,—(क) इस खंभे की लपेट ३ फुट है। (ख) इस पेड़ के तने की लपेट ५ फुट है। (६) उलझन। फँसाव। जाल या चक्कर। जैसे,—तुम उसकी बातों की लपेट में पड़ गए। उ०—आए इश्क लपेट में लागी चसम चपेट।—रसनिधि। (७) कुश्ती का एक पेच।

विशेष—जब दोनों लड़नेवाले एक दूसरे की बगल से सिर निकालते हैं और कमर को दोनों हाथों से पकड़कर भीतर अडानी टाँग से लपेटते हैं, तब उसे लपेट कहते हैं।

(८) पकड़। बंधन। उ०—बानर भालु लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो।

लपेटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव। लपेट। (२) फेरा। बल। (३) ऐंठन। मरोड़। (४) उलझन। फँसाव।

संज्ञा पुं० (१) लपेटनेवाली वस्तु। वह वस्तु जो चारों ओर सटकर घेर ले। (२) वह वस्तु जिसे किसी वस्तु के चारों ओर घुमा घुमाकर बाँधें। (३) वह कपड़ा जिसे किसी वस्तु के चारो ओर घुमा घुमाकर बाँधें। बाँधने का कपड़ा। वेष्टन। बेठन। (४) पैरों में उलझनेवाली वस्तु। जैसे,—रस्सी का टुकड़ा। (पालकी के कहार) उ०—काठ कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँव बझाऊ रे।—तुलसी। (५) वह लकड़ी जिस पर जुलाहे बुनकर तैयार कपड़ा लपेटते हैं। तूर। बेलन।

लपेटना-क्रि० स० [सं० लिप्त, हिं० लिपटना] (१) किसी सूत, डोरी, या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु के चारो ओर घुमाकर बाँधना। घुमाव या फेरे के साथ चारो ओर फँसाना। चक्कर देकर चारो ओर ले जाना। जैसे,—(क) इस लकड़ी में तार लपेट दो। (ख) छड़ी में कपड़ा लपेटा हुआ है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु चारो ओर ले जाकर घेरना। परिवेष्टित करना। जैसे,—इस डंडे को कपड़े से लपेट दो। (३) डोरी, सूत या कपड़े की सी फैली हुई वस्तु को तह पर तह मोड़ते या घुमाते हुए संकुचित करना। फैली हुई वस्तु को लच्छे या गट्ठर के रूप में करना। समेटना। जैसे,—(क) कपड़े का थान लपेटकर रख दो। (ख) तागा लपेटकर रख दो। (४) मोड़े हुए कपड़े आदि के अंदर करके बंद करना। कपड़े आदि के अंदर बाँधना। जैसे,—पुस्तक लपेटकर रख दो। (५) हाथ पैर आदि अंगों को चारों ओर सटाकर घेरे में करना। पकड़ में कर लेना। जैसे,—(क) उसे देखते ही उसने हाथों से लपेट लिया। (ख) अजगर ने शेर को चारों ओर से लपेट लिया। (६) ऐसी स्थिति में करना कि कुछ करने न पावे। गति विधि बंद करना। चारो ओर से चाल रोकना। जैसे,—तुमने तो उसे चारो ओर से ऐसा लपेटा है कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। (७) पकड़ में लाना। क़ाबू में करना। ग्रसना। उ०—जिमि करि-निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।—तुलसी। (८) उलझन में डालना। झंझट में फँसाना। (९) गीली गाढ़ी वस्तु पोतना। लेपन करना। जैसे,—वह बदन में कीचड़ लपेटे आ पहुँचा।

विशेष—यद्यपि 'लिपटाना' और 'लपेटना' दोनों सकर्मक क्रियाएँ 'लिपटना' ही से बनी हैं, पर दोनों के प्रयोगों में अंतर है। 'लिपटना' में संलग्न करने या सटाने का भाव प्रधान है। इसी से 'छाती से लिपटाना' 'बदन में रूई लिपटाना' आदि बोलते हैं। 'लपेटना' में घुमाकर या मोड़कर घेरने का भाव प्रधान है। इसी से 'डोरा लपेटना', 'कपड़ा लपेटना' आदि बोलते हैं।

लपेटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] जुलाहों की लपेटन नाम की लकड़ी। लपेटना। तूर।

लपेटवाँ-वि० [हिं० लपेटना] (१) जो लपेटा हो। जिसे लपेट सकें। (२) जो लपेटकर बना हो। (३) जिसमें सोने चाँदी के तार लपेटे गए हों। (४) जिसका अर्थ छिपा हो। गूढ़। व्यंग्य। जैसे,—लपेटवाँ गाली। (५) जो सीधे ढंग से न कहा या किया गया हो। घुमाव फिराव का। चक्करदार। जैसे,—लपेटवाँ बात।

लपेटा-संज्ञा पुं० दे० "लपेट"।

लपेत-संज्ञा पुं० [सं०] बालरोगों के अधिष्ठाता एक देवता। (पारस्कर गृह्यसूत्र)

लप्पड़†-संज्ञा पुं० दे० "थप्पड़"।

लप्पा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) छत में लगी हुई वह लकड़ी जिसमें रेशमी कपड़े बुननेवाले जुलाहों के करघे की रस्सियाँ बँधी रहती हैं। (२) एक प्रकार का गोटा।

लप्सिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लप्सी।

लफंगा-वि० [फ़ा० लफ़ंग] (१) लंपट। व्यभिचारी। दुश्चरित्र। (२) शोहदा। आवारा। कुमार्गी।

लफटंट-संज्ञा पुं० [अं० लेफ्टिनेंट] सेना का एक छोटा अफ़सर।

लफ़टंट गवर्नर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रान्त का शासक। छोटे सूबे का हाकिम।

लफनाॐ†-क्रि० अ० दे० "लपना"। उ०—चिलक चिकनई चटक स्यों लफति सटक लौं आय। नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डसि जाय।—बिहारी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लफलफानि*†-संज्ञा स्त्री० दे० "लपलपाना" या "लपलपाहट"। उ०—राधासर तीर द्रुम डारि गहि झूलैं फूले देखत सफ लफलफानि गति मति बौरी है।—प्रियादास।

लफाना*†-क्रि० स० दे० "लपाना"।

लफ़्ज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) शब्द। (२) बात। बोल।

लब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] ओष्ठ। ओंठ। होंठ।

लबगुरनिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] गहरे बैंगनी रंग के रतालू की लता जो भारतवर्ष में कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लबझना*†-क्रि० अ० [देश०] उलझना। फँसना। उ०—लबझी अंग तरंग बहु, सरिता रंग अनूप। नव पंकज अंकुर जहाँ, धरत प्रवाल स्वरूप।—गुमान।

लबड़ धोंधों-संज्ञा स्त्री० [हिं० लबाड़+धूम] (१) झूठ मूठ का हल्ला। व्यर्थ का गुल गपाड़ा।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

(२) क्रम और व्यवस्था का अभाव। गड़बड़ी। अंधेर। बदइंतज़ामी। कुव्यवस्था। (३) अन्याय। अनीति।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

(४) बातों का भुलावा। असल बात को टालने के लिये बकवाद और कहा सुनी। बेईमानी की चाल। जैसे,—यहाँ तुम्हारी यह लबड़धोंधों न चलेगी।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—लबड़धोंधों चलना = बेईमानी की चाल सफल होना।

लबड़ना*†-क्रि० अ० [सं० लप = बकना] (१) झूठ बोलना। लबारी करना। (२) गप हाँकना।

लबदा-संज्ञा पुं० [सं० लगुड़] मोटा बेडौल डंडा।

लबदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लबदा] छोटी छड़ी। पतली छड़ी। हलकी लाठी।

लबनी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) मिट्टी की लंबी हाँड़ी या मटकी जो ताड़ के पेड़ों में बाँध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है। (२) काठ की लंबी डाँड़ी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाह में से शीरा निकालते हैं। डोई। डौवा।

लबरा†-वि० [सं० लपन = बोलना] [स्त्री० लबरी] (१) झूठ बोलनेवाला। (२) गप हाँकनेवाला। गप्पी। उ०—आप सभा मँह सत्य जू सोहत लालची औ लबरान को लाबरा।—रघुराज।

लबरी-वि० स्त्री० [हिं० लबरा] झूठ बोलनेवाली। झूठी। गप्पी।

संज्ञा स्त्री० दे० "लिबड़ी"।

लबलबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० लब] बंदूक के घोड़े की कमानी।

लबलहका†-वि० [हिं० लपना+लहकना] [स्त्री० लबलहकी] (१) किसी वस्तु को देखते ही उसकी ओर लपकनेवाला। अधीर और लालची। (२) बिना प्रयोजन सब वस्तुओं को हाथ लगानेवाला। चंचल। चपल।

लबादा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) रूईदार चोग़ा। दगला। (२) वह लंबा ढीला पहनावा जो अँगरखे आदि के ऊपर से पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है। अबा। चोग़ा।

लबार†-वि० [सं० लपन = बकना] (१) झूठा। मिथ्यावादी। (२) गप्पी। प्रपंची। उ०—(क) आजु गए औरहि काहू के रिस पावति कहि बड़े लबार।—सूर। (ख) तौलौं लोल लोलुप ललात लालची लबार बार बार लालच धरनि धन धाम को।-तुलसी। (ग) बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा।—तुलसी।

लबारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लबार] झूठ बोलने का काम।

वि० (१) झूठा। (२) चुगुलख़ोर। उ०—यह पापी अति चोर लबारी। ताहि दीन हम साँसति भारी।—विश्राम।

लबालब-क्रि० वि० [फ़ा०] मुँह या किनारे तक। छलकता हुआ। जैसे,—(क) यह तालाब लबालब भरा है। (ख) प्याला लबालब भरा है।

लबी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपड़ा] ईख का रस जो पकाकर ख़ूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो। राब।

लबेचू-संज्ञा पुं० [देश०] जैन वैश्यों की एक जाति। लमेचू।

लबेद-संज्ञा पुं० [सं० वेद का अनु०] वेद के विरुद्ध वचन या प्रसंग। लोकाचार और दंत कथा। (बोलचाल) जैसे,—वेद में यह सब कुछ नहीं है; तुम्हारे लबेद में हो, तो हो।

लबेदा-संज्ञा पुं० [सं० लगुड़] [स्त्री० अल्पा० लबेदी] मोटा बड़ा डंडा।

लबेदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लबेदा] (१) छोटा डंडा। लाठी। (२) डंडे का बल। ज़बरदस्ती।

लबेरा-संज्ञा पुं० [देश०] लसोड़े का पेड़ या फल। लपेरा।

लब्ध-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। पाया हुआ। प्राप्त। (२) उपार्जित। कमाया हुआ। (३) भाग करने से आया हुआ फल। (गणित)

संज्ञा पुं० दस प्रकार के दासों में से एक। (स्मृति)

लब्धकाम-वि० [सं०] जिसकी कामना सिद्ध हो गई हो। जिसका मनोरथ सफल हो गया हो। जिसका मतलब हासिल हो गया हो।

लब्धकीर्त्ति-वि० [सं० लब्धनामन्] (१) जिसने कीर्ति पाई हो। जिसने यश प्राप्त किया हो। (२) विख्यात। प्रसिद्ध। नामवर।

लब्धनाम-वि० [सं०] जिसने नाम पाया हो। नामवर। प्रसिद्ध।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लब्धप्रतिष्ठ-वि० [सं०] जिसने प्रतिष्ठा पाई हो। प्रतिष्ठित। सम्मानित।

लब्धप्रशमन-संज्ञा पुं० [सं०] मिले हुए धन का सत्पात्र को दान। (मनु०)

लब्धलक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे। (२) जिसे अभिप्रेत वस्तु मिल गई हो।

लब्धवर्ण-वि० [सं०] विद्वान्। पंडित।

लब्धांक-संज्ञा पुं० [सं०] गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो। जवाब।

लब्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्रलब्धा नायिका।

लब्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राप्ति। लाभ। (२) हिसाब का जवाब। गणित का लब्धांक।

लभधर†-संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल के मुँह पर का टेढ़ा भाग।

लभन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लभ्य, लब्ध] प्राप्त करना। हासिल करना। पाना।

लभस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा बाँधने की रस्सी। पिछाड़ी। (२) धन। (३) याचक। माँगनेवाला।

लभ्य-वि० [सं०] (१) पाने योग्य। जो मिल सके। (२) न्याययुक्त। उचित। मुनासिब।

लमई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मधुमक्खी का एक भेद। जिसे कटयाल भी कहते हैं।

लमक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जार। उपपति। (२) लंपट। विलासी।

लमकना†-क्रि० अ० [हिं० लपकना] (१) लपकना। (२) उत्कंठित होना। उ०—सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलै के लिए, लगनि लगालगी में लमकि लमकि उठै।—पद्माकर।

लमगजा-संज्ञा पुं० [देश०] इकतारा। ठठवा।

लमगिरदा-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + फ़ा० गिर्द] लोहे की दानेदार मोटी रेती जिसके दाने कटहल के छिलके के दानों के सदृश होते हैं। यह रेती नारियल के छिलके (खोपड़ी) को रेतने के काम में आती है।

लमगोड़ा†-वि० [हिं० लंबा + गोड़] जिसकी टाँगें लंबी हों।

लमघिचा-वि० [हिं० लंबा + घींच = गर्दन] लंबी गर्दनवाला।

लमचा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो काली चिकनी मिट्टी की ज़मीन में बहुत पाई जाती है।

लमछड़-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + छड़] (१) साँग। बरछी। भाला। (२) कबूतरबाज़ों की लग्गी। (३) पुरानी चाल की लंबी बंदूक।

वि० पतला और लंबा।

लमजक-संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] कुश की तरह की एक घास जिसमें सुन्दर महक होती है। इसे "ज्वरांकुश" भी कहते हैं और ज्वर में औषध के रूप में देते हैं। लामज।

लमज्जक-संज्ञा पुं० दे० "लमजक"।

लमटंगा-वि० [हिं० लंबा + टाँग] [स्त्री० लमटंगी] जिसकी टाँगें लंबी हों।

संज्ञा पुं० सारस पक्षी।

लमढींग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर।

लमतड़ंग-वि० [हिं० लंबा + ताड़ + श्रृंग] [स्त्री० लमतड़ंगी] बहुत लंबा या ऊँचा। जैसे,—लमतड़ंगा आदमी।

लमधी†-संज्ञा पुं० [देश०] समधी का बाप। उ०—समधी के घर लमधी आयो आगे बहू कौ भाई।—कबीर।

लमानाॐ†-क्रि० स० [हिं० लंबा + ना (प्रत्य०)] (१) लंबा करना। (२) दूर तक आगे बढ़ाना। उ०—कैधों दसकंधर की मीचु मँड़राति व्योम कैधों महाकाल कोपि रसना लमाई है।—रघुराज।

क्रि० अ० दूर निकल जाना। चलने में बहुत दूर बढ़ जाना।

लय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पदार्थ का दूसरे में मिलना या घुसना। प्रवेश। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में इस प्रकार मिलना कि वह तद्रूप हो जाय और उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय। विलीन होना। लीनता। मग्नता। (३) चित्त की वृत्तियों का सब ओर से हटकर एक ओर प्रवृत्त होना। ध्यान में डूबना। एकाग्रता। (४) लगन। गूढ़ अनुराग। प्रेम। उ०—मन ते सकल वासना भागी। केवल राम चरण लय लागी।

क्रि० प्र०—लगना।

(५) कार्य्य का अपने कारण में समाविष्ट होना या फिर कारण के रूप में परिणत हो जाना। (६) सृष्टि के नाना रूपों का लोप होकर अव्यक्त प्रकृति मात्र रह जाना। प्रकृति का विरूप परिणाम। जगत का नाश। प्रलय। उ०—जो संभव, पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला वपु-धारिनि।—तुलसी। (७) विनाश। लोप। उ०—गो कहेउ हरि बैकुंठ सिधारे। शमदम उनहीं संग पधारे। तप संतोष दया अरु गयो। जान यमादि सबै लय भयो।—सूर। (८) मिल जाना। संश्लेष। (९) संगीत में नृत्य, गीत और वाद्य की समता। नाच, गाने और बाजे का मेल।

विशेष—यह समता नाचनेवाले के हाथ, पैर, गले और मुँह से प्रकट होती है। संगीत दामोदर में हृदय, कंठ और कपाल लय के स्थान माने गए हैं। कुछ आचार्य्यों ने लय के द्विपदी, लतिका और झल्लिका इत्यादि अनेक भेद माने हैं।

(१०) स्थिरता। विश्राम। (११) मूर्च्छा। बेहोशी। (१२) वह समय जो किसी स्वर को निकालने में लगता है।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है—द्रुत, मध्य और विलंबित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) एक प्रकार का पाटा जिससे वैदिक काल में खेत जोतकर उसकी मिट्टी को सम या बराबर करते थे। इसका उल्लेख शुक्ल यजुर्वेद की वाजस्नेय संहिता में है। संज्ञा स्त्री० (१) गाने का स्वर। गाने में स्वर निकालने का ढंग। जैसे,—वह बड़ी सुंदर लय से गाता है। (२) गीत गाने का ढंग या तर्ज़। धुन।

मुहा०—लय देखना = ठीक लय में गाना।

(३) संगीत में, सम।

लयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्राम। शांति। (२) आश्रय। विश्रामस्थान। (३) आश्रय ग्रहण। आड़ लेना। पनाह लेना।

लर*†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़"। उ०—नंद के लाल होउ मन मोर। हौं बैठी पोवत मोतियन लर काँकर डारि चले सखि भोर।—सूर।

लरकई*-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़काई" या "लरिकाई"। उ०—जदपि हते जोबन नवल मधुर लरकई चारु। पै उत चतुराई अधिक प्रगटन रस व्यवहार।—हरिश्चन्द्र।

लरकना*†-क्रि० अ० [सं० लड़न = भूलना] (१) लटकना। उ०—चोटी गुही मोती अमल, तिन जानु लौं लर लरकती। मनु शरद वारिद की घटा जल विंदु अवली ढरकती।—रघुराज।

(२) झुकना। (३) खिसककर नीचे आना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

लरका*-संज्ञा पुं० दे० "लड़का"।

लरकाना*†-क्रि० स० [हिं० लरकना] (१) लटकाना। (२) झुकाना। (३) नीचे खिसकाना।

लरकिनी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़की"। उ०—बधू लरकिनी पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं।—तुलसी।

लरखरना*†-क्रि० अ० दे० "लरखराना" या "लड़खड़ाना"। उ०—दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्ख भर।—तुलसी।

लरखरनि*-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरखराना] (१) लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट। (२) चलने या खड़े होने में पैर न जमने का भाव। उ०—(क) हरिजू को बाल छबि कहौं बरनि। सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि।...पुण्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि। सूर प्रभु की बसी उर किलकनि ललित लरखरनि।—सूर।

लरखराना-क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लरजना-क्रि० अ० [फा० लरज़ = कंप] (१) काँपना। हिलना। उ०—(क) पात बिनु कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के, परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं।—पद्माकर। (ख) चंचला चमाकै चहुँ ओरन ते चाह भरी, चरज गई ती फेर चरजन लागी री। कहै पद्माकर लवंगन की लोनी लता, लरज गई ती फेर लरजन लागी री।—पद्माकर।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) भयभीत होना। दहल जाना। डरना। उ०—(क) शरण राखि ले हो नंदताता। घटा आईं गरजि युवति गईं मन लरजि, बीजु चमकति तरजि, डरत गाता।—सूर। (ख) लाजन हौं लरजों गहिरी बरजों गहिरी कहिरी किहि दाइन।—देव।

क्रि० प्र०—उठना।—जाना।—पड़ना।

लरज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कंप। कँपकँपी। थरथराहट। (२) भूकंप। भूचाल। (३) एक प्रकार का ज्वर जिसमें रोगी का शरीर ज्वर आते ही काँपने लगता है। जूड़ी।

लरझर*‡-वि० [हिं० लड़ + झड़ना] बरसता हुआ। बहुत अधिक परिमाण में प्राप्त। प्रचुर। उ०—लोचन लेति लगाइ ललकि कै लाल सलोनी। लरझर ललित लुनाई ऐसी भई न होनी।—व्यास।

लरना*-क्रि० अ० दे० "लड़ना"।

लरनि*-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) युद्ध करने का ढंग। लड़ने का ढब। उ०—(क) मेरे जिय इहई सोच पर्‍यो। मन के ढंग सुनो री सजनी जैसे मोहिं निदर्‍यो। आपुनि गयो गंस सँग लीन्हें प्रथमहिं इहै कर्‍यो। मो सों बैर प्रीति करि हरि सों ऐसी लरनि लर्‍यो। ज्यों त्यों नैन रहे लपटाने तिनहूँ भेद भर्‍यो। सुनहु सूर अपनाइ इनहुँ को अवलों रह्यो डर्‍यो।—सूर। (ख) लामी लूम लसत लपेटि पटकत भट, देखो देखो लखन लरनि हनुमान की।—तुलसी।

लराई*†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़ाई"। उ०—(क) जहँ तहँ परे अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई।—तुलसी। (ख) खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खंजन युग मानो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर।

लराका*-वि० दे० "लड़ाका"।

लरिकई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका] (१) लड़कपन। बाल्यावस्था। उ०—निरखि नवोढ़ा नारि तन छुटत लरिकई लेस। भो प्यारो प्रीतम तियन मानहुँ चलत बिदेस।—बिहारी। (२) लड़कपन की चाल। लड़कों का व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।

(३) चपलता। चंचलता। उ०—लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति। आज काल्हि में देखियत उर उकसौहीं भाँति।—बिहारी।

लरिक-सलोरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका + लोल = चंचल] लड़कों का खेल। खेलवाड़।

लरिका*†-संज्ञा पुं० [स्त्री० लरिकिनी] दे० "लड़का"। उ०—(क) देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहिं रिस बीरु बिचारी।—तुलसी। (ख) खेलन को मैं जाउँ नहीं। और लरिकनी घर घर खेलति मोंही को पै कहत तु ही।—सूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लरिकाई*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + आई (प्रत्य०)] (१) लड़कपन। बालपन। बाल्यावस्था। उ०—(क) लरिकाई को नेह कहौ सखि कैसे छूटै ?—सूर। (ख) तात कहहुँ कछु करहुँ ढिठाई। अनुचित छमउ जानि लरिकाई। तुलसी। (ग) भाजि गई लरिकाई मनौ लरिकै करि कै दुहुँ दुंदुभि औंधे।—पद्माकर। (२) लड़कों का व्यवहार या आचरण। (३) चपलता। चंचलता।

लरी*-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़ी"। उ०—(क) सुनो अनुज एहि बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी। कछु इक अंगनि सहिदानी मेरी दृष्टि परी। कटि केहरि कोकिल वाणी अरु शशि मुख प्रभा खरी। मृग मूसी नैननि की सोभा जात न गुप्त करी। चंपक बरन चरन करि कमलनि दाड़िम दशन लरी। गति मराल अरु बिंब अधर छबि अहि अनूप कवरी। अति करुना रघुनाथ गुसाईं युग भर जात घरी। सूरदास प्रभु प्रिया प्रेमबस निज महिमा बिसरी।—सूर। (ख) कबिरा मोतिन की लरी हीरन को परगास। चाँद सुरज की गम नहीं तहँ दरसन पावै दास।—कबीर।

लर्ज-संज्ञा पुं० [हिं० लरजना] सितार के एक तार का नाम। यह छः तारों में पाँचवाँ और पीतल का होता है।

ललंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाभि तक लटकती हुई माला या हार। (२) गोह।

ललक-संज्ञा स्त्री० [सं० ललन = लालसा करना] प्रबल अभिलाषा। गहरी चाह। उ०—महरानी कौशल्यादिक तुव लिखतीं बारहिं बारा। दुलहिन दूलह देखब केहि दिन लागी ललक अपारा।—रघुराज।

ललकना-क्रि० अ० [हिं० ललक + ना (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु को पाने की गहरी इच्छा करना। लालसा करना। ललचना। उ०—(क) ललकत स्याम, मन ललचात।—सूर। (ख) ललकत लखि ज्यों कंगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी। (२) अभिलाषा से पूर्ण होना। चाह की उमंग से भरना। उ०—ललकि ललकि बोलत बचन, ललकि ललकि लपटाति।—बिहारी।

ललकार-संज्ञा स्त्री० [हिं०लड़ना या ले ले अनु० + कार] (१) युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान। लड़ने के लिये तैयार होकर शत्रु या विपक्षी से पुकारकर कहना कि यदि हिम्मत हो, तो आकर लड़। प्रचारण। हाँक। जैसे,—ललकार सुनकर वह सामने आया। (२) किसी को किसी पर आक्रमण करने के लिये पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने का बढ़ावा।

ललकारना-क्रि० स० [हिं० ललकार] (१) युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान करना। लड़ने के लिये तैयार होकर विपक्षी से पुकारकर कहना कि हिम्मत हो, तो आ लड़। प्रचारण। हाँक लगाना। जैसे,—युद्ध के लिये सुग्रीव ने बालि को ललकारा। (२) किसी पर आक्रमण करने के लिये किसी को पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने के लिये उकसाना या बढ़ावा देना। जैसे,—तुम्हारे ललकारने से ही उसकी हिम्मत बढ़ी।

ललचना-क्रि० अ० [हिं० लालच + ना (प्रत्य०)] (१) लालच करना। पाने की प्रबल इच्छा करना। प्राप्त करने की अभिलाषा से अधीर होना। (२) मोहित होना। लुब्ध होना। उ०—मनि मंदिर सुंदर सब साजू। जाहि लखत ललचत सुरराजू।—रघुराज। (३) किसी बात की प्रबल इच्छा करना। अभिलाष से अधीर होना। लालसा करना। उ०—तौ मुख चंद निरीछन को ललचैं चख चारु चकोर लला के।—दीनदयाल।

मुहा०—जी ललचना = मन में पाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होना।

ललचाना-क्रि० स० [हिं० ललचना] (१) किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। प्राप्ति की अभिलाषा से अधीर करना। लालसा उत्पन्न करना। (२) मोहित करना। लुभाना। उ०—चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली हरी अँगिया ललचावै।—पद्माकर। (३) कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रखकर किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। कोई वस्तु दिखा दिखाकर उसके पाने के लिये अधीर करना। जैसे,—उसे दूर से दिखाकर ललचाना, देना कभी मत।

मुहा०—जी या मन ललचाना = मन मोहित करना। मुग्ध करना। लुभाना। उ०—गली में आय, तान मोहिनी सुनाय, मेरो मन ललचाय भज्यो कानन में रस है।

*† क्रि० अ० दे० "ललचना"। उ०—(क) भौंहन चढ़ाय छिनु रहै लखि ललचाय, मुरि मुसुकाय छिन सखी सों लपटि जाय।—रघुनाथ। (ख) साँझ समै दीप को बिलोकि ललचाय सोऊ लैबे को चहत दोऊ कर को उठावै री।—दीनदयाल।

ललचौहाँ-वि० [हिं० लालच + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० ललचौहीं] लालच से भरा। ललचाया हुआ। जिससे प्रबल लालसा प्रकट हो। उ०—(क) खरी खरी मुसुकाति है, लखि ललचौहैं लाल। (ख) चितई ललचौहैं चखनि डटि घूँघट पट माहिं।—बिहारी।

ललजिह्व-वि० [सं०] (१) जीभ लपलपाता हुआ। (२) भयंकर। खूखार।

संज्ञा पुं० (१) कुत्ता। (२) ऊँट।

ललदेया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जिसकी फसल अगहन में तैयार होती है।

ललन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्यारा बालक। दुलारा लड़का। (२) लड़का। बालक। कुमार। (३) नायक के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—(क) ललन चलन की चित धरी, कल न पलन की ओट।—बिहारी। (ख)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानहुँ मुख दिखरावनी दुलहिनि करि अनुराग। सासु सदन, मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग।—बिहारी। (४) केलि। क्रीड़ा। (५) साल। साखू का पेड़। (६) पियार या चिरौंजी का पेड़। प्रियाल।

ललना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। कामिनी। (२) जिह्वा। जीभ। (३) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण और दो सगण होते हैं। उ०—डारत ही सोए सुथरे पलना। चारिउ भैया री सुघरी ललना।

ललनाप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ह्रीवेर। (२) कदंब।

ललनिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] ललना। स्त्री।

लला–संज्ञा पुं० [सं० ललना। हिं० "लाल" का रूप] [स्त्री० लली] (१) प्यारा या दुलारा लड़का। (२) लड़का। कुमार। (३) लड़के या कुमार के लिये प्यार का शब्द। (४) नायक या पति के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—लला! फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर।

ललाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + आई (प्रत्य०)] लालिमा। सुर्खी। लाली। उ०—रँगीले नैन में औरो ललाई दौरि आई है।—प्रताप।

ललाक–संज्ञा पुं० [सं०] शिश्न। लिंगेंद्रिय।

ललाट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाल। मस्तक। माथा। उ०—नीको लसत ललाट पर टीको जटित जराय। छबिहिं बढ़ावत रवि मनो ससि मंडल में आय।—बिहारी।

मुहा०—ललाट में लिखा होना = भाग्य में होना। क़िस्मत में होना।

(२) भाग्य का लेख। क़िस्मत का लिखा। जैसे,—जो ललाट में होगा, वही होगा।

ललाट-पटल–संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक का तल। माथे की सतह। उ०—भृकुटि मनोज-चाप-छबिहारी। तिलक ललाट-पटल दुतिकारी।—तुलसी।

ललाट-फलक–संज्ञा पुं० [सं०] ललाट-पटल।

ललाट-रेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपाल का लेख। मस्तक पर ब्रह्मा का किया हुआ चिह्न जिसके अनुसार संसार में प्राणी का सुख या दुःख पाना माना जाता है। भाग्यलेख।

ललाटाक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

ललाटाक्षी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ललाटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माथे पर बाँधने का एक गहना। टीका। (२) माथे पर का टीका। तिलक।

ललाना†–क्रि० अ० [सं० ललन = लालच करना] किसी वस्तु को पाने की इच्छा से अधीर होना। लोभ करना। ललचना। लालायित होना। जैसे,—तुम सब कुछ खाते हो, फिर भी ललाते रहते हो। उ०—(क) नीच निरादर-भाजत कादर कूकर टूकन हेतु ललाई।—तुलसी। (ख) कृस गात ललात जो रोटिन को घरबात घरे खुरपा खरिया।—तुलसी।

विशेष—"किसी वस्तु को ललाना" ऐसे प्रयोगों में "को" कर्म का चिह्न नहीं है; "के लिये" के अर्थ में संप्रदान का चिह्न है।

ललाम–वि० [सं०] (१) रमणीय। सुंदर। बढ़िया। (२) लाल रंग का। सुर्ख। उ०—स्याम पै ललाम औ ललामन पै स्याम ऐसी सोभा सुभ सुभित है नाना रंग गुल की।—गोपाल। (३) श्रेष्ठ। बड़ा। प्रधान।

संज्ञा पुं० (१) भूषण। अलंकार। गहना। (२) रत्न। उ०—(क) रामनाम ललित ललाम कियो लाखन को, बेड़ा कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी। (ख) चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा ललाम को।—तुलसी।

यौ०—चंद्रमा ललाम = शिव, जिनका भूषण चंद्रमा है।

(३) चिह्न। निशान। (४) दंड और पताका। ध्वज। (५) सींग। श्रृंग। (६) घोड़ा। (७) घोड़े या गाय के माथे पर का चिह्न। अर्थात् दूसरे रंग का चिह्न। (८) घोड़े का गहना। (९) प्रभाव। (१०) घोड़े या सिंह की गर्दन पर का बाल। अयाल।

ललामक–संज्ञा पुं० [सं०] माथे में लपेटने की माला।

ललामी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कान में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री० [सं० ललाम + ई (प्रत्य०)] (१) सुंदरता। (२) लालिमा। लाली। सुर्खी।

ललित–वि० [सं०] (१) सुंदर। मनोहर। (२) ईप्सित। मनचाहा। प्यारा। (३) हिलता डोलता हुआ। चलता हुआ।

संज्ञा पुं० (१) श्रृंगार रस में एक कायिक हाव या अंगचेष्टा जिसमें सुकुमारता (नज़ाकत) के साथ भौं, आँख, हाथ, पैर आदि अंग हिलाए जाते हैं। कहीं कहीं भूषण आदि से सजाने को ललित हाव कहा है। (२) एक विषम वर्ण वृत्त जिसके पहले चरण में सगण, जगण, सगण, लघु; दूसरे चरण में नगण, सगण, जगण, गुरु; तीसरे में नगण, नगण, सगण, सगण; और चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण होता है। उ०—सब त्यागिये असत काम। शरण गहिये सदा हरी। भव-जनित सकल दुःख टरी। भजिए अहोनिशि हरी, हरी, हरी। (३) कुछ आचार्य्यों के मत से एक अलंकार जिसमें वर्ण्य वस्तु (बात) के स्थान पर उसका प्रतिबिंब वर्णन किया जाता है। जैसे,—कहना तो यह था कि "राम को गद्दी मिलनी चाहिए थी, पर बनवास मिला।" पर गो० तुलसीदास जी इस प्रकार कहते हैं—(क) लिखत सुधाकर लिखिगा राहू। इसी प्रकार "जिसे ब्रह्मा अच्छा बनाना चाहते थे, उसे बुरा बना दिया" इसके स्थान पर यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना—(ख) बिरचत हंस काक किय जेही। (४) षाड़व जाति का एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है और जिसमें निषाद स्वर नहीं लगता; तथा धैवत और गांधार के अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय रात्रि के तीस दंड बीत जाने पर अर्थात् प्रातःकाल है।

ललितई%†-संज्ञा स्त्री० दे० "ललिताई"। उ०—लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय। दरसो सारस रस भरे दृग आदरस मँगाय।—रामसहाय।

ललितक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक तीर्थ का नाम।

ललितकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ललितपद-वि० [सं०] जिसमें सुंदर पद या शब्द हों।

संज्ञा पुं० एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १२ के हिसाब से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु रखे जाते हैं। इसे सार, नरेन्द्र और दोवे भी कहते हैं। उ०—प्रात समय उठि जनक नंदिनी त्रिभुवननाथ जगावै।

ललितपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का "ललित-विस्तर" नामक ग्रन्थ जिसमें बुद्ध का चरित्र वर्णित है।

ललितव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध शास्त्र के अनुसार एक समाधि। (२) एक बोधिसत्व का नाम।

ललिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं। उ०—तैं भाजि री अलि! छिपी फिरै कहाँ। तूही बता थल हरी नहीं जहाँ। (२) पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि के अनुसार राधिका की प्रधान आठ सखियों में से एक। (३) एक रागिनी जो संगीत दामोदर और हनुमत के मत से मेघ राग की और सोमेश्वर के मत से बसंत राग की पत्नी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स ग म ध नि स अथवा स रे ग म प ध नि स (प्रथम) ध नि स ग म ध (द्वितीय)। (४) कस्तूरी। (५) पुराणोक्त एक नदी।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब निमि राजा के शाप से वशिष्ठ देह-हीन हो गए, तब उन्होंने कामरूप देश में संध्याचल पर्वत पर घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें वर दिया। वर के प्रभाव से वशिष्ठ ने एक अमृतकुंड बनाया। उसी अमृतकुंड के पूर्व ललिता नाम की एक मनोहर नदी है, जिसे शिव जी ले आए थे। वैशाख शुक्ल ३ को इसमें नहाने का बड़ा फल है।

ललिताई%-संज्ञा स्त्री० [हिं० ललित + आई (प्रत्य०)] सुंदरता। सौंदर्य। उ०—(क) दक्षभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी। (ख) सुकवि लली के यों ललिताई लहलहात तन।

ललिता पंचमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन महीने की शुक्ला पंचमी जिसमें ललिता देवी (पार्वती) की पूजा होती है।

ललिता-षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण षष्ठी। भादों बदी छठ, जिस तिथि को स्त्रियाँ पुत्र की कामना से या पुत्र के हितार्थ ललिता देवी (पार्वती) का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं। पूजन कुश और पलाश की टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ाकर होता है।

ललिता सप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी सप्तमी। भाद्र शुक्ल सप्तमी।

ललितोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, तुल्य, लौं, इव आदि के वाचक पद न रखकर ऐसे पद लाए जाते हैं, जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं। उ०—साहि तनै सरजा सिवा की सभा जामधि है मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामें नखतावली सों बहस दीपावली करति है।—भूषण।

ललिया†-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + इया (प्रत्य०)] लाल रंग का बैल।

लली-संज्ञा स्त्री० [हिं० लला] (१) लड़की के लिये प्यार का शब्द। (२) दुलारी लड़की। लाडली लड़की। जैसे,—वृषभानुलली, जनकलली। (३) नायिका के लिये प्यार का शब्द। प्रेयसी। प्रेमिका।

ललीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ। (महाभारत)

ललौहाँ-वि० [हिं० लाल + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० ललौंही] सुर्खी मायल। ललाई लिए हुए। उ०—लाल लिलार लला को लखे गये लोचन ह्वै ललना के ललौहैं।

लल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० लाल, लला] [स्त्री० लल्ली] (१) लड़के या बेटे के लिये प्यार का शब्द। (२) दुलारा लड़का। लाडला लड़का।

लल्लो-संज्ञा स्त्री० [सं० ललना] जीभ। जिह्वा। ज़बान।

लल्लो चप्पो-संज्ञा स्त्री० [सं० लल = जीभ इधर उधर डोलना + अनु० चप] चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसी को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। ठकुरसुहाती।

क्रि० प्र०—करना।

लल्लो पत्तो†-संज्ञा स्त्री० दे० "लल्लो चप्पो"। उ०—(क) तुमको हमारे ऊपर कुछ शक है, तो इसमें लल्लो पत्तो काहे की है?—बालकृष्ण भट्ट। (ख) लल्लो पत्तो और ज़ाहिरदारी इसे आती ही न थी।—बालकृष्ण भट्ट।

ललहरा†-संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा या घास जिसका साग खाया जाता है।

लवंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलक्का द्वीप, जंजिबार तथा दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में होनेवाला एक पेड़ जिसकी सूखी कलियाँ मसाले और दवा के काम में आती हैं।

विशेष—दे० "लौंग"।

(२) उक्त वृक्ष की सूखी कली।

लवंगलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लौंग का पेड़ या उसकी शाखा।

विशेष—यद्यपि "लौंग" के बड़े बड़े पेड़ होते हैं जो बीस बरस तक खड़े रहते हैं, पर भारतीय कवि संप्रदाय में "चूतलता" आदि के समान "लवंगलता" शब्द का भी व्यवहार होता है। ऐसे स्थलों में लता का अर्थ शाखा या टहनी ही लेना चाहिए।

(२) राधिका की एक सखी का नाम।

लवंगादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध चूर्ण जो संग्रहणी, अतिसार आदि में दिया जाता है।

विशेष—लौंग, मोथा, मोचरस, जीरा, धाय के फूल, लोध, इंद्रजौ, सुगंधबाला, जवाखार, सेंधा नमक और रसांजन बराबर लेकर पीस डाला जाता है। इसकी मात्रा दस रत्ती से बीस रत्ती तक है।

लव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत थोड़ी मात्रा। बहुत छोटी मिक़दार। अत्यन्त अल्प परिमाण।

मुहा०—लव भर = थोड़ा सा। नाम मात्र को। जैसे,—उसे लव भर भी डर नहीं है।

(२) काल का एक मान। दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेष का अल्प समय। (कुछ लोग एक निमेष के साठवें भाग को लव मानते हैं) उ०—लव निमेष परिमान जुग वर्ष कल्प-सत चंड।—तुलसी। (३) लवा नाम की चिड़िया। (४) जातीफल। (५) लवंग। (६) लामज्जक। ज्वरांकुश नाम का तृण। (७) काटना। छेदना। कटाई। (८) विनाश। (९) ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियों के शरीर से कतर कर निकाले जाते हैं। (१०) सुरागाय की पूँछ के बाल, जो चँवर बनाने के लिये कतरे जाते हैं। (११) श्री रामचन्द्र के दो यमज पुत्रों में से एक।

विशेष—जब लोकापवाद के कारण राम ने सीता जी को गर्भावस्था में वन में भेजवा दिया था, तब वहीं वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश इन दो जोडुएँ पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। ऋषि ने इन्हें रामायण का गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्र की सभा में जाकर वह गान सुनाया, तब राम ने उन्हें पहचाना।

लवण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नमक। लोन।

विशेष—दे० "नमक"।

(२) एक असुर जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। वि० दे० "लवणासुर"। (३) पुराणोक्त सात समुद्रों में से एक। खारे पानी का समुद्र। वि० दे० "लवणसमुद्र"।

वि०—[सं०] (१) नमकीन। खारा। (२) लावण्य-युक्त। सलोना। सुंदर।

लवणतृण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलोनी घास जिसका साग खाते हैं। लोनी। लोनिया। (२) कुलफा नामक साग।

लवणत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नमकों का समूह, सैंधव, विट् और सचल। (वैद्यक)

लवणधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का वराहपुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

विशेष—गोबर से लिपे स्थान में कुश के आसन पर सोलह प्रस्थ नमक का एक ढोंका रक्खे और उसे गाय के रूप में कल्पित करे। चार प्रस्थ और नमक पास में रखकर उसे उस गाय का बछड़ा माने। फिर चार गन्ने रखकर चार पैर, सोना रखकर मुँह और सींग, चाँदी रखकर खुर, फल रखकर दाँत, चीनी रखकर जीभ, गंधद्रव्य रखकर नाक, मक्खन रखकर स्तन, तागा रखकर पूँछ, ताँबे के पत्तर रखकर, कुश रखकर रोएँ और काँसा रखकर दोहनी कल्पित करे। फिर यथा विधि पूजन करके सब चीजें दान कर दे।

लवणभास्कर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध चूर्ण जिसमें तीनों नमक और अन्य कई ओषधियाँ पड़ती हैं और जो पेट की अपच आदि बीमारियों में दिया जाता है।

लवणमेद-संज्ञा पुं० [सं०] खारी नमक।

लवणमेह-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्रमेह रोग का एक भेद जिसमें पेशाब के साथ लवण के समान स्राव होता है।

लवणयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दो मुहँड़ेदार बरतनों के मुँह जोड़ कर बनाया हुआ एक यंत्र जिसमें कुछ ओषधियों का पाक होता है। इनमें से एक बरतन में नमक भर दिया जाता है।

लवणवर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुश द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष या खंड।

लवण व्यापत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों की एक प्रकार की गहरी पीड़ा जो अधिक नमक खाने से होती है।

लवण समुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] खारे पानी का समुद्र।

विशेष—यह पुराणोक्त सात समुद्रों में से एक है। और पुराणों में तो सातो समुद्रों की उत्पत्ति सगर के पुत्रों के खोदने से या प्रियव्रत राजा के रथ के चलने से बताई गई है; पर ब्रह्मवैवर्त्त में लिखा है कि श्रीकृष्ण की एक पत्नी विरजा के गर्भ से सात पुत्र हुए, जो सात समुद्र हुए। इनमें से एक पुत्र के रोने के कारण थोड़ी देर के लिये कृष्ण का वियोग हो गया। इस पर विरजा ने उसे शाप दिया कि "तू लवण समुद्र होगा और तेरा जल कोई न पीएगा।" यह कथा बहुत पीछे की कल्पित जान पड़ती है।

लवणांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवणासुर को मारनेवाले शत्रुघ्न। (२) नीबू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लवणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। आभा। (२) महाज्योतिष्मती लता। (३) चुक। (४) चँगेरी। (५) अमलोनी शाक। (६) एक नदी का नाम। लूनी।

लवणाचल-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का मत्स्य पुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

लवणालय-संज्ञा पुं० [सं०] लवणासुर की बसाई हुई मधुपुरी जो पीछे मथुरा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

लवणासुर-संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक असुर का पुत्र जो मथुरा में रहता था और जिसे रामचंद्र की आज्ञा से शत्रुघ्न ने मारा था।

विशेष—रामायण में इसकी कथा इस प्रकार है। सत्ययुग में दैत्य कुल में लोला के गर्भ से "मधु" नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने घोर तप द्वारा शिव को प्रसन्न करके उनसे एक शूल प्राप्त किया। फिर दूसरी बार तप करके उसने शिव से यह वर माँगा कि वह शूल मेरे कुल में सदा बना रहे। शिव ने ऐसा वर न देकर यह वर दिया कि शूल तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को मिलेगा। विश्वावसु की कन्या अनला के गर्भ से कुंभीनसी नाम की एक कन्या थी। मधु ने उसके साथ विवाह किया; और उसी के गर्भ से लवणासुर उत्पन्न हुआ। शूल पाकर वह अबध्य हो गया और अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा। जब रामचंद्र जी राजा हुए, तब ऋषियों ने जाकर उनकी दुहाई दी। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न उसे मारने गए; और जिस समय उसके हाथ में शूल नहीं था, उस समय उसे मारा।

लवणोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक, जो सब नमकों से अच्छा माना जाता है।

लवणोत्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता।

लवणोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नमक मिला हुआ पानी। (२) क्षार समुद्र।

लवणोदधि-संज्ञा पुं० [सं०] लवण समुद्र।

लवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लवनीय, लव्य] (१) काटना। छेदना। (२) खेत की कटाई। लुनाई। (३) खेत काटने की मज़दूरी में दिया हुआ अन्न। लौनी। उ०—तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री। रूपरासि बिरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।—तुलसी।

लवना-क्रि० स० [हिं० लुनना] पके हुए अन्न के पौधों को खेतों से काटकर एकत्र करना। लुनना। उ०—तुलसी यह तन खेत है, मन बच करम किसान। पाप पुन्य द्वै बीज हैं बोवै सो लवै निदान।—तुलसी।

वि० दे० "लोना"।

लवनाई क्ष-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य] लावण्य। सुंदरता।

लवनि, लवनी-संज्ञा स्त्री० [सं० लवन] (१) खेत में अनाज की पकी फसल की कटाई। लुनाई। (२) वह अन्न जो खेत काटनेवालों को मज़दूरी में दिया जाता है। उ०—तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री। रूप रासि बिरची बिरंचि मनों सिला लवनि रति काम लही री।—तुलसी।

लवनो-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीफ़े का पेड़ या फल।

लवर †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपट] अग्नि की लपट। ज्वाला। उ०—नारी गारी देत रावनहिं जरत लवर की आग।—देवस्वामी।

लवलासी क्ष†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लव = प्रेम + लासी = लसी, लगाव] प्रेम की लगावट।

लवली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरफारेवरी नाम का पेड़ और उसका फल जो खाया जाता है। (२) एक विषम वर्ण वृत्त जिसके प्रथम चरण में १६, दूसरे चरण में १२, तीसरे चरण में ८ और चौथे चरण में २० वर्ण होते हैं। उ०—दनुज कुल अरि जग हित धरम धर्त्ता। साँची अहहिं प्रभु जगत भर्त्ता। रामा असुर सुहर्त्ता। सरबस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्त्ता।

लवलीन-वि० [हिं० लय + लीन] तन्मय। तल्लीन। मग्न। उ०—(क) अधर मधुर मुसुकान मनोहर कोटि मदन मनहीन। सूरदास जहँ दृष्टि परत है होत तहीं लवलीन।—सूर। (ख) जय जय धुनि सुनि करत अमर गन नर नारी लवलीन।—सूर। (ग) अरु जे विषयन के आधीना। तिनके उद्यम में लवलीना।—विश्राम।

लवलेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अत्यंत अल्प मात्रा। बहुत थोड़ी मिकदार। (२) ज़रा सा लगाव। अल्प संसर्ग। जैसे,—इस दूध में पानी का लवलेश नहीं है। उ०—(क) जाकी कृपा लवलेश तें मतिमंद तुलसीदास हू।—तुलसी। (ख) जाके बल लवलेश ते जितेहु चराचर झारि।—तुलसी।

लवहर †-संज्ञा पुं० [देश०] एक साथ उत्पन्न दो बालक। यमज। जोड़वाँ।

लवा †-संज्ञा पुं० [सं० लाजा] अनाज का दाना जो भूनने से फूल गया हो। भुने हुए धान या ज्वार की खील। लावा। उ०—मिलि माधवी आदिक फूल के ब्याज विनोद लवा बरसायो करें।—द्विजदेव।

संज्ञा पुं० [सं० लव] तीतर की जाति का एक पक्षी जो तीतर से बहुत छोटा होता है। उ०—बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी।

विशेष—यह तीतर की तरह ज़मीन पर अधिक रहता है। पंजे बहुत लंबे होते हैं। नर और मादा में देखने में कोई भेद नहीं होता। मादा भूरे रंग के अंडे देती है। जाड़े के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनों में इस चिड़िया के झुंड के झुंड झाड़ियों और ज़मीन पर दिखाई पड़ते हैं। यह दाने और कीड़े खाता है।

लवाई-वि० [देश०] हाल की ब्याई हुई गाय। वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। उ०—(क) पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई। बालबच्छ जनु धेनु लवाई। —तुलसी। (ख) कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लवना + आई (प्रत्य०)] (१) खेत की फ़सल की कटाई। लुनाई। (२) फ़सल-कटाई की मज़दूरी।

लवाज़मा-संज्ञा पुं० [अ० लवाज़िम] (१) किसी के साथ रहनेवाला दल बल और साज़ सामान। साथ में रहनेवाली भीड़-भाड़ या असबाब। जैसे,—इतना लवाज़मा साथ लेकर क्यों परदेस चलते हो? (२) आवश्यक सामग्री। सामान जो किसी बात के लिये ज़रूरी हो। जैसे,—सब लवाज़मा इकट्ठा कर लो, तब तस्वीर में हाथ लगाओ।

लवासीॐ†-वि० [सं० लप, या लव = बकना + आसी (प्रत्य०)] (१) बकवादी। गप्पी। झूठा। (२) लंपट। उ०—काहे दियो सुर सुख में दुःख कपटी कान्ह लवासी।—सूर।

लशकर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सेना। फ़ौज। योद्धाओं का दल। (२) मनुष्यों का भारी समूह। भीड़भाड़। दल। जैसे,—इतना बड़ा लशकर क्यों साथ लेकर चलते हो? (३) फ़ौज के टिकने का स्थान। सेना का पड़ाव। छावनी। (४) जहाज़ में काम करनेवालों का दल। जहाज़ी आदमी।

लशकरी-वि० [फ़ा० लशकर] (१) फ़ौज का। सेना संबंधी। सेना से संबंध रखनेवाला। (२) जहाज पर काम करनेवाला। खलासी। जहाजी। (३) जहाज से संबंध रखनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) सैनिक। सिपाही। (२) जहाजी आदमी। (३) जहाजियों या खलासियों की भाषा।

लशकारना-क्रि० स० [अ० लश्कर] शिकारी कुत्तों को शिकार पकड़ने के लिये पुकारकर बढ़ावा देना। लहकारना। (शिकारी)

लशुन, लशून-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

लषनॐ-संज्ञा पुं० दे० "लखन"।

लषना-क्रि० स० दे० "लखना"।

लष्षन-संज्ञा पुं० दे० "लक्खन"

लस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिपकने या चिपकाने का गुण। श्लेषण। चिपचिपाहट। (२) वह जिसके लगाव से एक वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। लासा। (३) चित्त लगने की बात। आकर्षण। जैसे,—वहाँ कुछ लस है; तभी यह नित्य जाता है।

लसक-संज्ञा पुं० [सं०] नाचनेवाला। नर्त्तक।

लसकर‡-संज्ञा पुं० दे० "लशकर"

लसदार-वि० [हिं० लस + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें लस हो। जिसमें चिपकने या चिपकाने का गुण हो गोंद की तरह का। लसीला।

लसना-क्रि० स० [सं० लसन] एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटाना कि वह अलग न हो। चिपकाना। जैसे,—इस कागज़ को किताब पर लस दो।

संयो० क्रि०—देना।

ॐ क्रि० अ० (१) शोभित होना। छजना। फबना (२) विराजना। विद्यमान होना। उ०—(क) लसत चारु कपोल दुहुँ बिच सजल लोचन चारु।—सूर। (ख) तहँ राजत दसरथ लसैं देव देव अनूप।—केशव।

लसनिॐ-संज्ञा स्त्री० [हिं० लसना] (१) स्थिति। विद्यमानता। (२) शोभित होने की क्रिया या भाव। शोभा। छटा। उ०—कहत ही बातें श्री गोपाललालजू सों बाल सुने खरिका में खरी माधुरी लसति सों।—रघुनाथ।

लसम-वि० [देश०] जो खरा और चोखा न हो। दागी। दूषित। खोटा। जैसे,—लसम सोना। उ०—और भूप परषि कै ताइके सुलाखि लेत लसम को खसम तुही पै दशरत्थ के।—तुलसी।

लसलसा-वि० [हिं० लस] [स्त्री० लसलसी] लसदार। चिपचिपा। जो गोंद की तरह चिपकने चिपकनेवाला हो।

लसलसाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लसलसा] लसदार होने का भाव। चिपक। चिपचिपाहट।

लसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

लसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाला। थूक।

लसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] (१) लस। चिपचिपाहट। (२) दिल लगने की वस्तु। आकर्षण। जैसे,—वह कुछ लसी पाकर वहाँ जाता है। (३) लोभ का योग। फ़ायदे का डौल। जैसे,—बिना लसी के आप क्यों कहीं जाने लगे! (४) संबंध। लगाव। मेलजोल। जैसे,—ऐसे आदमी से लसी लगाना ठीक नहीं।

क्रि० प्र०—लगाना।

(५) दूध और पानी मिला शरबत।

लसीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस और चमड़े के बीच में रहनेवाला रस या पानी। लाला।

लसीला-वि० [हिं० लस + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लसीली] (१) लसदार। जिसमें लस हो। जिसके लगाने से कोई वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। चिपचिपा। (२) सुन्दर। शोभायुक्त।

लसुन-संज्ञा पुं० दे० "लहसुन"।

लसुनिया-संज्ञा पुं० दे० "लहसुनिया"।

लसोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बसंत में पत्तियाँ झाड़ता है; और हिन्दुस्तान में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। फल में बहुत ही लसदार गूदा होता है। यह फल औषध के काम में आता है और सूखी खाँसी को ढीली करने के लिये दिया जाता है। फ़ारसी में इसे सपिस्ताँ कहते हैं। हकीम लोग मिस्री मिलाकर इसका अवलेह (चटनी) बनाते हैं, जो खाँसी में चाटने के लिये दिया जाता है। संस्कृत में भी इसे श्लेष्मांतक कहते हैं।

लसौटा-संज्ञा पुं० [हिं० लासा + औटा (प्रत्य०)] बाँस का चोंगा जिसमें बहेलिए चिड़िया फँसाने का लासा रखते हैं।

लस्टम पस्टम‡-क्रि० वि० [देश०] (१) धीरे धीरे। (२) किसी न किसी तरह से। अच्छी तरह या पूरे समान के साथ नहीं। जैसे,—लस्टम पस्टम काम चला जाता है।

लस्त-वि० [सं०] (१) क्रीड़ित। (२) शोभायुक्त। सजावट से भरा।

वि० [हिं० लटना] (१) थका हुआ। शिथिल। श्रम या थकावट से ढीला। जैसे,—चलते चलते शरीर लस्त हो गया है। (२) जिसमें कुछ करने की शक्ति या साहस न रह गया हो। अशक्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष का मध्य भाग। मूठ।

लहँगा-संज्ञा पुं० [हिं० लंक = कमर + अंगा] कमर के नीचे का सारा अंग ढाँकने के लिये स्त्रियों का एक घेरदार पहनावा जो सूत की डोरी या नाले (इज़ारबंद) से कमर में कसकर पहना जाता है और जिसमें बहुत सी चुनटें पड़ी रहती हैं। इसमें नाली के आकार का घेरेदार नाला पड़ा रहता है, जिसे नेफा कहते हैं। लहँगे से केवल कटि के नीचे का भाग ढँकता है; इस से इसके साथ ओढ़नी भी ओढ़ी जाती है। उ०—छुद्र घंटिका कटि लहँगा रँग तन तनसुख की सारी।—सूर।

लहकना-क्रि० अ० [सं० लता = हिलना डोलना या अनु०] (१) हवा में इधर उधर डोलना। झोंके खाना। लहराना। उ०—(क) सकपकाहिं विष भरे पसारे। लहर भरे, लहकहिं अति कारे।—जायसी। (ख) बैठ्यो ससि ऊपर सँभारि न सकति भार बेली मानो लहकै नवेली सोनजुही की।—रघुनाथ। (ग) नव मालती चहूँ दिसि महँकत। जमुन-लहर तट लह लह लहकत।—गोपाल। (घ) लाल लाल की लर लटकाए लहकति छन छन।

संयो० क्रि०—उठना।

(२) हवा का बहना। हवा का झोंके देना। उ०—कंत बिनु बासर बसंत लागे अंतक से तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन।—देव। (३) आग का इधर उधर लपट छोड़ना। लपट का निकलना। दहकना। जैसे,—आग लहकना। (४) चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ना। लपकना। (५) चाह से भरना। उत्कंठित होना। ललकना। उ०—अँखियाँ अधर चूमि हा हा छाँड़ो कहै झूमि छतियाँ सों लगी लग लगी सी लहकिकै।

लहकाना-क्रि० स० [हिं० लहकना] (१) हवा में इधर उधर हिलाना डुलाना। झोंका खिलाना। (२) आगे बढ़ाना। (३) चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ाना। लपकाना। जैसे—तुमने लहका दिया, इसी से वह पीछे लगा। (४) उत्साह दिला कर आगे बढ़ाना। आगे बढ़ने के लिये उत्साहित करना। किसी ओर अग्रसर होने के लिये बढ़ावा देना। (५) किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये भड़काना। ताव दिलाना। वरगलाना।

संयो० क्रि०—देना।

लहकौर, लहकौरि-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना + कौर (ग्रास)] विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा और दूलहिन कोहबर में एक दूसरे के मुँह में कौर (ग्रास) डालते हैं। उ०—(क) लह-कौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं।—तुलसी। (ख) गोदा रंगनाथ मुख माहीं। मेलति है लहकौरि तहाँ हीं।—रघुराज।

लहजा-संज्ञा पुं० [अ० लहजः] गाने या बोलने का ढंग। स्वर। लय। जैसे,—वह बड़े अच्छे हलज़े से गाता है।

लहज़ा-संज्ञा पुं० [अ०] पल। अल्पकाल। क्षण।

मुहा०—लहज़ा भर = क्षण भर। थोड़ी देर।

लहटना†-क्रि० अ० [देश०] परचना।

लहनदार-संज्ञा पुं० [हिं० लहना + फ़ा० दार] वह मनुष्य जिसका कुछ लहना किसी पर बाकी हो। ऋण देनेवाला। महाजन।

लहना-क्रि० स० [सं० लभन, प्रा० लहन] प्राप्त करना। लाभ करना। प्राप्त करना। पाना। उ०—नाचत ही निसि दिवस मर्‍यो, पै नहिं सुख कबहूँ लह्यो।—सूर।

†क्रि० स० [सं० लवन] (१) कटना। छेदना। (२) खेत की फसल काटना। (३) छीलना। तराश करना। कतरना।

संज्ञा पुं० [सं० लभन, प्रा० लहन] (१) किसी को दिया हुआ धन जो वसूल करना हो। उधार दिया हुआ रुपया पैसा। जैसे,—हमारा सब लहना साफ़ कर दो।

यौ०—†लहना पटवना।

मुहा०—लहना चुकाना या साफ़ करना = किसी से लिया हुआ कर्ज़ अदा करना। लिया हुआ ऋण दे देना।

(२) वह धन जो किसी काम के बदले में किसी से मिलने-वाला हो। रुपया पैसा जो किसी कारण किसी से मिलने-वाला हो। (३) भाग्य। किस्मत। जैसे,—जिसके लहने का होगा, उसे मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लहना बही-संज्ञा पुं० [हिं० लहना + बही] वह बही जिसमें ऋण लेनेवालों के नाम और रकमें लिखी जाती हैं, और जिसके अनुसार वसूली होती है।

लहनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना] (१) प्राप्ति। (२) फलभोग। उ०—लहनी करम के पाछे। दियो आपनो लैहे सोई मिलै नहीं पाछे।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना = काटना, छीलना] वह औजार जिससे ठठेरे बरतन छीलते हैं।

लहमा-संज्ञा पुं० [अ० लह्मः] निमेष। पल। क्षण। अत्यन्त अल्प काल।

लहर-संज्ञा स्त्री० [सं० लहरी] (१) हवा के झोंके से एक दूसरे के पीछे ऊँची उठती हुई जल की राशि। बड़ा हिलोरा। मौज। उ०—लोल लहर उठि एक एक पै चलि इमि आवत।—हरिश्चन्द्र।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

मुहा०—लहर लेना = समुद्र के किनारे लहर में स्नान करना।

(२) उमंग। वेग। जोश। उठान। जैसे,—आनंद की लहर। उ०—फूली धेनु, फूले धाम, फूली गोपी अंग अंग फिर तरुवर आनँद लहर के।—सूर। (३) मन की मौज। मन में आप से आप उठी हुई प्रेरणा। मन में वेग के साथ उत्पन्न भावना। जैसे,—उनके मन की लहर है; आज इधर ही निकल आए। (४) शरीर के अंदर के किसी उपद्रव (जैसे, बेहोशी, पीड़ा आदि) का वेग जो कुछ अंतर पर रह रहकर उत्पन्न हो। झोंका। जैसे,—साँप के काटने पर लहर आती है। उ०—(क) सुनि के राजा गा मुरझाई। जानौ लहरि सुरुज कै आई।—जायसी। (ख) सूर सुरति तनु की कछु आई उतरत लहरि के।—सूर।

मुहा०—लहर देना या मारना = रह रहकर किसी प्रकार की पीड़ा उठना। साँप काटने की लहर = साँप काटे आदमी की वह अवस्था जिसमें बेहोशी के बीच बीच में वह जाग उठता है। उ०—लाओ गुनी गोविंद को बाढ़ी है अति लहरि।—सूर।

(५) आनंद की उमंग। हर्ष या प्रसन्नता का वेग। मज़ा। मौज। जैसे,—वहाँ चलो; बड़ी लहर आवेगी।

यौ०—लहर बहर = सब प्रकार का आनन्द और सुख।

मुहा०—लहर आना = आनंद आना। लहर लेना या मारना = आनंद भोगना। मौज करना।

(६) आवाज़ की गूँज। स्वर का कंप जो वायु में उत्पन्न होता है। (७) वक्र गति। इधर उधर मुड़ती हुई टेढ़ी चाल। जैसे,—वह लहरें मारता चलता है।

मुहा०—लहर मारना या देना = सीधा न जाकर इधर उधर मुड़ना।

(८) बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होती हुई जानेवाली रेखा। चलते सर्प की सी कुटिल रेखा। (९) हवा का झोंका। (१०) किसी प्रकार की गंध से भरी हुई हवा का झोंका। महक। लपट। उ०—खुलि रही खूब खुसबोयन की लहरि तैसे सीतल समीर डोलै तनिकऊ न डोली मैं।—निहाल।

लहरदार-वि० [हिं० लहर + फा० दार (प्रत्य०)] जो सीधा न जाकर टेढ़ा मेढ़ा गया हो। जो बल खाता गया हो। कुटिल या वक्रगति से गया हुआ। जैसे,—यह लकीर सीधी नहीं है, लहरदार है।

लहरना-क्रि० अ० दे० "लहराना" उ०—बरसाती तरिवर लह-रत तहँ लता रहीं लूमि लूमि।—देवस्वामी।

लहरा-संज्ञा पुं० [हिं० लहर] (१) लहर। तरंग। (२) मौज। आनंद। मज़ा। (३) बाजों की वह गत जो आरंभ में नाचने वा गाने के पहले समाँ बाँधने और आनंद बढ़ाने के लिये बजाई जाती है। इसमें कुछ गाना नहीं होता, केवल ताल और स्वरों की लय मात्र होती है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

लहराना-क्रि० अ० [हिं० लहर + आना (प्रत्य०)] (१) हवा के झोंके से इधर उधर हिलना डोलना। प्रकंपित होना। लहरें खाना। जैसे,—खेत लहलराना, या खेतों में धान लहराना, लता लहराना, बाल लहराना, पताका लहराना। उ०—(क) आतप पर्‌यो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमलमुख। अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख।—व्यास। (ख) मनु प्रगट मनोरथ की लता ललकि लहराति है।—गोपाल। (२) हवा का चलना या पानी का हवा के झोंका से उठना और गिरना। बहना या हिलोर मारना। (३) सीधे न चलकर साँप की तरह इधर उधर मुड़ते या झोंका खाते हुए चलना। जैसे,—यह लकीर लहराती हुई गई है। (४) मन का उमंग में होना। उल्लास में होना। जैसे,—यह सुनकर उसका मन लहरा उठा। (५) किसी वस्तु के लिये उत्कंठित होना। प्राप्त करने की इच्छा से अधीर होना। लपकना। जैसे,—उसके लिये वह लहरा उठा। (६) आग की लपट का निकलकर इधर उधर हिलना। दहकना। भड़कना। उ०—श्रीपति सुकवि यो वियोगी कहरन लागे, मदन की आगि लहरान लागी तन में।—श्रीपति। (७) शोभित होना। लसना। विराजना। शोभापूर्वक रहना। उ०—(क) कहै पद्माकर अरीन की अवाई पर साहब सवाई की ललाई लहराति है।—पद्माकर। (ख) त्यागि भय भाव चहूँ घूमत अनंद भरे विपिन विहारी पर सुखसाज लहरत।

क्रि० स० (१) हवा के झोंके में इधर उधर हिलाना डुलाना या हिलने डोलने के लिये छोड़ देना। जैसे,—सिर के बाल लहराना। (२) सीधे न चलाकर साँप की तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना। वक्र गति से ले जाना (३) बार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार इधर से उधर हिलाना डुलाना। उ०—सूरदास प्रभु सोइ कन्हैया लहरावति मल्हरावति है।—सूर।

लहरिका—संज्ञा स्त्री० दे० "लहर"।

लहरिया—संज्ञा पुं० [हिं० लहर] (१) ऐसी समानांतर रेखाओं का समूह जो सीधी न जाकर क्रम से इधर उधर मुड़ती हुई गई हों। लहरदार चिह्न। टेढ़ी मेढ़ी गई हुई लकीरों की श्रेणी। जैसे,—(क) इसका लहरिया किनारा है। (ख) इसमें लहरिया काम बना हुआ है। (२) एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंग बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं। (३) वह साड़ी या धोती जिसकी रंगाई टेढ़ी मेढ़ी लकीरों के रूप में हो। उ०—(क) लहरत लहर लहरिया लहर बहार। मोतिन जड़ी किनरिया बिथुरे बार।—रहीम। (ख) फहर फहर होत प्रीतम को पीतपट, लहर लहर होत प्यारी को लहरिया।—देव। (४) ज़री के कपड़ों के किनारे बनी हुई बेल।

संज्ञा स्त्री० "लहर" शब्द का पूरबी निर्देशात्मक रूप। उ०—मैं गैलिउँ सोइ पिया मोर जागे, आइ गई सुषमन लहरिया हो रामा।—कबीर।

लहरियादार—वि० [हिं० लहरिया + दार (प्रत्य०)] जिसमें लहरिया बना हो। जिसमें बहुत सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ हों।

लहरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहर। तरंग। हिलोर। मौज। उ०—ऊधो, बसुधा में सुधा-लहरी लला की बरनी मैन कलावारी कहि प्यारी कब वोलिहैं।—दीनदयाल।

† वि० [हिं० लहर + ई (प्रत्य०)] मन की तरंग के अनुसार चलनेवाला। आनंदी। मनमौजी। ख़ुश-मिज़ाज।

लहल—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का राग जो दीपक राग का पुत्र कहा जाता है।

लहलह—वि० [हिं० लहलहाना या अनु०] (१) लहलहाता हुआ। हरा भरा। सरस। उ०—लाल नील सित पीत कमलकुल सब ऋतु में लहलहाई।—देवस्वामी। (२) हर्ष से फूला हुआ। ख़ुशी से खिला हुआ। प्रफुल्लित।

लहलहा—वि० [हिं० लहलहाना] [स्त्री० लहलही] लहलहाता हुआ। फूल पत्तों से भरा और सरस। हरा भरा। (२) आनन्द से पूर्ण। खुशी से भरा हुआ। प्रफुल्ल। (३) हृष्ट पुष्ट। जैसे, देह लहलही होना।

लहलहाना—क्रि० अ० [हिं० लहरना (पत्तियों का)] (१) लहरानेवाली हरी पत्तियों से भरना। हरा भरा होना। फूल पत्तों से सरस और सजीव दिखाई देना। जैसे,—चारों ओर लहलहाते खेत चले गए हैं।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

(२) प्रफुल्ल होना। आनन्द से पूर्ण होना। खुशी से भरना। जैसे,—इतना सुनते ही वे लहलहा उठे। (३) सूखे पेड़ या पौधे में फिर से पत्तियाँ निकलना। पनपना। जैसे,—चार ही दिन पानी पाने से यह पौधा लहलहा उठा। (४) दुर्बल शरीर का फिर से हृष्ट और सजीव होना। शरीर पनपना।

संयो० क्रि०—उठना।

लहलही—वि० स्त्री० दे० "लहलहा"

लहली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दलदल जो किसी जलाशय के सूख जाने पर रह जाती है।

लहसुआ†—संज्ञा पुं० दे० "लसोड़ा"।

लहसुन—संज्ञा पुं० [सं० लशुन] (१) एक केन्द्र से उठकर चारो ओर गिरी हुई लम्बी लम्बी पतली पत्तियों का एक पौधा, जिसकी जड़ गोल गाँठ के रूप में होती है। उ०—तुलसी अपनो आचरण भलो न लागत कासु। तेहि न बसति जो खात नित लहसुनहू की बासु।—तुलसी।

विशेष—इसकी जड़ या कंद प्याज के ही समान तीक्ष्ण और उग्र गंधवाली होती है; इससे इसे बहुत से आचारवान् हिंदू विशेषतः वैष्णव नहीं खाते। प्याज की गाँठ और लहसुन की गाँठ की बनावट में बहुत अंतर होता है। प्याज की गाँठ कोमल कोमल छिलकों की तहों से मढ़ी हुई होती है; पर लहसुन की गाँठ चारों ओर एक पंक्ति में गुछी हुई फाँकों से बनी होती है जिन्हें जवा कहते हैं। वैद्यक में यह मांसवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगह को ठीक करनेवाला, कफ-वातनाशक, कंठशोधक, गुरु, रक्त पित्त वर्द्धक, बलकारक, वर्ण-प्रसादक, मेधा-जनक, नेत्रों का हितकारी, रसायग तथा हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, अर्श, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वायु, श्वास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाश में लिखा है कि लहसुन खानेवाले के लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक है; तथा कसरत, धूप, क्रोध, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर है। वैद्यक में इसके बहुत गुण कहे गए हैं। यह तरकारी के मसाले में पड़ता है। "भावप्रकाश" में लहसुन के संबंध में यह आख्यान लिखा है—जिस समय गरुड़ इंद्र के यहाँ से अमृत हरकर लिए जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूँद ज़मीन पर गिर पड़ी। उसी से लहसुन की उत्पत्ति हुई। मनु आदि स्मृतियों में इसके खाने का निषेध पाया जाता है।

पर्य्या०—महौषध। अरिष्ट। महाकंद। म्लेच्छकंद। रसोनक। भूतघ्न। उग्रगंध।

(२) मानिक का एक दोष जिसे संस्कृत में "अशोभक" कहते हैं।

लहसुनिया—संज्ञा पुं० [हिं० लहसुन] धूमिल रंग का एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर। रुद्राक्षक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष—यह नवरत्नों में है तथा लाल, पीले और हरे रंग का भी होता है। जिस पर तीन अर्द्ध रेखाएँ हों, वह उत्तम समझा जाता है और "ढाई सूत का" कहलाता है।

लहसुवा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साग।

लहा॰-संज्ञा पुं० दे० "लाह"।

लहाछेह-संज्ञा पुं० [?] (१) नृत्य की क्रियाओं में से चौथी क्रिया। नाच की एक गति। (२) नाचने में तेज़ी और झपट। उ०—गोपिन सँग निस सरद की रमत रसिक रसरास। लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास। —बिहारी।

लहालह†॰-वि० दे० "लहलहा" उ०—(क) मालति औ मुचकुन्द है केदलि के परकास। पुरइन जामें लहालहि शोभा अधिक प्रकास।—कबीर। (ख) नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे। देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे। —तुलसी।

लहालोट-वि० [हिं० लाभ, लाह + लोटना] (१) हँसी से लोटता हुआ। हँसी में मग्न। (२) खुशी से भरा हुआ। आनंद के मारे उछलता हुआ। उल्लास-मग्न। जैसे,—यह कविता सुनते ही वह लहालोट हो गया। (३) प्रेम-मग्न। लुभाया हुआ। लुब्ध। मोहित। लट्टू। जैसे,—वह उसका रूप देखते ही लहालोट हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लहासन-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काली भेंड़ जिसकी कनपटी से माथे तक का भाग लाल होता है। (गड़ेरिये)

लहासी-संज्ञा स्त्री० [सं० लभस, प्रा० लहस = रस्सी] (१) वह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज़ बाँधे जाते हैं। (२) रस्सी। डोरी। (३) रास्ते में निकली हुई जड़। (पालकी के कहार)

लहि†-अव्य० [हिं० लहना = प्राप्त होना, पहुँचना] पर्य्यंत। तक। ताईं। उ०—आवहु करहु कदरमस साजू। चढ़हिं बजाइ जहाँ लहि राजू।—जायसी।

लहिला†-संज्ञा पुं० दे० "रहिला"।

लहु॰†-अव्य० दे० "लौं"। उ०—बड़ कलेसु कारज अलप बड़ी आस लहु लाहु। उदासीन सीतारमनु समय सरिस निरवाहु।—तुलसी।

लहुरा†-वि० [सं० लघु, प्रा० लहु + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० लहुरी] छोटा। कनिष्ठ। जैसे,—लहुरा भाई।

लहुरी†-वि० स्त्री० [हिं० लहुरा] छोटी। कनिष्ठा।

लहू-संज्ञा पुं० [सं० लोह, हिं० लोहू] रक्त। लोहू। रुधिर। खून।

मुहा०—लहूलुहान होना = खून से भर जाना। अत्यन्त लहू बहना। विशेष रक्तस्राव होना।

लहेर-संज्ञा पुं० [हिं० लहना = पाना] ब्राह्मण। (सुनार)

लहेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लाह = लाख + एरा (प्रत्य०)] (१) एक जाति जो रेशम रँगने का काम करती है। (२) लाह का पक्का रँग चढ़ानेवाला। (३) पक्का रेशम रँगनेवाला। रँगरेज़। उ०—तारकसौ अत्तार घनेरे। जोलहा पुनि कलवार लहेरे। —गोपाल।

लहेसना†-क्रि० स० [देश०] साँचे के पल्लों को गाभे पर बैठाना। (बरतन बनानेवाले)

लहेरा-संज्ञा पुं० [देश०] छोटे डील का एक सदाबहार पेड़ जो पंजाब, दक्खिन, गुजरात और राजपूताने में बहुत होता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत चिकनी, साफ़ और मज़बूत होती है और कुरसी, मेज़, आलमारी इत्यादि सजावट के समान बनाने के काम में आती है।

लाँक†-संज्ञा स्त्री० [सं० लक = डंठल या बाल] (१) जौ, गेहूँ, चने, अरहर इत्यादि के पके और कटे हुए पौधों का समूह जो झाड़ने के वास्ते एकत्र हों। ताजी कटी हुई फसल। (२) भूसा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लंक] (१) कमर। कटि। उ०—लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाय।—बिहारी।

क्रि० प्र०—डालना।—लगाना।

(३) परिमाण। मिकदार।

लाँग-संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल = पूँछ] धोती का वह भाग जो दोनों जाँघों के नीचे से निकालकर पीछे की ओर कमर से खोंस लिया जाता है। काछ। जैसे,—धोती की लाँग।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।—मारना।—लगाना।

लाँगड़ो-संज्ञा पुं० [सं० लांगूल] हनुमान जी। (डिं०)

लांग प्राइमर-संज्ञा पुं० [श्रं०] छापेखाने में एक प्रकार का टाइप जिसका आकार आदि इस प्रकार होता है—"लांग प्राइमर"।

लांगल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत जोतने का हल। (२) चंद्रमा का अर्द्धोन्नत शृंग। (३) शिश्न। लिंग। (४) एक प्रकार का फूल। (५) ताड़ का पेड़।

लांगलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार हल के आकार का वह घाव जो भगंदर रोग में गुदा में शस्त्र चिकित्सा करके किया जाता है।

लांगलकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] खेतिहर। किसान।

लांगल चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसकी सहायता से खेती के संबंध में शुभाशुभ फल जाने जाते हैं। इसका आकार इस प्रकार का होता है—

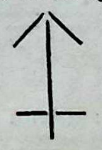

लांगलध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] बलराम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लांगलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कलियारी नाम का जहरीला पौधा। (२) मजीठ। (३) जल-पीपल। (४) पिठवन। (५) कौंछ। केवाँच। (६) गज पीपल। (७) चव्य। चाब। (८) महाराष्ट्री या मराठी नाम की लता। (९) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

लांगलिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष।

लांगलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "लांगलि"।

लांगलिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी।

लांगलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी। कलिहारी।

लांगली-संज्ञा पुं० [सं० लांगलिन्] (१) श्री बलराम जी। (२) नारियल। (३) सर्प। साँप।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (२) कलियारी। (३) मजीठ। (४) पिठवन। (५) कौंछ। केवाँच। (६) जल-पीपल। (७) गजपीपल। (८) चव्य। चाब। (९) महाराष्ट्री नाम की लता। (१०) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

लांगलीश-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिव लिंग का नाम।

लांगली शाक-संज्ञा पुं० [सं०] जल पीपल।

लांगलीषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल का लट्ठा। हरिस।

लांगुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूँछ। दुम। (२) शिश्न। लिंग।

लांगुली-संज्ञा पुं० [सं० लांगुलिन्] (१) बंदर। (२) ऋषभ नामक ओषधि। (३) पिठवन। (४) कौंछ। केवाँच।

लांगुलीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पिठवन।

लांगूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुम। पूँछ। (२) शिश्न। लिंग।

लांगूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कौंछ। (२) पिठवन। पृश्नपर्णी।

लांगूली-संज्ञा पुं० [सं० लांगूलिन्] बंदर। वानर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (२) पिठवन। पृश्निपर्णी। (३) केवाँच। कौंछ।

लाँघना-क्रि० स० [सं० लंघन] (१) किसी चीज के इस पार से उस पार जाना। डाँकना। नाँघना। जैसे,—लड़के को लाँघकर मत जाया करो। (२) किसी वस्तु को उछलकर पार करना। जैसे,—यह नाला तो तुम यों ही लाँघ सकते हो।

संयो० क्रि०—जाना।

लाँघनी उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाँघना + उड़ी = कुदान] मालखंभ की एक कसरत जो साधारण उड़ी के ही समान होती है। इसमें विशेषता यह है कि इसमें बीच का कुछ स्थान कूद या लाँघकर पार किया जाता है।

लाँच-संज्ञा स्त्री० [देश०] रिशवत। घूस। उत्कोच।

लांचुल-संज्ञा पुं० [सं०] धान्य। धान।

लांछन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्न। निशान। (२) दाग़। (३) दोष। कलंक। जैसे,—तुम तो यों ही सबको लांछन लगाया करते हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

लांछना-संज्ञा स्त्री० दे० "लांछन"।

लांछनित*-वि० [सं० लांछन] जिसे लांछन लगा हो। कलंकित। दोषयुक्त। लांछित।

लाँजो-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

लाँड़†-संज्ञा पुं० दे० "लंड"।

लांतकज-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक प्रकार के देवताओं का गण।

लांपट्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंपट होने का भाव। लंपटता। (२) व्यभिचार।

लाँबा†*-वि० दे० "लंबा"। उ०—(क) चारहि हैं खुर वाके गरो अति लाँबों सो मूँड़ उठावत है।—सीताराम। (ख) सत योजन लाँबो अरु ऊँचो।—गिरधर। (ग) लाँबी डग भरी ठौर ठौर गिर परी राम देखौ जेहि घरी देख रही मुख रूप को।—हृदयराम। (घ) लहलही लाँबी लटैं लपटी सुलंक पर।—पद्माकर।

लाइ*†-संज्ञा पुं० [सं० अलात = लुक, प्रा० अलाय] अग्नि। उ०—(क) तब लंक हनूमत लाइ दई।—केशव। (ख) ज्यों ज्यों बरसत घोर घन घनघमंड गरुवाइ। त्यों त्यों परति प्रचंड अति नई लगन की लाइ।—पद्माकर।

लाइक-वि० दे० "लायक"।

लाइची-संज्ञा स्त्री० दे० "इलायची"।

लाइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कतार। अवली। (२) पंक्ति। सतर। (३) रेखा। लकीर। (४) रेल की सड़क। (५) घरों की वह पंक्ति जिनमें सिपाही रहते हैं। बारिक। लैन।

लाई†-संज्ञा स्त्री० [सं० लाजा] उबाले हुए धानों को सुखाकर गरम बालू में भूनने से बनी हुई खीलें। धान का लावा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लाना = लगाना] छिपी शिकायत। चुगली। निंदा।

क्रि० प्र०—लगाना।

यौ०—लाई लुतरी = (१) चुगली। शिकायत। (२) यह जो इधर उधर दूसरों की चुगली खाती फिरती हो। एक से दूसरे की निंदा करनेवाली। चुगलखोर। (स्त्री०)

लाऊ-संज्ञा पुं० [हिं० अलावू] लौकी। कद्दू। घिआ। वि० दे० "घिया"।

लाकड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "लकड़ी"।

लाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक योगिनी का नाम।

लाकुच-संज्ञा पुं० दे० "लकुच"।

लाक्षकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता का एक नाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाक्षण्य-वि० [सं०] लक्षण संबंधी । लक्षण का ।

लाक्षणिक-वि० [सं०] (१) जिससे लक्षण प्रकट हो । (२) लक्षण संबंधी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ हों । (२) वह जो लक्षणों का ज्ञाता हो । लक्षण जाननेवाला ।

लाक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख । लाह ।

लाक्षागृह-संज्ञा पुं० [सं०] लाख का वह घर जिसे दुर्योधन ने पांडवों को जला देने की इच्छा से बनवाया था । आग लगने से पहले ही सूचना पाकर पांडव लोग इस घर से निकल गए थे ।

लाक्षातरु-संज्ञा पुं० [सं०] पलास का वृक्ष ।

लाक्षा तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो साधारण तेल, लाख, हल्दी और मजीठ आदि डालकर पकाने से बनता है । यह दाह और ज्वर का नाशक माना जाता है ।

लाक्षादि तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो साधारण तेल में लाख, दूध या दही, लाल चंदन, असगंध, हलदी, दारु हलदी, मुलेठी, कुटकी, रेणुका आदि ओषधियाँ पकाने से बनता है । यह जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा आदि रोगों को दूर करनेवाला और बलवर्द्धक माना जाता है ।

लाक्षाप्रसाद-संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध ।

लाक्षाप्रसादन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लोध ।

लाक्षारस-संज्ञा पुं० [सं०] महावर, जो पानी में लाख औटाकर बनाते हैं ।

लाक्षावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढाक । पलास । (२) कोशाम्र । कोसम ।

लाक्षिक-वि० [सं०] (१) लाक्षा संबंधी । लाख का । (२) लाख का बना हुआ । लाखी ।

लाख-वि० [सं० लक्ष, प्रा० लक्ख] (१) सौ हजार । उ०—लाखन हू की भीर से आँखि वहीं चलि जाहिं । (२) (लक्षणा से) बहुत अधिक । गिनती में बहुत ज्यादा ।

मुहा०—लाख टके की बात = अत्यंत उपयोगी बात ।

संज्ञा पुं० सौ हजार की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१०००००।

क्रि० वि० बहुत । अधिक । जैसे,—तुम लाख कहो, मैं एक न मानूँगा ।

मुहा०—लाख से लीख होना = अत्यधिक से अत्यल्प हो जाना । सब कुछ से कुछ न रह जाना । उ०—बहुतक भुवन सोह अँतरीखा । रहे जो लाख भये ते लीखा ।—जायसी । लाख का घर राख होना = लाख रुपए का घर या खान्दान नाश होना ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध लाल पदार्थ जो पलास, पीपल, कुसुम, बेर, अरहर आदि अनेक प्रकार के वृक्षों की टहनियों पर कई प्रकार के कीड़ों से बनता है । लाह ।

विशेष—एक प्रकार के बहुत छोटे कीड़े होते हैं, जिनकी कई जातियाँ होती हैं । ये कीड़े या तो कुछ वृक्षों पर आप से आप हो जाते हैं या इसी लाल पदार्थ के लिये पाले जाते हैं । वृक्षों पर ये कीड़े अपने शरीर से एक प्रकार का लसदार पदार्थ निकालकर उससे घर बनाते हैं और उसी में बहुत अधिक अंडे देते हैं । कीड़े पालनेवाले बैसाख और अगहन में वृक्षों की शाखाओं पर से खुरचकर यह लाल द्रव्य निकाल लेते हैं और तब इसे कई तरह से साफ करके काम में लाते हैं । इससे कई प्रकार के रंग, तेल, वारनिश और चूड़ियाँ, कुमकुमे आदि द्रव्य बनते हैं । चपड़ा भी इसी से तैयार होता है । लाख केवल भारत में ही होती है; और कहीं नहीं होती । यहीं से यह सारे संसार में जाती है । यहाँ इसका व्यवहार बहुत प्राचीन काल से, संभवतः वैदिक काल से, होता आया है । पहले यहाँ इससे कपड़े और चमड़े आदि रँगते थे और पैर में लगाने के लिये अलता या महावर बनाते थे । वैद्यक में इसे कटु, स्निग्ध, कषाय, हलकी, शीतल, बलकारक और कफ, रक्त-पित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, विसर्प, कुष्ट, रुधिर-विकार आदि को र करनेवाली माना है ।

पर्य्या०—कीटजा । रक्तमातृका । अलक्तक । जंतुका ।

(२) लाल रंग के वे बहुत छोटे छोटे कीड़े जिनसे उक्त द्रव्य निकलता है । इनकी कई जातियाँ होती हैं ।

लाखना-क्रि० अ० [हिं० लाख + ना (प्रत्य०)] लाख लगाकर बरतन या और किसी चीज में का छेद बंद करना । उ०—शील तो सिधार्‍यो तब संग न सिधारी जब तऊ भलो आजहू लौं फूटो घट लाखबो ।—हृदयराम ।

*† क्रि० स० [सं० लक्षण] लख लेना । जान लेना । समझ लेना । उ०—सुनि के महादेव कै भाखा । सिद्ध पुरुष राजैं मन लाखा ।—जायसी ।

लाखपती-संज्ञा पुं० दे० "लखपती" ।

लाखा-संज्ञा पुं० [हिं० लाख] (१) लाख का बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसे स्त्रियाँ सुन्दरता के लिये होंठों पर लगाती हैं ।

क्रि० प्र०—जमाना ।—लगाना ।

(२) गेहूँ के पौधों में लगनेवाला एक रोग जिससे पौधे की नाल लाल रंग की होकर सड़ जाती है । इसे गेरुआ या कुकुहा भी कहते हैं ।

विशेष—यह एक प्रकार के बहुत ही सूक्ष्म लाल रंग के कीड़ों का समूह होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा पुं० [हिं० लाख = लक्ष] एक प्रसिद्ध भक्त जो मारवाड़ देश का निवासी था ।

लाखागृह-संज्ञा पुं० दे० "लाक्षागृह ।

लाखिराज-वि० [अ०] (भूमि) जिसका लगान न देना पड़ता हो । जिस पर कर न हो । जैसे, लाख़िराज ज़मीन ।

लाखिराजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाखिराज + ई (प्रत्य०)] वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो ।

लाखी-वि० [हिं० लाख + ई (प्रत्य०)] लाख के रंग का । मटमैला लाल ।

संज्ञा पुं० मटमैला लाल रंग । लाख का सा रंग ।

लाग-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) संपर्क । संबंध । लगाव । ताल्लुक़ । जैसे,—(क) इन दोनों में कहीं से कोई लाग तो नहीं मालूम होती । (ख) यह डंडा अधर में बे-लाग खड़ा है । (२) प्रेम । प्रीति । मुहब्बत । (३) लगावट । लगन । मन की तत्परता । उ०—बरणत मान प्रवास पुनि निरखि नेह की लाग ।—पद्माकर । (४) युक्ति । तरकीब । उपाय । (५) वह स्वाँग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझ में न आवे । जैसे,—किसी के पेट या गर्दन के आर पार (वास्तव में नहीं, बल्कि केवल कौशल से) तलवार या कटार गई हुई दिखलाना । (६) प्रतिस्पर्धा । प्रतियोगिता । चढ़ा ऊपरी ।

यौ०—लाग डाँट ।

(७) वैर । शत्रुता । दुश्मनी । झगड़ा ।

क्रि० प्र०—मानना ।—रखना ।

(८) जादू । मंत्र । टोना । (९) वह चेप जिससे चेचक का अथवा इसी प्रकार का और कोई टीका लगाया जाता है । (१०) वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदि को अलग अलग रस्मों के संबंध में दिया जाता है । (११) धातु को फूँककर तैयार किया हुआ रस । भस्म । (१२) दैनिक भोजन सामग्री । रसद । (बुंदेल०) (१३) भूमि कर । लगान । उ०—अपनो लाग लेहु लेखो करि जो कछु राज अंश को दाम ।—सूर । (१४) एक प्रकार का नृत्य । उ०—अरु लाग धाउ राय-रंगाल ।—केशव ।

लागडाँट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाग = वैर + डाँट] (१) शत्रुता । दुश्मनी । वैर । (२) प्रतिस्पर्धा । प्रतियोगिता । चढ़ा ऊपरी ।

संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नदंड] नृत्य की एक क्रिया ।

लागत-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] वह खर्च जो किसी चीज की तैयारी या बनाने में लगे । कोई पदार्थ प्रस्तुत करने में होने-वाला व्यय । जैसे,—(क) इस मकान पर १००००) लागत आई है । (ख) तुम्हारा यह लिहाफ कितनी लागत का है ? (ग) तुम से हम लागत भर लेंगे, मुनाफ़ा नहीं लेंगे ।

क्रि० प्र०—आना ।—बैठना ।—लगाना ।

लागि*†-अव्य० [हिं० लगना] (१) कारण । हेतु । (२) निमित्त । लिये । ख़ातिर । वास्ते । उ०—(क) जे देव देवी सेइ अति हित लागि चित सनमानि कै । ते यंत्र मंत्र सिखाय राखत सबनि सो पहिचानि कै ।—तुलसी । (ख) तुम्हहिं लागि धरिहौं नर देहा ।—तुलसी ।

लागू†-वि० [हिं० लगना] (१) जो लग सकता हो या लगने योग्य हो । प्रयुक्त होने योग्य । चरितार्थ होनेवाला । जैसे,—वही नियम यहाँ भी लागू है ।

लागे†-अव्य० [हिं० लगना] वास्ते । लिये । उ०—पुत्र शरीर परा तव आगे । रोवत मृषा जीव के लागे ।

लाघरक-संज्ञा पुं० [सं०] हलीमक नामक रोग ।

लाघव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लघु होने का भाव । लघुता । हलकापन या छोटापन । (२) थोड़ा होने का भाव । कमी । अल्पता । (३) हाथ की सफ़ाई । फुर्त्ती । तेजी । जैसे, हस्त लाघव । (४) नपुंसकता । (५) आरोग्यता । नीरोगता । तंदुरुस्ती ।

अव्य० [सं०] फुरती से । जल्दी से । सहज में । उ०—अति लाघव उठाय धनु लीन्हा ।—तुलसी ।

लाघवी*-संज्ञा स्त्री० [सं० लाघव + ई (प्रत्य०)] फुर्त्ती । शीघ्रता ।

लाचार वि० [फ़ा०] जिसका कुछ वश न चलता हो । विवश । मजबूर ।

क्रि० वि० विवश होकर । मजबूर होकर ।

लाचारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लाचार होने का भाव । मजबूरी । विवशता ।

लाची-संज्ञा स्त्री० दे० "इलायची" ।

लाचीदाना-संज्ञा पुं० [हिं० इलायची + दाना] खाली चीनी की एक प्रकार की मिठाई जो छोटे छोटे गोल दानों के आकार की होती है । कभी कभी इसके अंदर सौंफ या इलायची का दाना भी भरा होता है । इलायची दाना ।

लाछन*-संज्ञा पुं० दे० "लांछन" ।

लाज-संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] लज्जा । शर्म । हया ।

क्रि० प्र०—आना ।—करना ।

मुहा०—लाज रखना = प्रतिष्ठा बचाना । आबरू खराब न होने देना ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) खस । उशीर । (२) पानी में भींगा हुआ चावल । (३) धान का लावा । खील ।

लाजना*†-क्रि० अ० [हिं० लाज + ना (प्रत्य०)] लज्जित होना । शरमाना । उ०—(क) ये अरुन अधर लखि लखि बिंबा-फल लाजै ।—प्रताप । (ख) जेहि तुरंग पर राम बिराजे । गति बिलोकि खगनायक लाजे ।—तुलसी ।

लाजपेया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माँड़ जो खोई या लावा उबा-लने से निकले । इसका व्यवहार रोगियों को पथ्य देने में होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लालभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का पकाया हुआ भात, जो रोगियों को पथ्य में दिया जाता है।

लाजवंत-वि० [हिं० लाज + वंत (प्रत्य०)] [स्त्री० लाजवंती] जिसे लज्जा हो। शर्मदार। हयादार।

लाजवंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लजालू] लजालू नाम का पौधा। छुई मुई।

लाजवर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध कीमती पत्थर जिसे संस्कृत में 'राजवर्तक' कहते हैं। यह जंगाली रंग का होता है और इसके ऊपर सुनहले छींटे होते हैं। यह वातज रोगों के लिये गुणकारी, मन को प्रसन्न करनेवाला, हृदय के लिये बलकारी और उन्माद आदि रोगों में उपकारी माना जाता है। आँखों में सुरमा लगाने के लिये इसकी सलाई भी बनती है, जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है। रावटी। (२) विलायती नील जो गंधक के मेल से बनता और बहुत बढ़िया होता है।

लाजवर्दी-वि० [फ़ा०] लाजवर्द के रंग का। हलका नीला।

लाजवाब-वि० [फ़ा०] (१) जिसके जोड़ का और कोई न हो। अनुपम। बेजोड़। (२) जो कुछ जवाब न दे सके। निरुत्तर। चुप। खामोश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लाजशक्तु-संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का सत्तू।

लाजहोम-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का होम जिसमें खोई या धान का लावा आहुति में दिया जाता था।

लाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चावल। (२) भूनकर फुलाया हुआ धान। खील। लावा। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा।—तुलसी।

लाज़िम-वि० [अ०] (१) जो अवश्य कर्त्तव्य हो। (२) उचित। मुनासिब। वाजिब।

लाज़िमी-वि० [अ० लाजिम + ई (प्रत्य०)] जो अवश्य कर्त्तव्य हो। जरूरी। आवश्यक।

लाट-संज्ञा पुं० [अं० लार्ड] किसी प्रांत या देश का सब से बड़ा शासक। गवर्नर।

संज्ञा पुं० [अं० लॉट] बहुत सी चीजों का वह विभाग या समूह जो एक ही साथ रखा, बेचा या नीलाम किया जाय।

यौ०—लाटबंदी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा ?] मोटा और ऊँचा खंभा। जैसे,—कुतुब साहब की लाट, तालाब के बीच में की लाट, कोल्हू के बीच की लाट आदि।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जहाँ अब भड़ौच, अहमदाबाद आदि नगर हैं। गुजरात का एक भाग। (२) इस देश के निवासी। (३) एक अनुप्रास जिसमें शब्द और अर्थ एक ही होते हैं, पर अन्वय में हेर फेर होने से वाक्यार्थ में भेद हो जाता है। (४) वह लंबा बाँध जो किसी मैदान के पानी के बहाव को रोकने के लिये बनाया जाता है।

लाटपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटा †-संज्ञा पुं० [देश०] (१) भूने हुए महुओं और तिलों को कूटकर बनाए हुए लड्डू। (२) भुना हुआ महुआ।

लाटानुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें शब्दों की पुनरुक्ति तो होती है, परंतु अन्वय में हेर फेर करने से तात्पर्य भिन्न हो जाता है। जैसे,—पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि। पीय निकट जाके, नहीं घाम चाँदनी ताहि।

लाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में चार प्रकार की रचनाओं में से एक प्रकार की रचना या रीति जिसमें वैदर्भी और पांचाली दोनों ही रीतियों का कुछ कुछ अनुसरण किया जाता है। इसमें छोटे छोटे पद और छोटे छोटे समास हुआ करते हैं।

लाटी†-संज्ञा स्त्री० [अनु० लट लट = गाढ़ा या चिपचिपा होना।] वह अवस्था जिसमें मुँह का थूक और होंठ सूख जाते हैं। उ०—सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] लाटिका रीति।

लाठ-संज्ञा पुं० दे० "लाट"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लाट"।

लाठी-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि] वह लंबी और गोल बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलने में सहारे के लिये अथवा मार-पीट आदि के लिये होता है। डंडा। लकड़ी।

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।—रखना।—लगाना।

मुहा०—लाठी चलना = लाठियों की मार पीट होना। लाठी चलाना = लाठी से मारना। लाठी से मारपीट करना। लाठी बाँधना = लाठी लिए रहना। दंड धारण करना।

लाड़-संज्ञा पुं० [सं० लालन] बच्चों का लालन। प्यार। दुलार।

क्रि० प्र०—करना।—लड़ाना।

यौ०—लाड़चाव।

लाड़लड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साँप जो प्रायः वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़लड़ैता-वि० [हिं० लाड़ + लड़ाना] जिसका बहुत अधिक लाड़ हो। प्यारा। दुलारा। उ०—तुम रानी वसुदेव गेहनी हौं गँवारि ब्रजवासी। पठै देहु मेरो लाड़ लड़ैतौ वारौं ऐसी हाँसी।—सूर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाडला-वि० [हिं० लाड़ + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० लाडली] जिसका लाड़ किया जाय । प्यारा । दुलारा ।

लाड़ा †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाड़] [स्त्री० लाड़ो] वर । दूल्हा ।

लाडू †-संज्ञा पुं० [हिं० लड्डू] (१) लड्डू । मोदक । (२) दक्षिणी नारंगी ।

लाढ़िया-संज्ञा पुं० [देश०] वह दलाल जो दूकानदार से मिला रहता है और ग्राहकों को धोखा देकर उसका माल बिकवाता है ।

लाढ़ियापन-संज्ञा पुं० [हिं० लाढ़िया + पन (प्रत्य०)] (१) लाढ़िया का काम । (२) धूर्त्तता । चालाकी । धोखेबाजी ।

लात-संज्ञा स्त्री० [?] (१) पैर । पाँव । पद । उ०—तेहिं अंगद कहँ लात उठाई । गहि पद पटक्यो भूमि भँवाई ।—तुलसी । (२) पैर से किया हुआ आघात या वार । पदाघात । पादप्रहार ।

मुहा०—लात खाना = (१) पैरों की ठोकर या मार सहना । (२) मार खाना । लात चलाना = लात से मारना । लात से आघात करना । लात जाना = गौ भैंस आदि का दूध देते समय दूहनेवाले को लात मारकर दूर हट जाना । लात मारना = तुच्छ समझकर छोड़ देना । त्याग देना । जैसे,—(क) हम ऐसी दौलत को लात मारते हैं । (ख) तुमने जान बूझकर रोजी को लात मारी है । लात मारकर खड़ा होना = बहुत अधिक रुग्णावस्था से, विशेषतः स्त्रियों का प्रसव के उपरांत, नीरोग होकर चलने फिरने के योग्य होना ।

लातर†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लतरी] पुराना जूता ।

लाद-संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] (१) किसी वस्तु को बैल या गाड़ी पर रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने का कार्य्य । लादने की क्रिया ।

यौ०—लाद फाँद = लादने की क्रिया ।

(२) मिट्टी का वह ढोंका जो पानी निकालने की ढेंकी के दूसरे ओर लगा रहता है ।

. (१) पेट । उदर (जिसमें अँतड़ी आदि भरी रहती है) ।

मुहा०—लाद निकलना = पेट का फूलकर आगे निकलना । तोंद निकलना ।

(२) आँत । अँतड़ी । जैसे,—उसने पेट में ऐसी छुरी मारी कि लाद निकल पड़ी ।

लादना-क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध = प्राप्त + ना (प्रत्य०)] (१) किसी चीज पर बहुत सी वस्तुएँ रखना । एक पर एक चीजें रखना । जैसे,—गाड़ी पर असबाब लादना । (२) गाड़ी या पशु को भार से युक्त करना । ढोने या ले जाने के लिये वस्तुओं को भरना । जैसे,—बैल लादना, गाड़ी लादना ।

यौ०—लादना फाँदना = लादना और रखना ।

(३) किसी के ऊपर किसी बात का भार रखना । जैसे,—तुम सब काम मुझ पर ही लादते चले जाते हो ।

संयो० क्रि०—देना ।

(४) कुश्ती लड़ते समय विपक्षी को अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना । (पहल०)

संयो० क्रि०—लेना ।

लादिया-संज्ञा पुं० [हिं० लादना + इया (प्रत्य०)] वह जो किसी चीज पर बोझ लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता हो ।

लादी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] (१) कपड़ों की वह गठरी जो धोबी गदहे पर लादता है । (२) वह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है ।

लाधना*†-क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध + ना (प्रत्य०)] प्राप्त करना । हासिल करना । पाना । उ०—(क) इन सम काहु न शिव अवराधे । काहु न इन समान फल लाधे ।—तुलसी । (ख) छिन छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधो ।—सूर ।

लानंग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अंगूर जो कमाऊँ और देहरादून में अधिकता से होता है । इससे अर्क निकाला जाता और एक प्रकार की शराब बनाई जाती है ।

लान-संज्ञा पुं० [अं० लॉन] हरी घास का बड़ा मैदान जिस पर गेंद आदि खेलते हैं ।

लान टेनिस-संज्ञा पुं० [अं०] गेंद का एक खेल जो छोटे से मैदान में खेला जाता है ।

लानत-संज्ञा स्त्री० [अ० लअ्नत] धिक्कार । फिटकार । भर्त्सना ।

लानती-संज्ञा पुं० [हिं० लानत + ई (प्रत्य०)] वह जो सदा लानत मलामत सुनने का अभ्यस्त हो । सदा फिटकार सुननेवाला ।

लाना-क्रि० अ० [हिं० लेना + आना, ले आना] (१) कोई चीज उठाकर या अपने साथ लेकर आना । कोई चीज उस जगह पर ले जाना, जहाँ उसे ग्रहण करनेवाला हो; अथवा जहाँ ले जानेवाला रहता हो । ले आना । जैसे,—(क) जरा वह किताब तो लाना । (ख) आप जब आते हैं, तब कुछ न कुछ लाते हैं । (ग) मैं आज बाजार से बहुत से कपड़े लाया हूँ । (घ) उनकी स्त्री मैके से बहुत सा धन लाई है ।

संयो० क्रि०—देना ।

(२) प्रत्यक्ष करना । उपस्थित करना । सामने रखना । जैसे,—(क) अब आप यह नया रंग लाए हैं । (ख) वह जब आता है, तब नया रूप लाता है । (ग) अब वह उन पर मुकदमा लावेगा । (३) उत्पन्न करना । पैदा करना । देना या सामने रखना । जैसे,—इस साल ये पेड़ बहुत फल लाए हैं ।

क्रि० स० [हिं० लाय = आग + ना (प्रत्य०)] आग लगाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलाना। उ०—(क) कंत बीसलोचन बिलोकिये कुमत फल, ख्याल लंक लाई कपि राँड़ की सी झोपड़ी।—तुलसी। (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यौं लाय लंक। निपट निशंक पर पुर गलबक भो।—तुलसी।

†* क्रि० स० [हिं० लगाना] लगाना। उ०—(क) राम कुचरचा करहिं सब सीतहिं लाइ कलंक।—तुलसी। (ख) लै परजंक निसंक नवेली को लाय लगे गहि गूमन।—शंभु।

मुहा०—लाना लगाना या लाने लगना = ऋण के बदले में कोई पदार्थ दे देना या ले लेना।

लाने*†-अव्य० [हिं० लाना = लगाना] वास्ते। लिये। (बुंदेल०) उ०—तू अलबेली अकेली डरै किन, क्यौं डरौं मेरी सहाय के लाने। है सखि संग मनोभव सो भट कान लौं बान सरासन ताने।—पद्माकर।

लापता-वि० [अ० ला = बिना + हिं० पता] (१) जिसका पता न लगे। जो कहीं मिल न रहा हो। खोया हुआ। (२) गुप्त। गायब।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

लापरवा-वि० [अ० ला + फ़ा० परवाह] (१) जिसे किसी बात की परवा न हो। बेफ़िक्र। (२) जो सावधानी से न रहता हो। असावधान।

लापरवाह-वि० दे० "लापरवा"।

लापरवाही-संज्ञा स्त्री० [अ० ला + फ़ा० परवाह] (१) लापरवा होने का भाव। बेफ़िक्री। (२) असावधानी। प्रमाद।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—होना।

लापसी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लपसी"। उ०—लुचुई ललित लापसी सोहै। स्वादु सुबास सहज मन मोहै।—सूर।

लापु-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रवंती। रुदंती।

लाबर*†-वि० दे० "लबार"। उ०—कालिह के लाबर बीस बिसे परौं बीस बिसे व्रत ते न टरौं जू।—केशव।

लाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलना। प्राप्ति। लब्धि। (२) फायदा। मुनाफ़ा। नफा। (३) उपकार। भलाई।

यौ०—लाभकारी। लाभदायक।

लाभकारक-वि० [सं०] जिससे लाभ होता हो। फलदायक। लाभजनक। फायदेमंद।

लाभकारी-वि० [सं० लाभकारिन्] फायदा करनेवाला। गुण करनेवाला। फायदेमंद।

लाभदायक-वि० [सं०] जिससे लाभ हो। गुणकारी। फायदेमंद।

लाभमद-संज्ञा पुं० [सं०] वह मद जिससे मनुष्य अपने आपको लाभवाला और दूसरे को हीनपुण्य समझे। (जैन)

लाभस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली में लग्न से ग्यारहवाँ स्थान, जिसे देखकर यह निश्चय किया जाता है कि धन-संपत्ति, संतान, आयु और विद्या आदि कैसी रहेगी।

लाभांतराय-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंतराय कर्म जिसके उदय होने से मनुष्य के लाभ में विघ्न पड़ता है। (जैन)

लाम-संज्ञा पुं० [फ़ा० लाम] (१) सेना। फौज।

मुहा०—लाम बाँधना = चढ़ाई के लिये सेना तैयार करना।

(२) बहुत से लोगों का समूह।

मुहा०—लाम बाँधना = (१) बहुत से लोगों को एकत्र करना। (२) बहुत सा सामान जमा करना।

† क्रि० वि० [सं० लंब] फ़ासले पर। दूर।

लामज-संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] एक प्रकार का तृण जो संयुक्त प्रदेश, पंजाब और सिंध में प्रायः बारहो महीने पाया जाता है। यह खस की तरह का और कुछ पीले रंग का होता है; इसलिये इसे पीलावाला भी कहते हैं। इसकी जड़ के पास का भाग मोटा होता है और उस पर रोएँ होते हैं। इसका डंठल सीधा होता है, जिस पर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। वैद्यक में इसे उत्तेजक, आमवात में पसीना जानेवाला, रुधिर को साफ करनेवाला, अजीर्ण, खाँसी आदि दूर करनेवाला और विशूचिका तथा ज्वर में लाभकारी माना जाता है।

लामज्जक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लामज नामक तृण। वि० दे० "लामज"। (२) खस। उशीर।

लामय-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर भूमि में पाई जाती है।

लामा-संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत या मंगोलिया के बौद्धों का धर्म्माचार्य, जो अनेक अंशों में उनका राजनीतिक शासक भी होता है। ऐसा धर्म्माचार्य्य सदा साधु और विरक्त हुआ करता है और मठों में रहता है।

संज्ञा पुं० [पेरू देश की भाषा] घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु जो ऊँट की तरह का होता है। आकार में यह ऊँट से कुछ छोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता है। यह बहुत चपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है, तब तक पानी की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उँगलियाँ अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उँगली में एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोएँ बहुत मुलायम होते हैं और इसकी खाल का चरसा बहुत अच्छा होता है; इसी लिये कुत्तों की सहायता से इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है, तब यह उस पर थूक देता है, जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशा में इसे ग्वाना और पालतू दशा में लामा कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० दे० "लंबा"। उ०—(क) ऊधो हरि काहे के अंतर्यामी। अजहुँ न आइ मिलै इहि औसर अवधि बतावत लामी।—सूर। (ख) लामी लूम लसत लपेटि पटकत भट देखो देखो लखन लरनि हनुमान की।-तुलसी।

लामी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फल जो प्रायः बालिश्त डेढ़ बालिश्त लंबा होता है और दिल्ली तथा राजपूताने की ओर पाया जाता है। इसकी तरकारी बनाई जाती है।

लामें‡-क्रि० वि० [हिं० लाम = दूर] दूर। अंतर पर। फ़ासले पर। उ०—बूटी के तार में मिललऽ कि तोहें ले गैली। लामें लामें जे बहुत सान बुझावत बाटऽ।—तेग अली।

लाय॥-संज्ञा स्त्री० [सं० अलात, प्रा० अलाय] (१) लपट। ज्वाला। (२) आग। अग्नि। उ०—कबीर चित चंचल किया चहुँ दिसि लागी लाय। हरि सुमिरन हाथें घड़ा लीजे बेगि बुझाय।—कबीर।

लायक-वि० [अ०] (१) उचित। ठीक। वाजिब। (२) उपयुक्त। मुनासिब। जैसे,—लड़के के लायक टोपी चाहिए। उ०—देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।—तुलसी। (३) सुयोग्य। गुणवान्। सब बातों में अच्छा। जैसे,—(क) उनके घर के सभी लड़के बहुत लायक हैं। (ख) अब तुम सयाने हुए; कुछ लायक बनो। उ०—सो हम तो सिर बैठन लायक श्रेष्ठ सदा।—गिरधर। (४) समर्थ। सामर्थ्यवान्। उ०—(क) सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक गुनग्राम को।—तुलसी। (ख) बहुनायक हौ सब लायक हौ सब प्यारिन के रस को लहिये।—रघुनाथ।

लायकी-संज्ञा स्त्री० [अ० लायक + ई (प्रत्य०)] (१) लायक होने का भाव या धर्म्म। (२) सुयोग्यता। काबिलीयत। जैसे,—यह आपकी लायकी है, जो आप ऐसा कहते हैं।

लायची-संज्ञा स्त्री० दे० "इलायची"।

लायन†-संज्ञा पुं० [हिं० लगाना = बदले में देना] वह वस्तु जो नगद रुपए लेकर उसके बदले में किसी के पास रखी या उसे दी जाय। बेची या रेहन रखी हुई चीज।

लायल-वि० [अं०] राजभक्त।

लायलटी-संज्ञा स्त्री० [अं०] राजभक्ति।

लार-संज्ञा स्त्री० [सं० लाला] (१) वह पतला लसदार थूक जो कोई बहुत कड़ुई चीज खाने या मुँह में कोई दवा आदि लगाने पर तार के रूप में निकलता है।

मुहा०—मुँह से लार टपकना = किसी चीज को देखकर उसके पाने की परम लालसा होना। मुँह में पानी भर आना।

(२) कतार। पंक्ति। (३) लासा। लुआब। उ०—सो मुख चूमनि महरि यशोदा दूध लार लपटानी हो।—सूर।

क्रि० वि० [? मि० मार० लैर = पीछे] साथ। पीछे। उ०—(क) सत्ती जरि कोइला भई मूये मरे की लार। जउँ वह जरती राम सों साँचे सँग भरतार।—दादू। (ख) अंधे अंधा मिल चले दादू बाँधि कतार। कूप पड़े हम देखताँ अंधे अंधा लार।—दादू। (ग) जो निर्गुण सुमिरन करै दिन में सौ सौ बार। नगर नायका सत करै जरै कौन की लार।—कबीर। (घ) जन्म जन्म के दूत तिरोवन कोनहिं लार लगाए।—सूर।

मुहा०—लार लगाना = फँसाना। बझाना। उ०—षट दरसन पाखंड न्यावने भरमि पर्‌यो संसार। बेद पुरान सबै मिलि गावैं कर्म लगायो लार।—कबीर।

लार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) परमेश्वर। ईश्वर। (२) मालिक। स्वामी। (३) भूम्यधिकारी। जमींदार। (४) इंगलैंड के बड़े बड़े जमींदारों और रईसों आदि को मिलनेवाली कतिपय बड़ी उपाधियों का सूचक शब्द, जो उनके नाम के पहले लगाया जाता है। जैसे,—लार्ड कर्जन, लार्ड रीडिंग।

लाल-संज्ञा पुं० [सं० लालक] (१) छोटा और प्रिय बालक। प्यारा बच्चा। (२) बेटा। पुत्र। लड़का। उ०—(क) जसुमति माय लाल अपने को शुभ दिन डोल झुलायो। फगुवा दियो सकल गोपिन को भयो सबन मन भायो।—सूर। (ख) केहिके अब मैं शरणै जावौं। बोलौ लाल बहुत दुख पावौं।—विश्राम। (३) प्रिय व्यक्ति। प्यारा आदमी। उ०—(क) आजु यारसों बोलि चालि हँसि खेलि लेहु लाल काल्हि ऐसी ग्वारि लाउँ काम की कुमारी सी।—केशव। (ख) बरनत कवि जोहै मुग्धा के भेदन में ललिता ललित सों प्रघट लाल लखि लेहु।—रघुनाथ। (ग) देत जताये प्रगट जो जावक लागौ भाल। नव नागरि के नेह सों भले बने हौ लाल।—रसनिधि। (घ) मेरेई उर गड़ि गये तेरेई दृग लाल। जनि पतियाउ लखौ इन्हैं दरपन लैकै लाल।—रसनिधि।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः कविता और बोलचाल में किसी प्रिय व्यक्ति के लिये संबोधन के रूप में होता है।

(४) श्रीकृष्णचंद्र का एक नाम। उ०—सुमन कुंज बिहरत सदा दै गलबाँही माल। बंदौं चरन सरोज नित जुगुल लाडिली लाल।—मन्नालाल।

संज्ञा पुं० [सं० लालन] दुलार। लाड़। प्यार। उ०—जो वन सायर मुञ्झते रसिया लाल कराय। अब कबीर पाँजी परे पंथी आवहिं जाय।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं० लाला] पतला थूक जो प्रायः बच्चों और वृद्धों के मुँह से बहा करता है। लाला। लार।

॥† संज्ञा स्त्री० [सं० लालसा] लालसा। इच्छा। अभिलाषा। चाह। उ०—(क) सुभ्र कलाई अति बनी सुभ्रजंघ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गज चाल। सोरह श्रृंगार बरन के करहिं देवता लाल।—जायसी। (ख) सुर नर गंधर्व लाल कराहीं। उलटे चलहिं स्वर्ग कहँ जाहीं।—जायसी।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] मानिक या माणिक्य नाक का रत्न। वि० दे० "मानिक"। उ०—(क) कंचन के खंभ मयारि मरुवाडाँडी खचि हीरा बिच लाल प्रबाल।—सूर। (ख) यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनि के भाल को।—केशव। (ग) कुंदन सी यह बाल कौं हीरा लाल लगाइ। रतन जटित की दुति तबै लीला दृग सरसाइ।—रसनिधि। (घ) नख नग जाल लाल अंगुलि प्रबाल माल नूपुर मराल ये अनूप रव नाँउड़े।—देव।

मुहा०—लाल उगलना = बहुत अच्छी और प्यारी बातें कहना। मीठी और सुंदर बातें कहना।

वि० (१) मानिक, बीरबहूटी या लहू आदि के रंग का। रक्त वर्ण। सुर्ख। उ०—(क) लोचन लाल विसाल चारु मंदार माल गर।—गोपालचंद्र। (ख) फूल फूले हैं क्या ही रँगीले। कोई ऊजरो कोई लाल पीले।—संगीत शाकुंतल। (ग) कौने दियो यह भाल में लाल गुलाब को फूल कहौ कहँ पायौ।—रामाश्वमेध।

यौ०—लाल अंगारा या लाल भभूका = जो जलने आदि के कारण अंगारों की तरह लाल रंग का हो गया हो। ताप के कारण बहुत अधिक लाल। लाल बिंब = बहुत अधिक लाल।

(२) जिसका चेहरा क्रोध के मारे तमतमा गया हो। जिसके चेहरे से गुस्सा मालूम होता हो। बहुत अधिक क्रुद्ध। जैसे,—बातों बातों में लाल क्यों होते हो?

मुहा०—लाल आँखें निकालना या दिखाना = क्रोध से आँखें लाल करना। गुस्से से देखना। लाल पड़ना या होना = क्रुद्ध होना। नाराज होना। उ०—दशरथ लाल ह्वै कराल कछु लाल परि, भाषत भयोई नेकु रावणै न गनहौं।—पद्माकर। लाल पीले होना = गुस्सा होना। क्रोध करना। उ०—हैं हैं! एक बारगी इतने लाल पीले हो गए।—हरिश्चंद्र। लाल हो जाना = क्रोध में भर जाना। गुस्से होना। लाल होना = क्रुद्ध होना। नाराज होना।

(३) (चौसर के खेल में गोटी) जो चारो ओर से घूमकर बिलकुल बीच के खाने में पहुँच गई हो, और जिसके लिये कोई चाल बाकी न रह गई हो। (४) (चौसर के खेल में खेलाड़ी) जिसकी सब गोटियाँ बीच के घर में पहुँच गई हों और जिसे कोई चाल चलना बाकी न रह गया हो। ऐसा खिलाड़ी जीता हुआ समझा जाता है। (५) (खेलाड़ी) जो खेल में औरों से पहले जीत गया हो।

मुहा०—लाल होना = बहुत अधिक संपत्ति पाकर संपन्न होना। निहाल होना। जैसे,—उस मकान में गड़ा हुआ खजाना पाकर वह लाल हो गया।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रसिद्ध छोटी चिड़िया जिसका शरीर कुछ भूरापन लिए लाल रंग का होता है और जिस पर छोटी छोटी सफेद बुँदकियाँ पड़ी रहती हैं। यह बहुत कोमल तथा चंचल होता है और इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे प्रायः पालते हैं। इसकी मादा को "मुनियाँ" कहते हैं। उ०—(क) ते अपने अपने मिलि निकसी भाँति भली। मनु लाल मुनिन की पाँति पिंजर दूरि चली।—सूर। (ख) तूती लाल कर करे सारस क्षगर तोते तीतर तुरमती बटेर गहियत हैं।—रघुनाथ। (ग) लालन को पिंजरा कर लाल लिए प्रति कुंजन कुंजन ज्वै रहे।—जसवंत। (२) चौपायों के मुँह का एक रोग।

लाल अंबारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + अंबारी] एक प्रकार का पटुआ जिसके बीज दवा में काम आते हैं।

लाल अगिन-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + अगिन] प्रायः एक बालिश्त लंबा भूरे रंग का एक प्रकार का पक्षी जिसका गला नीचे की ओर सफेद होता है। यह मध्य भारत तथा उड़ीसा में अधिकता से पाया जाता है; और घास फूस से प्याले के आकार का घोंसला बनाकर उसमें चार तक अंडे देता है।

लाल आलू-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + आलू] (१) रतालू। (२) अरुई।

लाल इलायची-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + इलायची] बड़ी इलायची। वि० दे० "इलायची"।

लाल कचू-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + कचू] गजकर्ण आलू। बंडा।

लाल कलमी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + कलमी] चाँदनी या गुल चाँदनी नाम का पौधा या उसका फूल।

लालकीन-संज्ञा पुं० दे० "नानकीन"।

लाल घास-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + घास] गोमूत्र नामक तृण।

लाल चंदन-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चंदन] एक प्रकार का चंदन जिसका पेड़ कद में छोटा होता है और जो मैसूर प्रांत तथा अरकाट में बहुतायत से पाता जाता है। इसके ऊपर की लकड़ी सफेद और हीर की लकड़ी कुछ कालापन लिए लाल होती है। इसे घिसने से बहुत ही लाल रंग और अच्छी सुगंध निकलती है। यह भी चंदन की तरह माथे पर लगाया जाता है। रक्त-चंदन। देवी चंदन। वि० दे० "चंदन"।

लालच-संज्ञा पुं० [सं० लालसा] [वि० लालची] (१) कोई पदार्थ, विशेषतः धन आदि प्राप्त करने की इतनी अधिक और ऐसी कामना जो कुछ भद्दी और बेढंगी हो। कोई चीज पाने की बहुत बुरी तरह इच्छा करना। लोभ। लोलुपता। जैसे,—हर काम में बहुत ज्यादा लालच करना ठीक नहीं है।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—छाना।—पकड़ना।—बढ़ना।—भरना।—होना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहा०—लालच देना = किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। जैसे,—उसने लड़के को मिठाई का लालच देकर उसके सब गहने ले लिए।

लाल चकवी-संज्ञा पुं० [सं० लालिक] भैंसा। (डिं०)

लालचहा-वि० [हिं० लालच + हा (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लालची। लोभी। उ०—घुघुरून को सोर सुने सकुचै पिय होत ज्यौं ज्यौं अति लालचहा।—मन्नालाल।

लालचाँच-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चोंच] शुक। तोता। (डिं०)

लालची-वि० [हिं० लालच + ई (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लोभी।

लाल चीता-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीता] लाल फूल का चित्रक या चीता। वि० दे० "चीता"।

लाल चीनी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीनी] एक प्रकार का कबूतर, जिसका सारा शरीर सफेद और सिर पर लाल छिटकियाँ होती हैं।

लालटेन-संज्ञा स्त्री० [अं० लैंटर्न] किसी प्रकार का वह खाना आदि जिसमें तेल का खजाना और जलाने के लिये बत्ती लगी रहती है; और जिसके चारों ओर, तेज हवा और पानी आदि से बचाने के लिये शीशा या इसी प्रकार का और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाश के लिये ऐसे स्थानों पर होता है, जहाँ या तो प्रकाश को प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता होती है और या ऐसी जगह स्थायी रूप से रखने के लिये होता है, जहाँ चारों ओर से हवा आया करती हो। कंडील।

लालड़ी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल (रत्न) + ड़ी (प्रत्य०)] लाल रंग का एक प्रकार का नगीना जो प्रायः नथों और बालियों आदि में मोती के दोनों ओर लगाया जाता है।

लाल दाना-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + दाना] लाल रंग का पोस्ते का दाना। लाल खसखस। (पूरब)

लालन-संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत स्नेह करना। प्रेमपूर्वक बालकों का आदर करना। लाड़। प्यार।

यौ०—लालन पालन।

संज्ञा पुं० [हिं० लाला] (१) प्रिय पुत्र। प्यारा बच्चा। उ०—भूख लगी ह्वै है लालन को लावो वेगि बुलाई।—सूर। (२) कुमार। बालक। उ०—भाल के लाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीन्हे।—केशव। वि० दे० "लाल"।

क्रि० अ० लाड़ करना। प्यार करना। उ०—लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] चिरौंजी। पियाल।

लालना-क्रि० स० [सं० लालन] दुलार करना। लाड़ करना। प्यार करना। उ०—(क) चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं।--तुलसी। (ख) कल्पबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह ललित प्रतिपाली।--तुलसी।

लालनीय-वि० [सं०] लालन करने के योग्य। दुलार या प्यार करने के लायक।

लाल पानी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पानी] शराब। मद्य।

लाल पिलका-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पिलका] लाल रंग का एक प्रकार का कबूतर जिसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लाल पेठा-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पेठा] कुम्हड़ा।

लाल बुझक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + बूझना] बातों का अटकलपच्चू मतलब लगानेवाला। वह जो कोई बात जानता तो न हो, पर यों ही अंदाज लड़ाता हो। (व्यंग्य)

लाल बेग-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + तु० बेग] (१) लाल रंग का एक प्रकार का परदार कीड़ा। (२) मुसलमान भंगियों और मेहतरों के एक कल्पित पीर का नाम।

लालबेगी-संज्ञा पुं० [हिं० लालबेग + ई (प्रत्य०)] वह जो लालबेग का अनुयायी हो। भंगी। मेहतर।

लाल भरेंड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + भरेंड़ा ?] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो भारत के गरम प्रांतों में उत्पन्न होता है। इसके बीजों में से तेल निकलता है, जो गठिया के रोग में काम आता है। इसको उँदरबीबी भी कहते हैं।

लालमन-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मणि] (१) श्रीकृष्ण। उ०—कीन्हे चरित लालमन जोई। सुमिरि सुमिरि अब आवत रोई।—विश्राम। (२) एक प्रकार का तोता जिसका सारा शरीर लाल, डैने हरे, चोंच गुलाबी और दुम काली होती है।

लाल मिर्च-संज्ञा स्त्री० दे० "मिर्च" (२)।

लालमी-संज्ञा पुं० [?] खरबूजा।

लालमुँहा-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मुँह] एक प्रकार का निनावाँ जिसमें मुँह के अंदर छाले पड़ जाते हैं और उसका रंग लाल हो जाता है।

लाल मुरगा-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मुरगा] (१) एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है। यह काश्मीर से आसाम तक पाया जाता है। यह दो फुट से अधिक लंबा होता है। (२) मयूरशिखा। (३) गुलमखमली नामक पौधा।

लाल मूली-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + मूली] शलजम। सलगम।

लालरी-संज्ञा स्त्री० दे० "लालड़ी"। उ०—छवि होती भली गजमोती के बीच जौ होतीं बड़ी बड़ी लालरियाँ।—रसकुसुमाकर।

लाल लाडू-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + लाडू = लड्डू] दक्षिण भारत में होनेवाली एक प्रकार की नारंगी।

लाल शक्कर-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + शक्कर] बिना साफ की हुई चीनी। खाँड़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल सफरी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सफरी ?] अमरूद ।

लाल समुद्र-संज्ञा पुं० दे० "लाल सागर" ।

लालसर-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सर] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और सिर लाल रंग का होता है, छाती चितकबरी और पीठ काली होती है और डैना सुनहरे रंग का होता है ।

लालसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक उत्कंठा या अभिलाषा । बहुत अधिक इच्छा या चाह । लिप्सा । उ०—एक लालसा बड़ि उर माँहीं । सुगम अगम सुजात कहिं नाँहीं ।—तुलसी। (२) उत्सुकता । (३) वह अभिलाषा जो गर्भिणी स्त्री के मन में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है । दोहद । (४) किसी से कुछ माँगना या चाहना ।

वि० लोल । चंचल ।

लाल साग-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + साग] मरसा नाम का साग ।

लाल सागर-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सागर] भारतीय महासागर का वह अंश जो अरब और अफ्रिका के मध्य में पड़ता है और जो बाब एल-मंदब से स्वेज तक फैला हुआ है । यह प्रायः १४०० मील लंबा है, और इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई २३० मील है । इसके किनारों पर बहुत से छोटे छोटे टापू और प्रवाल द्वीप हैं, जिनके कारण जहाजों को इसमें से होकर आने जाने में बहुत कठिनता होती है । पहले यह भूमध्यसागर से अलग था; पर स्वेज की नहर खुद जाने से यह उससे मिल गया है । इसके पानी में कुछ ललाई झलकती है; इसी से इसे लाल सागर कहते हैं ।

लालसिखी †-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + शिखा] अरुणचूड़ । मुर्गा । उ०—प्रात उठी रतिमान भट्ट धुनि लालसिखी की हिये खटकी है ।—मन्नालाल ।

लालसिरा-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + सिरा = सिर] एक प्रकार की बत्तख़ जिसका सिर लाल होता है ।

लालसीक्ष-वि० [सं० लालसा + ई (प्रत्य०)] अभिलाषा करनेवाला । इच्छा करनेवाला । उत्सुक । उ०—सो हरि के पद के हम लालसी माया कि है न जहाँ प्रभुताई ।—रघुराज ।

लालसीक-संज्ञा पुं० [सं०] गिलगिला । पिच्छिल ।

लाला-संज्ञा पुं० [सं० लालक] (१) एक प्रकार का संबोधन जिसका व्यवहार किसी का नाम लेते समय उसके प्रति आदर दिखलाने के लिये किया जाता है । महाशय । साहब । जैसे,—लाला गुरदयाल आज यहाँ आनेवाले हैं । (पश्चिम)

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पश्चिम में खत्रियों, और बनियों आदि के लिये अधिकता से होता है ।

मुहा०—लाला भइया करना = किसी को आदरपूर्वक संबोधन करना । इज्जत के साथ बातचीत करना ।

(२) कायस्थ जाति या कायस्थों का सूचक एक शब्द ।

यौ०—लाला भाई = कायस्थ ।

(३) छोटे प्रिय बच्चे के लिये संबोधन । प्रिय व्यक्ति; विशेषतः बालक । उ०—आनँद की निधि मुख लाला को, ताहि निरखि निसिवासर सो तो छबि क्योंहूँ न जाति बखानी ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] मुँह से निकलनेवाली लार । थूक ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] पोस्त का लाल रंग का फूल जिसमें प्रायः काली खसखस पैदा होती है । गुले लाला । उ०—कोऊ कहै गुल लाला गुलाल की कोऊ कहै रँग रोरी के भाव की ।—द्विज ।

वि० [हिं० लाल] लाल रंग का । वि० दे० "लाल" । उ०—(क) पारथ भयो विलोचन लाला । लखि अनर्थक धर्म्म भुवाला ।—सबल । (ख) केकी के काकी कका कोक कीक का कोक। लोल लालि कोलै लली लाला लीला लोल ।—केशव ।

लाला प्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मुँह की लार की तरह तार बँधकर पेशाब होता है ।

लालाभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम । कहते हैं कि जो लोग बिना देवताओं आदि को भोग लगाए अथवा बिना अतिथियों को भोजन कराए आप भोजन कर लेते हैं, वे इसी नरक में जाते हैं ।

लालमेह-संज्ञा पुं० दे० "लालाप्रमेह" ।

लालायित-वि० [सं०] (१) जिसके मुँह में बहुत अधिक लालच के कारण पानी भर आया हो । ललचाया हुआ । (२) जिसका बहुत अधिक लालन किया गया हो । दुलारा ।

लालाविष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके मुँह की लार में विष हो । जैसे,—मकड़ी आदि ।

लालासव-संज्ञा स्त्री० [सं० लालास्रव] मकड़ी । (डिं०)

लालास्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुँह से लार बहना । (२) मकड़ी ।

लालास्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुँह से थूक या लार गिरना । (२) मकड़ी का जाला ।

लालिक-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस ।

लालित-वि० [सं०] (१) जिसका लाड़न किया गया हो । दुलारा हुआ । लड़ाया हुआ । प्रिय । प्यारा । (२) जो पाला पोसा गया हो ।

लालित्य-संज्ञा पुं० [सं०] ललित होने का भाव । सौंदर्य्य । सुंदरता । सरसता । मनोहरता । जैसे,—आपकी भाषा में बहुत अधिक लालित्य होता है ।

लालिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाली । ललाई । अरुणता । सुर्खी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + ई (प्रत्य०)] (१) लाल होने का भाव। अरुणता। ललाई। लालपन। सुर्खी। (२) इज्जत। पत। आबरू। जैसे,—(क) आज आप की ही कृपा से उनकी लाली रह गई। (ख) मेरी लाली तुम्हारे हाथ है।

विशेष—कभी कभी खाली "लाली" और कभी कभी "मुँह की लाली" भी बोलते हैं।

(३) पीसी हुई ईंटें जो चूने में मिलाई जाती हैं। सुरखी।

संज्ञा स्त्री० आसाम की एक नदी का नाम।

लालील-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

लालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले में पहनने का एक प्रकार का हार।

लाले-संज्ञा पुं० [सं० लाला या लालायित] लालसा। अभिलाषा। इच्छा। अरमान। जैसे,—हमें तो आपके देखने के ही लाले हैं।

मुहा०—किसी चीज के लाले पड़ना = किसी चीज के देखने या पाने के लिये बहुत अधिक तरसना। किसी चीज के अप्राप्य या पहुँच के बाहर होने के कारण बहुत अधिक लालायित होना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में होता है।

लाल्य-वि० [सं०] लालन करने योग्य। दुलार करने लायक।

लाल्हा†-संज्ञा पुं० [हिं० लाल साग = मरसा] मरसा नामक साग। उ०—चौलाई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआनि निचोई।—सूर।

लाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवा नामक पक्षी। वि० दे० "लवा"। (२) लौंग।

*†संज्ञा स्त्री० [हिं० लाय = आग] अग्नि। आग। आँच।

संज्ञा स्त्री० [देश० या सं० रज्जु] (१) वह मोटा रस्सा जिससे चरसा खींचते या इसी प्रकार का और कोई काम करते हैं। रस्सा। लास।

मुहा०—लाव चलाना = चरसे के द्वारा कूएँ से पानी खींचकर खेत सींचना।

(२) रस्सी। डोरी। रज्जु। उ०—फिरि फिरि चितउत ही रहतु टुटी लाज की लाव। अंग अंग छबि झौर में भयौ भौर की नाव।—बिहारी। (३) उतनी भूमि जितनी एक दिन में एक चरसे से सींची जा सके।

संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] वह ऋण जो किसी की चीज अपने पास बंधक रखकर उसे दिया जाय।

मुहा०—लाव उठाना = (१) चीज बंधक रखकर रुपया उधार देना। (२) किसानों को उनके कष्ट के समय ऋण स्वरूप धन देना। तकावी बाँटना।

लावक-संज्ञा पुं० [सं०] लवा पक्षी। उ०—तीतर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) चावल की जाड़े की फसिल। (२) चरसा। (३) मोट खींचने में बैलों के एक बार जाने और आने का काल।

लावज-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

लावण-संज्ञा पुं० [सं०] सुँघनी। नस्य।

वि० (१) जिसका संस्कार लवण द्वारा हुआ हो। (२) लवण का। नमकीन।

लावणा-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

लावणिक-वि० [सं०] (१) जिसका लवण द्वारा संस्कार हुआ हो। (२) लवण संबंधी। नमक का।

संज्ञा पुं० (१) वह जो नमक बेचता हो। (२) वह पात्र जिसमें नमक रखा जाता है। नमकदान।

लावण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवण का भाव या धर्म्म। नमकपन। (२) अत्यंत सुंदरता। नमक। लोनाई। उ०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन विशाल। नीलकंठ लावण्यनिधि सोह बालविधु भाल।—तुलसी। (३) शील की उत्तमता। स्वभाव का अच्छापन।

लावण्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की बूटी।

लावदार-वि० [हिं० लाव = आग + फ़ा० दार (प्रत्य०)] (तोप) जो छोड़ी जाने या रंजक देने के लिये तैयार हो। उ०—लावदार रक्खो किएँ सबै अराबौ एहु। ज्यौं हरीफ आवै नजरि तबै धड़ाधड़ देहु।—सूदन।

संज्ञा पुं० तोप में बत्ती लगानेवाला। तोप छोड़नेवाला। तोपची। उ०—किते जजालदार आवदार लावदार हौ। किते निसानवान सान के भरे तयार हौ।—सूदन।

लावनता*-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य + ता (प्रत्य०)] बहुत अधिक सौंदर्य। सुंदरता। खूबसूरती। नमक। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनता दसचारि नवतीनि एकीस सबै।—तुलसी।

लावना*†-क्रि० स० [हिं० लाना] लाना। उ०—(क) विप्र कह्यो धन लावनो करन सुता को ब्याह। यहि थल चोर चुराय लिय भयो भोर दुख दाह।—रघुराज। (ख) जाहि अधम पापी हम चीन्हा। तेहि तब ढिग लावन मन कीन्हा।—विश्राम। (ग) कीन्हेसि मधु लावइ लेइ माखी। कीन्हेसि भँवर पंखि अरु पाँखी।—जायसी।

क्रि० स० [हिं० लगाना] (१) लगाना। स्पर्श कराना। उ०—(क) लावत मैन सुगंध लख्यौ सबसौरभ की तन देत दसीहै।—रघुनाथ। (ख) तुलसिदास कह रूप देखावहु। मेरे शीश पानि निज लावहु।—रघुराज। (ग) मेरे अंग सहत सुगंध सो सही है सदा लावन न देत और ऐसे हैं सुधर्मी।—रघुनाथ। (घ) सो मोहि लेइ मँगावई लावइ भूख पिआस। जउँ न होत अस बइरी केहु काहू कर आस।—जायसी। (२) जलाना। आग लगाना। उ०—बहुरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंद्रजित ब्रह्मअस्त्रकृत हनुमत बंधन गायो। सभागमन रावण समुझावन लावन लंक गनायो।—रघुराज।

लावनिॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य] सौंदर्य। लावण्य। सुंदरता। नमक। उ०--(क) कोटि काम लावनि बिहारी जा देखत सब दुख नसंत।--स्वामी हरिदास। (ख) सुंदर मुख की बलि बलि जाऊँ। पावनि सिधि गुणनिधि शोभा निधि निरखि निरखि जीवत सब गाऊँ।—सूर।

संज्ञा स्त्री० दे० "लावनी"।

लावनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गाने का एक प्रकार का छंद। (२) इस छंद का एक प्रकार जो प्रायः चंग बजाकर गाया जाता है। इसे ख्याल भी कहते हैं। (३) इस प्रकार का कोई गीत।

लावबाली-संज्ञा पुं० [अ० लाउबाली] (१) वह जिसे किसी प्रकार की चिंता आदि न हो। लापरवाह। बेफिक्र। (२) वह जिसके विचार, धार्मिक दृष्टि से, बहुत ही स्वतंत्र और उच्छृंखल हों। (३) वह जो सदा निकम्मा घूमा करता हो। आवारा।

संज्ञा स्त्री० लावबाली होने का भाव। लावबालीपन।

लावल्द--वि० [फ़ा०] जिसके बालबच्चा न हो। निःसंतान।

लावल्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लावल्द या निःसंतान होने का भाव या अवस्था।

लावा-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी। वि० दे० "लवा"। उ०--गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।--तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं लाजा] भूना हुआ धान, ज्वार, बाजरा या रामदाना आदि जो भुनने के कारण फूलकर फूट जाता है और जिसके अंदर से सफेद गूदा बाहर निकल आता है। यह बहुत हलका और पथ्य समझा जाता है और प्रायः रोगियों को दिया जाता है। खील। लाई। फुल्ला।

क्रि० प्र०—फूटना। भूनना।

यौ०—लावा परछन।

संज्ञा पुं० [अं०] राख, पत्थर और धातु आदि मिला हुआ वह द्रव पदार्थ जो प्रायः ज्वालामुखी पर्वतों के मुख से विस्फोट होने पर निकलता है।

लावानक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

लावाणक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम जो मगध के पास था।

लावा परछन-संज्ञा पुं० [हिं० लावा + परछना] विवाह के समय की एक रीति। इसमें वर के आगे कन्या खड़ी की जाती है और उसके हाथ में एक डलिया दी जाती है। कन्या का भाई उसी डलिया में धान का लावा डालता है। हवन और सतपदी इसके बाद होती है।

लावारिस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह मनुष्य जिसका कोई उत्तराधिकारी या वारिस न हो। (२) वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी या स्वामी न हो। (क्व०)

लावारिसी-वि० [अ० लावारिस] (संपत्ति) जिसका कोई अधिकारी न हो।

लाविका-संज्ञा स्त्री० [सं० लावा] लवा नामक पक्षी।

लावु†-संज्ञा पुं० [हिं० अलावू] कौआ। कद्दू। घिआ।

लाश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी प्राणी का मृतक देह। लोथ। मुरदा। शव।

लाषॐ-संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा] लाख नामक लाल द्रव्य। लाह। उ०—लाष भवन बैठार दुष्ट ने भोजन में विष दीन्हो।—सूर। वि० दे० "लाख"।

लाषनाॐ†-क्रि० स० दे० "लखना"।

लाषुक-संज्ञा पुं० [सं०] लोभी। लालची।

लास-संज्ञा पुं० [सं० लास्य] (१) एक प्रकार का नाच। (२) मटक। उ०—लास भरी मौंहन विलास भरे भाल मृदु हास भरे अधर सुधारस घुरे परैं।—देव।

संज्ञा पुं० [सं०] जूस। रसा। शोरबा।

संज्ञा पुं० [?] उस छड़ के दोनों कोने जिसे पाल बाँधने के लिये मस्तूल में लटकाते हैं। (लश०)

मुहा०—लास करना = चलती हुई नाव को रोकने के लिये डाँडों को बहते हुए पानी में बेड़े बल में ठहराना। (लश०)

लासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर। मोर। (२) नाचनेवाला। नचनिया। नर्त्तक। (३) मटका। घड़ा।

वि० चमकानेवाला। दीप्तिकारक।

लासकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचनेवाली स्त्री। नर्त्तकी।

लासन-संज्ञा पुं० [अं० लैशिंग] जहाज बाँधने का मोटा रस्सा। लहासी।

क्रि० प्र०—खोलना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—लासन देना = मस्तूल के चारों ओर रस्सी लपेटना। कौड़ी लेना। (लश०)

लासा-संज्ञा पुं० [हिं० लस] (१) कोई लसदार या चिपचिपी चीज। लेप। लुआब। उ०—(क) नाम लगि ल्याय लासा ललित वचन कहि व्याध ज्यौं विषय बिहंगनि बझावौं।—तुलसी। (ख) चितवनि ललित लकुट लासा लटकनि पिय कापै अलक तरंग।—सूर। (२) एक विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ जो बहेलिए लोग चिड़ियों को फँसाने के लिये बरगद और गूलर के दूध में तीसी का तेल पकाकर बनाते हैं। इसे प्रायः वे लोग वृक्षों की डालियों पर लगा देते हैं; और जब पक्षी उन पर आकर बैठते हैं, तब उनके परों में यह लग जाता है, जिससे वे उड़ नहीं सकते। उस समय बहेलिए उन्हें पकड़ लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहा०—लासा लगाना = किसी को फँसाने के लिये किसी प्रकार का लालच या धोखा देना। फंदे में फँसाना। लासा होना = हरदम साथ लगे रहना। पीछा न छोड़ना।

लासानी वि० [अ०] जिसका कोई सानी या जोड़ न हो। अनुपम। अद्वितीय। बे जोड़।

लासि-संज्ञा पुं० दे० "लास्य"। उ०— तांडव लासि ओर अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी कें।—स्वा० हरिदास।

लासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] जूँ की तरह का एक प्रकार का काला कीड़ा जो गेहूँ के पेड़ों से लगकर उन्हें निकम्मा कर देता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "लसी" या "लस्सी"।

लासु-संज्ञा पुं० दे० "लास्य"।

लास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य। नाच। (२) नाच या नृत्य के दो भेदों में से एक। वह नृत्य जो भाव और ताल आदि के सहित हो, कोमल अंगों के द्वारा हो और जिसके द्वारा शृंगार आदि कोमल रसों का उद्दीपन होता हो।

विशेष—साधारणतः स्त्रियों का नृत्य ही लास्य कहलाता है। कहते हैं कि शिव और पार्वती ने पहले पहल मिलकर नृत्य किया था। शिव का नृत्य तांडव कहलाया और पार्वती का "लास्य"। यह लास्य दो प्रकार का कहा गया है—छुरित और यौवत। साहित्यदर्पण में इसके दस अंग बतलाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधवाख्य, द्विगूढ़क, उत्तमोत्तमक और युक्तप्रत्युक्त।

लाह*-संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा] लाख। चपड़ा। लाही। उ०—जाकी वाकी वीरता सुनत सहमत धीर जाकी आँच अजहु लसत लंक लाह सी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० लाभ] लाभ। फायदा। नफा। उ०—(क) दावा धरि पाहरू को आवागौन मिसि ताके भानु ससि अभिमति लाहा में फिरत हैं।—चरण। (ख) सारहि सब्द विचारिये सोई सब्द सुख देय। अनसमझा सब्देक है कछू न लाहा लेय।—कबीर। (ग) लहि जीवनमूरि को लाह अली वै भलें जुग चारि लौं जीबो करैं।—द्विजदेव। (घ) मैं तुमसों कहि राखत हौं यह मान किये कछू ह्वै है न लाहे।—रघुनाथ।

संज्ञा स्त्री० [?] चमक। आभा। कांति। दीप्ति। उ०—सीसफूल बेनी बेंदी बेसरि और बीरनि मैं हीरान की लाह में हँसनि छवि छहरी।—देव।

लाहन† संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह महुआ जो मद्य खींचने के उपरांत देग में बच रहता है। यह प्रायः पशुओं को खिलाया जाता है। (२) जूसी और महुए को मिलाकर उठाया हुआ खमीर। (३) किसी प्रकार या पदार्थ का खमीर। (४) वे पेय ओषधियाँ जो गौओं को बच्चा होने पर दी जाती हैं। (५) अनाज ढोने की मजदूरी।

लाहल-संज्ञा पुं० दे० "लाहौल"। उ०—लाहल पारख शब्द के जो परखे सो पाक। तामें जो हल्ला करै सोई होइ हलाक।—कबीर।

लाही†-संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाख, लाह] (१) लाल रंग का वह छोटा कीड़ा जो वृक्षों पर लाख उत्पन्न करता है। वि० दे० "लाख"। (२) इससे मिलता जुलता एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः माघ फागुन में पुरवा हवा चलने पर उत्पन्न होता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

वि० लाह के रंग का। मटमैलापन लिये लाल। उ०—तनसुख सारी लाही अँगिया अतलस अँतरौटा छबि चारि चारि चूरी पहुँचीनि पहुँची षमकि बनी नकफूल जेब मुख बीरा चोका कौंधें संभ्रम भूली।—स्वा० हरिदास।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लावा] धान, बाजरे आदि के भूने हुए दाने। लावा। लाजा। खील।

यौ०—लाही का सत्तू = धान की खीलों को पीसकर बनाया हुआ सत्तू जो बहुत हलका होता और प्रायः रोगियों को पथ्य के रूप में दिया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सरसों। (२) काली सरसों। (३) तीसरी बार का साफ किया हुआ शोरा।

लाहु*-संज्ञा पुं० [सं० लाभ] नफा। फायदा। प्राप्ति। लाभ। उ०—(क) हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू।—तुलसी। (ख) मूकनि बचन लाहु मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन तारे।—तुलसी।

लाहौरी नमक-संज्ञा पुं० [हिं० लाहौरी + नमक] सैंधव लवण। सेंधा नमक। वि० दे० "नमक"।

लाहौल-संज्ञा पुं० [अ०] एक अरबी वाक्य का पहला शब्द जिसका व्यवहार प्रायः भूत-प्रेत आदि को भगाने या घृणा प्रकट करने के लिये किया जाता है। पूरा वाक्य यह है—लाहौल व ला कूव्वत इल्ला बिल्लाह। इसका अर्थ है—ईश्वर के सिवा और किसी में कोई सामर्थ्य नहीं है।

मुहा०—लाहौल पढ़ना = (१) उक्त वाक्य का उच्चारण करना। (२) बहुत अधिक घृणा प्रकट करना।

लाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू पक्षी।

लिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिससे किसी वस्तु की पहचान हो। चिह्न। लक्षण। निशान। (२) वह जिससे किसी वस्तु का अनुमान हो। साधक हेतु। जैसे,—धूम अग्नि का लिंग है; अर्थात् धूम से अग्नि के होने का अनुमान होता है। (न्याय)

विशेष—लिंग चार प्रकार के होते हैं—(क) संबद्ध; जैसे,—धूम अग्नि के साथ संबद्ध है। (ख) न्यस्त; जैसे,—सींग गाय के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ है। (ग) सहवर्ती; जैसे, भाषा मनुष्य के साथ है। और (घ) विपरीत; जैसे भला बुरे के साथ है।

(३) सांख्य के अनुसार मूल प्रकृति।

विशेष—विकृति फिर प्रकृति में लय को प्राप्त होती है; इसी से प्रकृति को लिंग कहते हैं।

(४) पुरुष का चिह्न विशेष जिसके कारण स्त्री से उसका भेद जाना जाता है। पुरुष की गुप्त इंद्रिय। शिश्न।

पर्य्या०—उपस्थ। मदनांकुश। मोहन। कंदर्पमुषल। शेफस्। मेढ़। ध्वज। साधन।

(५) शिव की एक विशेष प्रकार की मूर्ति।

विशेष—लिंग पुराण में लिखा है कि शिव के दो रूप हैं। निष्क्रिय और निर्गुण शिव अलिंग हैं और जगत्कारण रूप शिव लिंग हैं। अलिंग शिव से ही लिंग शिव की उत्पत्ति हुई है। शिव को लिंगी भी कहते हैं; और वह इसलिये कि लिंग या प्रकृति शिव की ही है। इस प्रकार लिंग जगत्कारण रूप शिव का प्रतीक है। पद्मपुराण में शिव के इस रूप के संबंध में यह कथा है—एक बार मंदराचल पर ऋषियों ने बड़ा भारी यज्ञ किया। वहाँ उन्होंने यह चर्चा छेड़ी कि ऋषियों का पूज्य देवता किसे बनाना चाहिए। अंत में यह निश्चय हुआ कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनों के पास चलकर इसका निर्णय करना चाहिए। सब ऋषि पहले शिव के पास गए। पर उस समय वे पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे; इससे नंदि ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। ऋषियों को प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया। इस पर भृगु ऋषि ने कोप करके शाप दिया—"हे शिव! तुमने काम क्रीड़ा के वशीभूत होकर हमारा अपमान किया; इससे तुम्हारी मूर्त्ति योनि-लिंग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा"। पर इस कथा के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पद्मपुराण वैष्णवों का पुराण है।

किसी समय जगत्कारण के रूप में देवता या ईश्वर की उपासना के लिये लिंग का ग्रहण प्राचीन मिस्र, अरब, यहूद, यूनान और रोम आदि देशों में भी था। प्राचीन यूनानी लिंग को 'फेलस' कहते थे। यहूदियों में 'बाल' देवता की प्रतिष्ठा लिंग रूप में ही थी। बाबुल के खँडहरों में मंदिरों के अंदर बहुत से 'लिंग' निकले हैं, जो भारतीयों के शिवलिंग से बिल्कुल मिलते हैं। पर प्राचीन आर्यों में इस प्रकार की उपासना का पता नहीं लगता। वैदिक समय में कुछ अनार्य्य जातियों में 'लिंग-पूजा' प्रचलित थी, इसका कुछ आभास वेद के एक मंत्र से मिलता है। उसमें "शिश्नदेवाः" के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट किया गया है। पर कब से वह शिव की प्रतिमा के रूप में गृहीत हुआ, इसका ठीक पता नहीं।

(६) व्याकरण में वह भेद जिससे पुरुष और स्त्री का पता लगता है। जैसे,—पुल्लिंग, स्त्रीलिंग। (७) मीमांसा में छः लक्षण जिनके अनुसार लिंग का निर्णय होता है। यथा—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति। (८) अठारह पुराणों में से एक। वि० दे० "लिंगपुराण"।

लिंगक-संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ वृक्ष। कैथ।

लिंग जोत्री†-संज्ञा पुं० [सं० लिंगज्योति] एक विशेष प्रकार से गढ़ा हुआ शिवलिंग। ज्योतिर्लिंग।

लिंगदेह-संज्ञा पुं० [सं०] वह सूक्ष्म शरीर जो इस स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी संस्कार के कारण कर्मों के फल भोगने के लिये जीवात्मा के साथ लगा रहता है। (अध्यात्म)

विशेष—इसमें ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की सब वृत्तियाँ रहती हैं, केवल उनके स्थूल रूप नहीं रहते। इस देह में सत्रह तत्व माने गए हैं—१० इंद्रियाँ, मन, ५ तन्मात्र और बुद्धि। उ०—लिंगदेह नृप को निज गेह। दस इंद्रिय दासी सों नेह।—सूर।

लिंगनाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अँधेरा, जिसमें वस्तु की पहचान न हो सके। तिमिर। अंधकार। (२) आँखों का एक रोग जिसमें आँखों के सामने कभी अँधेरा, कभी लाल पीला आदि दिखाई पड़ता है। नीलिका नामक रोग।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार आँख के चौथे पटल में विकार होने से यह रोग होता है। वात, पित्त, और कफ के भेद से यह रोग तीन प्रकार का कहा गया है।

लिंग पुराण-संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक जिसमें शिव का माहात्म्य और लिंग की पूजा की महिमा वर्णित है।

विशेष—इसकी श्लोक संख्या ११००० है। ब्रह्मा इसके मुख्य वक्ता हैं। इसमें शिव ही ब्रह्मा और विष्णु दोनों के अधिष्ठान कहे गए हैं। शिव जी ने अपने मुख से २८ अवतारों का वर्णन किया है। यह एक सांप्रदायिक पुराण है। जिस प्रकार विष्णु ने अपने उपासक अंबरीष राजा की रक्षा की थी, उसी ढंग पर इसमें शिव द्वारा परम शैव दधीचि की रक्षा की कथा लिखी गई है। पहले पद्म कल्प की सृष्टि की उत्पत्ति की कथा देकर फिर वैवस्वत मन्वंतर के राजाओं की वंशावली श्रीकृष्ण के समय तक कही गई है। योग और अध्यात्म्य की दृष्टि से लिंग पूजा का गुह्यार्थ भी बताया गया है।

लिंगवर्धिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

लिंगवस्ति रोग-संज्ञा पुं० [सं०] लिंगार्श नामक रोग।

लिंगवान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्नवाला। लक्षणवाला। (२) शैवों का लिंगायत नामक संप्रदाय।

लिंगवृत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो केवल बाहरी चिह्न या वेश बनाकर अपनी जीविका करता हो। आडंबरी। ढकोसलेबाज़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिंग शरीर-संज्ञा पुं० दे० "लिंगदेह"।

लिंगस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचारी। (मनुस्मृति)

लिंगांकित-संज्ञा पुं० [सं०] एक शैव संप्रदाय। वि०दे० लिंगायत।

लिंगायत-संज्ञा पुं० [सं०] एक शैव संप्रदाय जिसका प्रचार दक्षिण में बहुत है।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग शिव के अनन्य उपासक हैं और सोने या चाँदी के संपुट में शिवलिंग रखकर बाहु या गले में पहने रहते हैं। ये लोग 'जंगम' भी कहलाते हैं। इनके आचार और संस्कार भी औरों से विलक्षण होते हैं।

लिंगिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक लता जिसे पँचगुरिया कहते हैं और जो वैद्यक में कटु, उष्ण, दुर्गंधनाशक तथा रसायन कही गई है। (२) धर्मध्वजी या आडंबर करनेवाली स्त्री।

लिंगी-संज्ञा पुं० [सं० लिंगिन्] (१) चिह्नवाला। निशानवाला। (२) बाहरी रूप रंग या वेश बनाकर काम निकालनेवाला। आडंबरी। धर्मध्वजी। (३) हाथी।

लिंगेंद्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों की मूत्रेंद्रिय।

लिंट-संज्ञा पुं० [अं०] तूतिए में रँगा हुआ मुलायम कपड़ा या फलालीन जो घाव में मरहम लगाकर इसलिये भर दी जाती है, जिसमें उसका मुँह एकबारगी बंद न हो जाय और मवाद न रुके।

लिंपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नीबू। (२) खर। गदहा।

लिंफ-संज्ञा पुं० [अं०] शीतला का चेप जो टीका लगाने के काम में आता है।

लिए-हिन्दी का एक कारक-चिह्न जो संप्रदान में आता है, और जिस शब्द के आगे लगता है, उसके अर्थ या निमित्त किसी क्रिया का होना सूचित करता है। जैसे,—मैं तुम्हारे लिये आम लाया हूँ। यह चिह्न शब्द के संबंध-कारक रूप का के साथ लगता है। जैसे—उसके लिए। बहुत से लोग इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृते' से बताते हैं; पर 'लग्न' और 'लग' शब्द से इसका अधिक लगाव जान पड़ता है। पुरानी काव्य-भाषा विशेषतः अवधी में 'लगि' और 'लागि' रूप बराबर मिलते हैं। यह प्रायः "लिये" भी लिखा जाता है।

लिकिन-संज्ञा पुं० [देश०] मटियाले रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी टाँगें हाथ हाथ भर की और गरदन एक बालिश्त की होती है।

लिकुच-संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर का पेड़। लकुच। चुक्र।

लिक्खाड़-संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] बहुत लिखनेवाला। भारी लेखक। (व्यंग्य या विनोद)

लिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यूकांड। जूँ का अंडा। लीख। (२) एक परिमाण जो कई प्रकार का कहा गया है, जैसे, कहीं चार अणुओं की लिक्षा कही गई है, कहीं आठ बालाग्र की। (८ परमाणु = रज। ८ रज = बालाग्र)। ६ लिक्षा का एक सर्षप (सरसों या राई) माना गया है।

लिखत-संज्ञा स्त्री० [सं० लिखित] (१) लिखी हुई बात। लेख। लिपिबद्ध विषय।

यौ०—लिखत पढ़त

मुहा०—लिखत पढ़त होना = लिखा पढ़ी होना। लेख के रूप में पका होना।

(२) लिखित पत्र। (३) दस्तावेज़।

लिखधार*-संज्ञा पुं० [हिं० लिखना + धार (प्रत्य०)] लिखनेवाला। मुहर्रिर या मुंशी। उ०—साँचो सो लिखधार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै।

लिखन-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिपि या लेख। लिखावट। (२) कर्म की रेखा। भाग्य में निश्चित बात।

लिखना-क्रि० स० [सं० लिखन] (१) किसी नुकीली वस्तु से रेखा के रूप में चिह्न करना। अंकित करना। (२) स्याही में डूबी हुई क़लम से अक्षरों की आकृति बनाना। अक्षर अंकित करना। लिपिबद्ध करना।

यौ०—लिखना पढ़ना। लिखा पढ़ी।

मुहा०—किसी के नाम लिखना = यह लिखना कि अमुक वस्तु किसी के जिम्मे है। जैसे,—१००) तुम्हारे नाम लिखे हैं। लिखना पढ़ना = विद्योपार्जन करना। विद्या का अभ्यास करना। जैसे,—वह लड़का कुछ लिखता पढ़ता नहीं। लिखा पढ़ा = शिक्षित।

(३) रंग से आकृति अंकित करना। चित्रित करना। चित्र बनाना। तसवीर खींचना। जैसे,—चित्र लिखना। उ०—देखी चित्र लिखी सी ठाढ़ी।—सूर। (४) पुस्तक, लेख या काव्य आदि की रचना करना। जैसे,—यह पुस्तक किसकी लिखी है?

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिखनी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लेखनी] कलम।

लिखवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "लिखाई"।

लिखवाना-क्रि० स० दे० "लिखाना"।

लिखाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना] (१) लेख। लिपि। (२) लिखने का कार्य्य (३) लिखने का ढंग। लिखावट।

यौ०—लिखाई पढ़ाई = विद्याभ्यास।

(४) लिखने की मज़दूरी।

लिखाना-क्रि० स० [सं० लिखन] अंकित कराना। लिपिबद्ध कराना। दूसरे के द्वारा लिखने का काम कराना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—लिखाना पढ़ाना = (१) शिक्षा देना। तालीम देना। (२) लेखबद्ध कराना।

लिखापढ़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + पढ़ना] (१) पत्र-व्यवहार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिट्ठियों का आना जाना। परस्पर लेखों द्वारा व्यवहार होना। जैसे,—(क) लिखा पढ़ी करके उनसे यह बात तै कर लो। (ख) इसके बारे में बहुत दिनों तक लिखा पढ़ी होती रही। (२) किसी विषय को कागज पर लिखकर निश्चित या पक्का करना। जैसे,—पहले लिखा पढ़ी करके तब रुपए दीजिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिखावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + आवट (प्रत्य०)] (१) लिखे हुए अक्षर आदि। लेख। लिपि। जैसे,—तुम्हारी लिखावट तो किसी से पढ़ी ही नहीं जाती। (२) लिखने का ढंग। लेख-प्रणाली।

लिखित—वि० [सं०] लिखा हुआ। लिपिबद्ध किया हुआ। अंकित।

संज्ञा पुं० (१) लिखी हुई बात। लेख।

विशेष—व्यवहार (मामले, मुक़दमे) में 'लिखित' चार प्रकार के प्रमाणों में से एक है। साक्षियों में भी एक 'लिखित' साक्षी होते हैं। अर्थी जिसे लाकर लिखा दे, वह लिखित साक्षी होगा। (मिताक्षरा)

(२) लिखी हुई सनद। प्रमाण-पत्र। (३) एक स्मृतिकार ऋषि।

लिखितक—संज्ञा पुं० [सं० लिखित] एक प्रकार के प्राचीन चौखूँटे अक्षर जो खुतन (मध्य एशिया) में पाए गए शिलालेखों में मिलते हैं।

लिखेरा—संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] लिखनेवाला। लेखक।

लिख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूँ का अंडा। लीख। (२) एक परिमाण। वि० दे० "लिक्षा"।

लिगदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कमज़ोर छोटी घोड़ी।

लिगु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन। (२) मूर्ख। (३) मृग। (४) भूप्रदेश।

लिचेन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है।

लिच्छवि—संज्ञा पुं० [सं०] एक इतिहास-प्रसिद्ध राजवंश जिसका राज्य किसी समय में नैपाल, मगध और कोशल में था।

विशेष—प्राचीन संस्कृत साहित्य में क्षत्रियों की इस शाखा का नाम 'निच्छवि' या 'निच्छिवि' मिलता है। पाली रूप 'लिच्छवि' है। मनुस्मृति के अनुसार लिच्छवि लोग व्रात्य क्षत्रिय थे। उसमें इनकी गणना झल्ल, मल्ल, नट, करण, खश और द्रविड़ के साथ की गई है। ये 'लिच्छवि' लोग वैदिक धर्म के विरोधी थे। इनकी कई शाखाएँ दूर दूर तक फैली थीं। वैशालीवाली शाखा में जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए और कोशल की शाक्य शाखा में गौतम बुद्ध प्रादुर्भूत हुए। किसी समय मिथिला से लेकर मगध और कोशल तक इस वंश का राज्य था। जिस प्रकार हिन्दुओं के संस्कृत ग्रंथों में यह वंश हीन कहा गया है, उसी प्रकार बौद्धों और जैनों के पाली और प्राकृत ग्रंथों में यह वंश उच्च कहा गया है। गौतम-बुद्ध के समसामयिक मगध के राजा बिंबसार ने वैशाली के लिच्छवि लोगों के यहाँ संबंध किया था। पीछे गुप्त सम्राट् ने भी लिच्छवि कन्या से विवाह किया था।

लिटाना—क्रि० स० [हिं० लेटना] लेटने की क्रिया कराना। दूसरे को लेटने में प्रवृत्त कराना।

लिट्ट—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लिट्टी] मोटी रोटी जो बिना तवे के आग ही पर सेंकी जाय। अंगाकड़ी। बाटी।

लिठोर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नमकीन पकवान।

लिडार†—संज्ञा पुं० [देश०] शृगाल। गीदड़।

वि० डरपोक। कायर। बुज़दिल। उ०—त्रिशुद्ध होहु शुद्ध को विरुद्ध बात ना कहौ। न वाँचिहौ घरे घुसे लिड़ार होन ना चहौ।

लिडौरी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] अनाज के वे दाने जो पीटने के पीछे बाल में लगे रह जाते हैं। भुंडारी। दोवरी। पकुरी। चित्ती। (यह शब्द रबी की फसल के लिये बोला जाता है।)

लिपटना—क्रि० अ० [सं० लिप्त] (१) एक वस्तु का दूसरी को घेरकर उससे खूब सट जाना। किसी वस्तु से दृढ़तापूर्वक जा लगना। वेष्टित करके संलग्न होना। चिमटना। जैसे,—साँप का पैर में लिपटना, बच्चे का माँ से लिपटना, लता का पेड़ से लिपटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) इस प्रकार लग जाना कि जल्दी न छूटे। चिपकना। (३) गले लगना। आलिंगन करना। जैसे—वह उससे लिपट कर रोने लगा। (४) किसी काम में जी जान से लग जाना। तन्मय होकर प्रवृत्त होना। जैसे,—जिस काम में लिपटता हूँ, उसे पूरा करके छोड़ता हूँ।

लिपटाना—क्रि० स० [हिं० लिपटना का स० रूप] (१) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से खूब सटाना। संलग्न करना। चिमटाना। (२) किसी को हाथों से घेरकर अपने शरीर से खूब सटाना। आलिंगन करना। गले लगाना। उ०—कान्ह के कान आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता सी।—पद्माकर।

लिपड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] लुगड़ा। कपड़ा। (कलंदर)

विशेष—कलंदर भालू नचाकर जब उससे लोगों से कपड़ा माँगने को कहते हैं, तब 'लिपड़ा' 'लिपड़ा' करते हैं।

वि० [हिं० लेप] लेई की तरह गीला और चिपचिपा।

लिपड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपड़ा] लेई की तरह गीला और चिपचिपा पदार्थ। जैसे,—हलुवा पानी अधिक होने से लिपड़ी हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा स्त्री० दे० "लिबड़ी"।

लिपना-क्रि० अ० [सं० लिप्] (१) किसी रंग या गीली वस्तु की पतली तह से ढक जाना। पोता जाना। जैसे,—सारा घर गोबर से लिप गया।

यौ०—लिपा पुता = स्वच्छ। साफ। झक।

(२) रंग या गीली वस्तु का फैल जाना। जैसे,—हाथ पड़ने से कागज़ पर स्याही लिप गई।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—लिपा पुता = जिस पर धब्बे आदि हों। बदरंग।

लिपवाना-क्रि० स० [हिं० लीपना] लीपने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लीपने में प्रवृत्त करना

लिपाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपना] (१) किसी रंग या घुली हुई गीली वस्तु की तह फैलाने की क्रिया या भाव। (२) दीवार या ज़मीन पर घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह फैलाना। लेपना। पोताई। (३) लीपने की मज़दूरी।

लिपाना-क्रि० स० [हिं० लीपना] (१) रंग या किसी गीली वस्तु की तह चढ़वाना। पुताना। (२) दीवार या ज़मीन पर सफाई के लिये घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह चढ़वाना। मिट्टी, गोबर आदि का लेप कराना। उ०—जागी महरि पुत्र मुख देख्यो आनँद तूर बजायो हो। कंचन कलस होम द्विज पूजा चंदन भवन लिपायो हो।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अक्षर या वर्ण के अंकित चिह्न। लिखावट। (२) अक्षर लिखने की प्रणाली। वर्ण अंकित करने की पद्धति। जैसे,—ब्राह्मी लिपि, खरोष्ट्री लिपि, अरबी लिपि। (३) लिखे हुए अक्षर या बात। लेख। जैसे—भाग्य-लिपि। उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।—तुलसी।

लिपिकर-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। लिखनेवाला।

लिपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट।

लिपिकार-संज्ञा पुं० [सं०] लिखनेवाला। लेखक।

लिपिफलक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर, तख्ती, धातुपत्र आदि जिन पर अक्षर खोदे जायँ।

लिपिबद्ध-वि० [सं०] लिखा हुआ। लिखित।

लिप्त-वि० [सं०] (१) जिस पर किसी गीली वस्तु (जैसे,—घुली मिट्टी, चंदन आदि) की तह चढ़ी हो। जिस पर लेप किया गया हो। लिपा हुआ। पुता हुआ। चर्चित। (२) जो लीपा गया हो। जिसकी पतली तह चढ़ी हो। (३) गाढ़ा लगा हुआ। खूब संलग्न। (४) खूब तत्पर। लीन। अनुरक्त। फँसा हुआ। जैसे,—विषय भोग में लिप्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार काल का एक मान जो एक मिनट के बराबर होता है।

लिप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लालच। लोभ। चाह। इच्छा।

लिप्सु-संज्ञा पुं० [सं०] लाभ की इच्छा रखनेवाला। लोलुप। लोभी। लालची। जैसे,—यशोलिप्सु।

लिफ़ाफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कागज़ की बनी हुई चौकोर खोली या थैली जिसके अंदर चिट्ठी या कागज पत्र रखकर भेजे जाते हैं। जैसे,—लिफ़ाफ़े में बंद करके चिट्ठी डाल देना।

मुहा०—लिफाफा खुल जाना = भेद खुल जाना। छिपी हुई बात का प्रकट हो जाना।

(२) ऊपरी आच्छादन। सजावट की पोशाक। दिखावटी कपड़े लत्ते। जैसे,—आज तो खूब लिफ़ाफ़ा बदलकर निकले हो।

मुहा०—लिफ़ाफ़ा बदलना = भड़कदार कपड़े पहनना।

(३) ऊपरी आडंबर। झूठी तड़क भड़क। मुलम्मा। कलई।

मुहा०—लिफ़ाफ़ा खुल जाना = असली रूप प्रकट हो जाना। लिफ़ाफ़ा बनाना = (१) ठाठ बाट बनाना। (२) आडंबर करना। ढकोसला रचना।

(४) जल्दी नष्ट हो जानेवाली वस्तु। दिखाऊ चीज़। काजू भोजू चीज।

लिबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुगड़ी ?] कपड़ा लत्ता।

यौ०—लिबड़ी बरतना या बारदाना = निर्वाह का सामान। असबाब। जैसे,—अपना लिबड़ी बरतना उठाओ, और चल दो।

लिबरल-वि० [अं०] उदार। उदार नीतिवाला।

संज्ञा पुं० (१) इंग्लैंड का एक राजनीतिक दल जिसकी नीति अधीनस्थ देशों की व्यवस्था के संबंध में तथा अन्य राज्यों के साथ व्यवहार करने में उदार कही जाती है। (२) भारत का एक राजनीतिक दल जो बहुत ही सौम्य उपायों से अपने देश को स्वतंत्र करना चाहता है।

लिबास-संज्ञा पुं० [अ०] पहनने का कपड़ा। आच्छादन। पहनावा। पोशाक।

लिबि-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट।

लियाक़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) योग्यता। क़ाबिलीयत। (२) गुण। हुनर। (३) सामर्थ्य। समाई। (४) शील। शिष्टता। भद्रता।

लिलाट†*-संज्ञा पुं० दे० "ललाट"।

लिलार*†-संज्ञा पुं० [सं० ललाट] (१) भाल। माथा। मस्तक। (२) कूएँ का वह सिरा जहाँ मोट का पानी उलटते हैं।

लिलारी†-संज्ञा पुं० [हिं० नील, लील + कार] नीलगर। रँगरेज़।

लिलाही-संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का बटा हुआ देशी सूत।

लिलोही†-वि० [सं० लल = चाह करना] लालची। अति लोभी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उ०—बूझिबे की जक लागी है कान्हहिं केशव के रुचि रूप लिलोही।—केशव।

लिवाना-क्रि० स० [हिं० लेना का प्रेर०] (१) लेने का काम दूसरे से कराना। ग्रहण कराना। थमाना। पकड़ाना। उ०—सूरदास भीषम परतिज्ञा शस्त्र लिवाऊँ पैज करी।—सूर।

क्रि० स० [हिं० लाना का प्रेर०] लाने का काम दूसरे से कराना। जैसे,—लकड़ी मज़दूर से लिवा लाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयोज्य क्रिया 'लाना' के साथ होता है।

संयो० क्रि०—लाना।

मुहा०—लिवा लाना = साथ ले आना।

लिवाल संज्ञा पुं० [हिं० लेना + लावा] खरीदनेवाला। लेनेवाला।

लिवैया†-संज्ञा पुं० [हिं० लेना] लेनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० लाना] लानेवाला।

लिष्व-संज्ञा पुं० [सं०] नर्त्तक। नाचनेवाला।

लिसोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] मझोले डील का एक पेड़ जिसके पत्ते कुछ गोलाई लिए होते हैं। इसके फल छोटे बेर के बराबर होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। पकने पर इसमें लसदार गूदा हो जाता है, जो गोंद की तरह चिपकता है। यह गूदा हकीम लोग खाँसी में देते हैं। पत्ते बीड़ी (तंबाकू की) के ऊपर लपेटने के काम में आते हैं। छाल के रेशे से रस्से बटे जाते हैं। अंदर की लकड़ी मज़बूत होती है और किश्ती तथा खेती के सामान बनाने के काम की होती है। इसे 'लभेरा' और 'लिटोरा' भी कहते हैं।

पर्य्या०—श्लेष्मांतक। भूकर्बुदार।

लिह-क्रि० स० [सं०] चाटना।

वि० चाटनेवाला। जैसे,—अभ्रंलिह।

लिहाज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) व्यवहार या बरताव में किसी बात का ध्यान। कोई काम करते हुए उसके संबंध में किसी बात का खयाल। जैसे,—(क) उसकी तंदुरुस्ती के लिहाज़ से मैंने उसे हलका काम दिया। (ख)-दवा में मैंने खाँसी का लिहाज़ भी रखा है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

(२) कृपापूर्वक किसी बात का ध्यान। मेहरबानी का खयाल। कृपा दृष्टि। (३) किसी को कोई बात अप्रिय या दुःखदायी न हो, इस बात का खयाल। मुरव्वत। मुलाहज़ा। शील संकोच। जैसे,—काम बिगड़ने पर वह कुछ भी लिहाज़ न करेगा। (४) पक्षपात। तरफ़दारी। (५) बड़ों के सामने ढिठाई आदि न प्रकट हो, इस बात का ध्यान। सम्मान या मर्य्यादा का ध्यान। अदब का खयाल। जैसे,—बड़ों का लिहाज़ रखा करो। (६) लज्जा। शर्म। हया।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।

मुहा०—लिहाज़ उठना या टूटना = लिहाज़ न रहना।

लिहाड़ा-वि० [देश०] (१) नीच। वाहियात। गिरा हुआ (२) खराब। निकम्मा।

लिहाड़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] उपहास। विडंबना। निंदा। उ०—जाके कुल में भक्त मम नाम लिहाड़ी होय। एक एक शत आपनी पीढ़ी तारत सोय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

मुहा०—लिहाड़ी लेना = (१) उपहास करना। ठट्ठा करना। बनाना। (२) निंदा करना।

लिहाफ़-संज्ञा पुं० [अ०] रात को सोते समय ओढ़ने का रूईदार कपड़ा। भारी रज़ाई।

लीक-संज्ञा स्त्री० [सं० लिख्] (१) लंबा चला गया चिह्न। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—लीक करके = दे० "लीक खींचकर"। उ०—आगम निगम पुरान कहत करि लीक।—तुलसी। लीक खिंचना = (१) किसी बात का अटल और दृढ़ होना। इस प्रकार स्थिर किया जाना कि न टले। (२) मर्य्यादा बँधना। व्यवहार का प्रतिबंध या नियम स्थापित होना। हद या क़ायदा मुक़र्रर होना। (३) साख बँधना। प्रतिष्ठा स्थिर होना। उ०—हरि चरनारबिंद तजि लागत भनत कहूँ तिनकी मति काँची।—सूरदास। भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ दिसि खाँची।—सूर। लील खींचकर = इस बात को दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि ऐसा ही होगा। निश्चयपूर्वक। ज़ोर देकर। उ०—सूर श्याम तेरे बस राधा, कहति लीक मैं खाँची।—सूर।

(२) गहरी पड़ी हुई लकीर। (३) गाड़ी के पहिए से पड़ी हुई लकीर। उ०—लीक लीक गाड़ी चलै लीकै चलै कपूत। (४) चलते चलते बना हुआ रास्ते का निशान। डुर्री। जैसे,—यही लीक पकड़े सीधे चले जाओ।

मुहा०—लीक पकड़ना = डुर्रों पर चलना। पगडंडी पर होना। लीक पीटना = पुराने निकले हुए रास्ते पर चलना। चली आती हुई प्रथा का ही अनुसरण करना। बँधी हुई रीति या प्रणाली पर ही चलना। लीक लीक चलना = दे० "लीक पीटना"।

(५) महत्व की प्रतिष्ठा। मर्य्यादा। नाम। यश। उ०—दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिह्न कै लीका।—तुलसी। (६) बँधी हुई मर्य्यादा। लोक-व्यवहार की बँधी हुई सीमा या व्यवस्था। लोक-नियम। उ०—नँदनंदन के नेह-मेह जिन लोक-लीक लोपी।—सूर। (७) बँधी हुई विधि। रीति। प्रथा। चाल। दस्तूर। (८) हद। प्रतिबंध। (९) कलंक की रेखा। धब्बा। बदनामी। लांछन। उ०—तिहि देखत मेरो पट काढ़त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीक लगी तुम काज ।—सूर । (१०) गिनती के लिये लगाया हुआ चिह्न । गिनती । गणना । उ०—बारिदनाद जेठ सुत तासू । भट महँ प्रथम लीक जग जासू ।—तुलसी.। संज्ञा स्त्री० [देश०] मटियाले रंग की एक चिड़िया जो बत्तख़ से कुछ छोटी होती है ।

लीख-संज्ञा स्त्री० [सं० लिक्षा] जूँ का अंडा ।

लीचड़-वि० [देश०] (१) सुस्त । काहिल । निकम्मा । (२) जल्दी न छोड़नेवाला । चिमटनेवाला । उ०—बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि मुँह-पीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं ।—तुलसी । (३) जिसका लेन देन ठीक न हो ।

लीची-संज्ञा स्त्री० [चीनी लीचू] एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसका फल खाने में बहुत मीठा होता है । इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी होती हैं; फल गुच्छों में लगते हैं और देखने में बहुत सुंदर होते हैं । छिलके के ऊपर कटावदार दाने से उभरे होते हैं । गूदा सफ़ेद खोली की तरह बीच से चिपका रहता है, पर बहुत जल्दी छूटकर अलग हो जाता है । यह पेड़ चीन से आया है और बंगाल तथा बिहार में अधिक होता है ।

लीझी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) देह में मले हुए उबटन के साथ छूटी हुई मैल की वत्ती । (२) वह गूदा या रेशा जिसका रस चूस या निचोड़ लिया गया हो । सीठी ।

वि० (१) नीरस । निस्सार । (२) निकम्मा । उ०—श्री रघुराज कहे कह रीझी भई तनु लीझी अजौं दशा एती ।—रघुराज ।

लीडर-संज्ञा पुं० [अं०] अगुआ । मुखिया । नेता ।

लीथो-संज्ञा पुं० [अं०] पत्थर का छापा, जिस पर हाथ से लिख कर अक्षर या चित्र छापे जाते हैं ।

लीद-संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े, गधे, ऊँट और हाथी आदि पशुओं का मल । घोड़े आदि का पुरीष ।

मुहा०—लीद करना = घोड़े आदि का मल त्याग करना ।

लीन-वि० [सं०] (१) लय को प्राप्त । जो किसी वस्तु में समा गया हो । (२) तन्मय । मग्न । डूबा हुआ । (३) बिलकुल लगा हुआ । तत्पर । जैसे,—कार्य्य में लीन होना । (४) ख्याल में डूबा हुआ । ध्यानमग्न । अनुरक्त । उ०—अति ही चतुर सुजान जानमनि वा छबि पै भइ मैं लीना ।—सूर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

लीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तन्मयता । तत्परता । (२) ऐसा संकुचित होकर रहना जिसमें किसी को दुःख न पहुँचे । (जैन)

लीपना-क्रि० स० [सं० लेपन] (१) घुले हुए रंग, मिट्टी, गोबर या और किसी गीली वस्तु की पतली तह चढ़ाना । पोतना । (२) सफ़ाई के लिये ज़मीन या दीवार पर घुली हुई मिट्टी या गोबर फेरना । पोतना ।

यौ०—लीपना पोतना = सफाई करना ।

मुहा०—लीप पोतकर बराबर करना = किसी काम को बिगाड़ना । चौपट करना । चौका लगाना । सत्तानाश करना ।

लीम-संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का चीड़ का पेड़ जिसमें से तारपीन या अलकतरा निकलता है । (२) एक प्रकार की चिड़िया ।

लील†-संज्ञा पुं० [सं० नील] नील ।

वि० नीला । नीलवर्ण । नीले रंग का । उ०—लीलांबुज तनुलीलवसन मणि चितयो न जात धूम के ओरे ।—सूर ।

लीलकंठ†-संज्ञा पुं० दे० "नीलकंठ" ।

लीलक-संज्ञा पुं० [हिं० लील] वह हरा चमड़ा जो जूतों की नोक पर लगाया जाता है ।

वि० नीला ।

लीलगऊ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + गऊ] नील गाय ।

लीलगर†-संज्ञा पुं० दे० "नीलगर" ।

लीलना-क्रि० स० [सं० गिलन या लीन] गले के नीचे पेट में उतारना । मुँह में लेकर पेट में डालना । निगलना । खा जाना । उ०—(क) बालधी बिसाल विकराल ज्वालमाल मानो लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।—तुलसी । (ख) बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि । लीलि लियो हनुमंत तेहि, चढ़े उदर कहँ फारि ।—केशव ।

संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

लीलया-क्रि० वि० [सं०] (१) खेल में । (२) सहज में ही । बिना प्रयास । उ०—रामचन्द्र कटि सों पट बाँध्यो । लीलयैव हर को धनु साध्यो ।—केशव ।

लीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह व्यापार जो चित्त की उमंग से केवल मनोरंजन के लिये किया जाय । केलि । क्रीड़ा । खेल । जैसे,—बाल लीला । उ०—अति उतंग गरु सैलगन लीलहिं लेहिं उठाइ ।—तुलसी । (२) शृंगार की उमंग भरी चेष्टा । प्रेम का खेलवाड़ । प्रेम-विनोद । (३) नायिकाओं का एक हाव जिसमें वे प्रिय के वेश, गति, वाणी आदि का अनुकरण करती हैं । (४) रहस्यपूर्ण व्यापार । विचित्र काम । जैसे,—यह ईश्वर की लीला है जो ऐसे स्थान में ऐसा सुंदर पेड़ होता है । (५) मनुष्यों के मनोरंजन के लिये किए हुए ईश्वरावतारों का अभिनय । चरित्र । जैसे,—रामलीला, कृष्णलीला । (६) बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक जगण होता है । (७) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण और एक गुरु होता है । (८) चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें ७ + ७ + ७ + ३ के विराम से २४ मात्राएँ और अंत में सगण होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा पुं० [सं० नील] स्याह रंग का घोड़ा। उ०—लीले, सुरंग, कुमैत श्याम तेहि परदे सब मन रंग।

वि० नीला। उ०—कटि लहँगा लीलो बन्यो धौं को जो देखि न मोहे।—सूर।

लीलाकमल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल का फूल जिसे क्रीड़ा के लिये हाथ में लिए हों।

लीलापुरुषोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

विशेष—राम और कृष्ण इन दो प्रधान अवतारों में राम मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं और कृष्ण लीला पुरुषोत्तम।

लीलामय-वि० [सं०] क्रीड़ा के भाव से भरा हुआ। क्रीड़ायुक्त।

लीलावती-वि० स्त्री० [सं०] क्रीड़ा करनेवाली। विलासवती।

संज्ञा स्त्री० (१) प्रसिद्ध ज्योतिर्विद भास्कराचार्य्य की पत्नी का नाम जिसने लीलावती नाम की गणित की एक पुस्तक बनाई थी। पीछे भास्कराचार्य्य ने भी इस नाम की एक गणित की पुस्तक बनाई। (२) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रागिनी ललित, जयतश्री और देशकार से मिलकर बनी कही गई है। कोई कोई इसे दीपक राग की पुत्रवधू कहते हैं। (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं और अंत में एक जगण होता है।

लीलास्थल-संज्ञा पुं० [सं०] क्रीड़ा करने का स्थान।

लीली-वि० स्त्री० [सं० नील] नीले रंग की। नीली। उ०—चंदन शिरता टंक गंड पर रतन जटित मणि लीली। —सूर।

लुंग-संज्ञा पुं० [सं०] मातुलंग वृक्ष।

लुंगा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) पंजाब में धान रोपने की एक रीति। माच। (२) दे० "लुँगाड़ा"।

लुँगाड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] शोहदा। लफंगा। लुच्चा।

लुंगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगोट या लाँग] (१) धोती के स्थान पर कमर में लपेटने का छोटा टुकड़ा। तहमत। (इस देश में मुसलमान, मदरासी और बरमी लोग इस प्रकार कपड़ा लपेटते हैं, जिसमें पीछे लाँग नहीं बाँधी जाती।)

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।

(२) कपड़े का टुकड़ा (जो प्रायः खारुए का होता है) जो हजामत बनाते समय नाई इसलिये पैर पर आगे डाल देता है जिसमें बाल उसी पर गिरें। (३) लाल रंग का एक मोटा कपड़ा। खारुवा।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ी चिड़िया जो हिमालय के जंगलों में, कुमाऊँ से लेकर नैपाल और भूटान तक, तालों के किनारे पाई जाती है। इसकी लंबाई सवा या डेढ़ हाथ के लगभग और आकृति मोर की सी होती है। इसका अगला भाग काला और लाल होता है। सफेद चित्तियाँ भी होती हैं। चोंच भूरे रंग की होती है। जाड़े के दिनों में यह मैदान में उतर आती है और कीड़े मकोड़े खाकर रहती है। कुत्तों की सहायता से लोग इसका शिकार करते हैं।

लुंचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चुटकी से पकड़कर झटके के साथ उखाड़ना। नोचना। उत्पाटन। जैसे,—केशलुंचन। (२) जैन यतियों की एक क्रिया जिसमें उनके सिर के बाल नोचे जाते हैं। (३) काटना। तराशना। अलग करना। दूर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लुंचित-वि० [सं०] उखाड़ा हुआ। नोचा हुआ। उत्पाटित।

लुंचितकेश-संज्ञा पुं० [सं०] जैन यति, जो अपने सिर के बाल नोचे रहते हैं।

लुंज-वि० [सं० लुंचन = काटना, उखाड़ना] (१) बिना हाथ पैर का। जिसके हाथ पैर बेकाम हो गए हों। लँगड़ा लूला। उ०—ए ऊधो, कहियो माधव सो मदन मारि कीन्हों हम लुंजैं—सूर। (२) बिना पत्ते का पेड़। ठूँठ। उ०—पात बिनु कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के परत न चीन्हे जैसे लरजत लुंज हैं।—पद्माकर।

लुंठक-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा।

लुंठन-क्रि० स० [सं०] [वि० लुंठित] (१) लुढ़कना। (२) लूटना। चुराना।

लुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े का लोटना।

लुंड-संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

संज्ञा पुं० [सं० रुंड] (२) बिना सिर का धड़। कबंध। रुंड। उ०—लुंड मुंड बिनु चल्यो प्रचंडा। तब प्रभु काटि किये युग खंडा।—विश्राम।

लुंडमुंड-वि० [सं० रुंड + मुंड] (१) जिसका सिर, हाथ, पैर आदि कटे हों, केवल धड़ का लोथड़ा रह गया हो। (२) बिना हाथ पैर का। लँगड़ा लूला। (३) बिना पत्ते का। ठूँठ। (पेड़) (४) यों ही गठरी की तरह लपेटा हुआ।

लुंडा-वि० [सं० रुंड] [स्त्री० अल्पा० लुंडी] (१) जिसकी पूँछ और पर झड़ गए हों या उखाड़ लिए गए हों। (पक्षी) (२) जिसकी पूँछ पर बाल न हों। (बैल)

संज्ञा पुं० [सं० लुंडिका] साफ़ किए हुए लपेटे सूत की पिंडी। कुकड़ी।

लुँडियाना†-क्रि० स० [हिं० लुंडी] सूत या रस्सी आदि को पिंडी के रूप में लपेटना।

लुंडी-वि० स्त्री० [हिं० लुंडा] जिसकी पूँछ या पर झड़ गए हों।

संज्ञा स्त्री० लपेटे हुए सूत की पिंडी या गोली।

लुंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा।

लुंबिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिलवस्तु के पास का एक वन या उपवन जहाँ गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुआठ†-संज्ञा पुं० दे० "लुआठा"

लुआठा-संज्ञा पुं० [सं० लोक = चमकना, प्रज्वलित होना + काष्ठ] [स्त्री० अल्पा० लुआठी] वह लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। सुलगती हुई लकड़ी। लुआती।

लुआठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुआठा] सुलगती या दहकती हुई लकड़ी।

लुआब-संज्ञा पुं० [अ०] लसदार गूदा। चिपचिपा गूदा। लासा। जैसे,—बिहीदाने का लुआब।

लुआबदार-वि० [अ० लुआब + फ़ा० दार] (१) लसदार। चिपचिपा। (२) जिसमें लसदार गूदा हो।

लुआर †-संज्ञा स्त्री० दे० "लू"।

लुकंजन‡†-संज्ञा पुं० [सं० लोकांजन] वह अंजन जिसे आँख में आँज लेने से आँजनेवाला सब को देखता है, पर उसे कोई नहीं देखता। उ०—बीतिबे ही सुतो बाति चुकी अब आँजती हौ केहि काज लुकंजन।—पद्माकर।

लुकंदर ‡-वि० [हिं० लुकना] छिपनेवाला।

लुक-संज्ञा पुं० [सं० लोक = चमकना] (१) वह लेप जिसे फेरने से वस्तुओं (मिट्टी के बरतन आदि) पर चमक आ जाती है। चमकदार रोगन। वार्निश।

क्रि० प्र०—फेरना।

(२) आग की लपट। लौ। ज्वाला।

लुकना-क्रि० अ० [सं० लुक = लोप] ऐसी जगह हो रहना, जहाँ कोई देख न सके। आड़ में होना। गुप्त स्थान में हो रहना। छिपना। उ०—कातिक के द्यौस कहूँ आई न्हाइबे को वह गोपिन के संग जऊ नेसुक लुकी रही।—द्विज देव।

क्रि० प्र०—जाना।—रहना।

मुहा०—लुक छिपकर = गुप्त रूप से। अप्रकट में। किसी के देखने में नहीं। जैसे,—लुक छिपकर बहुत से लोग शराब पीते हैं।

लुक़मा-संज्ञा पुं० [अ०] ग्रास। कौर। निवाला।

लुकसाज़-संज्ञा पुं० [हिं० लुक = चमकीला रोगन + फ़ा० साज] एक प्रकार का चमड़ा जो सिझाया और चमकीला किया हुआ होता है।

लुकाट-संज्ञा पुं० [सं० लकुच] एक प्रकार का पेड़ जिसके फल आमड़े के बराबर और खाने में खट-मीठे होते हैं।

लुकाना-क्रि० स० [हिं० लुकना] ऐसी जगह करना जहाँ कोई देख न सके। आड़ में करना। छिपाना। उ०—चाँपी पूँछ लुकावत अपनी जुवतिन को नहिं सकत दिखाय।—सूर।

† क्रि० अ० लुकना। छिपना। उ०—मानी महिप-कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।—तुलसी।

लुकारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुक] फूस का पूला या लकड़ी जिसका एक छोर जलता हो। मशाल की तरह जलती हुई लकड़ी।

लुकेठा †-संज्ञा पुं० [हिं० लुक] जलती हुई लकड़ी। लुआठा। उ०—कबहुँ प्रवेश करत घर जब हीं। मारहिं नारि लुकेठन तब हीं।—रघुराज।

लुक्क ‡-संज्ञा पुं० दे० "लुक"।

लुक्कायित-वि० [सं०] लुका हुआ। छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृश्य।

लुख-संज्ञा स्त्री० [देश०] शर या सरपत की तरह की एक घास।

लुगड़ा-संज्ञा पुं० दे० "लूगड़ा"।

लुगड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "लूगड़ी"।

लुगदा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लुगदी] गीली वस्तु का गोला या पिंडा। लोंदा।

लुगदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] गीली वस्तु (जैसे,—कीचड़, सना हुआ आटा) का पिंडा या गोला। छोटा लोंदा। जैसे,—भाँग की लुगदी।

लुगरा †-संज्ञा पुं० [हिं० लूगा + ड़ा (प्रत्य०)] (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) ओढ़नी। छोटी चादर। उ०—पीरे पीरे आँचर खेत लुगरा लहर लेत लँहगा की लगी लाल रँगी रँगहेरा की।—देव। (३) फटा पुराना कपड़ा। लत्ता।

† संज्ञा पुं० [देश०] पीठ पीछे बुराई करनेवाला। चुगलखोर।

लुगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुगरा] फटी पुरानी धोती।

† संज्ञा स्त्री० [देश०] पीठ पीछे की हुई निंदा। चुग़ली।

लुगाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग] स्त्री। औरत। उ०—(क) लगलगा बातनि अलग लग लगी आवै लोगन की लंग ज्यों लुगाइन की लागरी।—देव। (ख) औध तजी मग वास के रूप ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।—तुलसी।

लुगी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूगा] (१) छोटा कपड़ा। (२) फटी पुरानी धोती। (३) लँहगे का संजाफ़ या चौड़ा किनारा। उ०—पीरे अँचरान स्वेत लुगुरा लहरि लेत लुगी लँहगा की रँगी रंगी रंगहेरा की।—देव।

लुग्गा ‡-संज्ञा पुं० दे० "लूगा"। उ०—चूर चूर देख्यो जब सुग्गा। शकुनि नैन पोंछत लै लुग्गा।—गोपाल।

लुघड़ना†-क्रि० अ० दे० "लुढ़कना"।

लुचकना-क्रि० स० [सं० लुंचन = नोचना खसोटना] दूसरे के हाथ से झटका देकर ले लेना। झटके से छीनना। जैसे,—वह मेरे हाथ से मिठाई लुचककर ले गया।

संयो० क्रि०—लेना।

लुचवाना-क्रि० स० [सं० लुंचन] नोचवाना। उखड़वाना। चौंथवाना।

लुचुई†-संज्ञा स्त्री० [सं० रुचि, मा०—लुचि] मैदे की पतली और मुलायम पूरी। लूची। उ०—लुचुई पूरि सुहारी पूरी। इक तो ताती औ सुठ कँवरी।—जायसी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लुच्चा-वि० [हिं० लुचकना] [स्त्री० लुच्ची] (१) दूसरे के हाथ से वस्तु लुचककर भागनेवाला। चाईं। (२) दुराचारी। कुमार्गी। कुचाली। (३) खोटा। कमीना। लफंगा। शोहदा। बदमाश।

लुच्ची-वि० स्त्री० [हिं० लुच्चा] खोटी या बदमाश। (स्त्री०) संज्ञा स्त्री० दे० "लुचुई"।

लुज्जा-संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र में वह स्थल जो बहुत गहरा हो। (लश०)

लुटंत*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूट] लूट।

लुटकना-क्रि० अ० दे० "लटकना"। उ०—गजगाह निहारि निगाह पुरै मुकुता लर पायन लौं लुटकैं।—गोपाल।

लुटना-क्रि० अ० [सं० लुट् = लुटना] (१) दूसरे के द्वारा लूटा जाना। डाकुओं के हाथ धन खोना। जैसे,—रास्ते में बहुत से मुसाफिर लुट गए।

मुहा०—घर लुटना = घर का माल चोरी जाना या अपहृत होना।

(२) तबाह होना। बरबाद होना। सर्वस्व खोना।

संयो० क्रि०—जाना।

*क्रि० अ० दे० "लुठना"।

लुटाना-क्रि० स० [हिं० लूटना का प्रेर०] (१) दूसरे को लूटने देना। डाकुओं आदि को छीन लेने देना। जैसे,—तुम रात को टल गए और हमारा माल लुटा दिया। (२) मुफ़्त में देना। बिना पूरा मूल्य लिए दे देना। जैसे—तुम्हारा माल है, चाहे यों ही लुटा दो। (३) बरबाद करना। व्यर्थ फेंकना या व्यय करना। (४) मुट्ठी भर भर चारों ओर इस लिये फेंकना जिसमें जो चाहे, सो ले। बहुतायत से बाँटना। स्वच्छंद वितरण करना। सब को बिना रोक टोक देना। अंधाधुंध दान करना। जैसे,—बरात में उसने खूब रुपए लुटाए।

संयो० क्रि०—देना।

लुटावना*†-क्रि० स० दे० "लुटाना"।

लुटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा] जल भरने या रखने का धातु का छोटा बरतन। छोटा लोटा।

लुटेरवा†-संज्ञा पुं० [हिं० लुटेरा] एक प्रकार का पक्षी।

लुटेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लूटना + एरा (प्रत्य०)] ज़बरदस्ती छीन लेनेवाला। डर दिखाकर या मार पीटकर दूसरे का माल ले लेनेवाला। लूटनेवाला। डाकू। दस्यु।

लुट्टर-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भेड़ जिसके कान छोटे हों। (गड़ेरिये)

लुठना*-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) भूमि पर पड़ना। सारा शरीर पृथ्वी से लगाए हुए पड़ना। लोटना। उ०—राम सखा ऋषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।—तुलसी। (२) पृथ्वी पर नीचे ऊपर फिरते हुए बढ़ना या गमन करना। लुढ़कना।

लुठाना*-क्रि० स० [हिं० लुठना] (१) भूमि पर या नीचे डालना। लोटाना। उ०—माथो चरणारविंद ऊपर लुठाय रघुराय सु उठाय कियो छाती सों लगावनो।—हृदयराम। (२) लुढ़काना।

लुड़कना-क्रि० अ० दे० "लुढ़कना"।

लुड़काना-क्रि० स० दे० "लुढ़काना"।

लुड़की-संज्ञा स्त्री० दे० "लुढ़की"।

लुड़खुड़ाना-क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लुढ़कना-क्रि० अ० [सं० लुठन, हिं० लुठना + क] (१) ज़मीन पर नीचे ऊपर फिरते हुए बढ़ना या चलना। गेंद की तरह नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए गमन करना। ढुलकना। जैसे,—पहाड़ की चोटी से एक पत्थर लुढ़कता हुआ आया।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) गिरकर नीचे ऊपर होते हुए गमन करना। जैसे,—सँभलकर खड़े होना; नहीं तो लुढ़क पड़ोगे।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—लुढ़कना पुड़कना = गिरना पड़ना।

लुढ़काना-क्रि० स० [हिं० लुढ़कना] ज़मीन पर इस प्रकार चलाना कि नीचे ऊपर होता हुआ कुछ दूर बढ़ता जाय। इस प्रकार फेंकना या छोड़ना कि चक्कर खाते हुए कुछ दूर चला जाय। ढुलकाना। जैसे,—गेंद लुढ़काना, टीले पर से पत्थर लुढ़काना।

संयो० क्रि०—देना।

लुढ़ना*†-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) लुढ़कना। (२) गिरना। उ०—बरही मुकुट लुढ़त अवनी पर नाहिन निज भुज भरतु।—सूर।

लुढ़ाना*-क्रि० स० दे० "लुढ़काना"। उ०—(क) माखन खाय खवावत ग्वाल जो उबर्‌यो सो दियो लुढ़ाइ।—सूर। (ख) मियाँ जोड़ें पली पली और खुदा लुढ़ावें कुप्पा। (कहावत)

लुढ़ियाना-क्रि० स० [हिं० लुंडी या लोढ़िया] गोल बत्ती की तरह उभरी हुई सिलाई करना। गोल तुरपना।

संयो० क्रि०—देना।

लुतरा-वि० [देश०] [स्त्री० लुतरी] (१) इधर की उधर लगानेवाला। पीठ पीछे निंदा करके झगड़ा लगानेवाला। चुग़लख़ोर। (२) नटखट। शरारती।

लुतरी-वि० स्त्री० [हिं० लुतरा] झगड़ा लगानेवाली। चुग़लख़ोर। (स्त्री)

लुत्थ*-संज्ञा स्त्री० दे० "लोथ"।

लुत्फ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। (२) भलाई। ख़ूबी। उत्तमता। (३) मज़ा। आनंद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) स्वाद। ज़ायक़ा। (५) रोचकता।

क्रि० प्र०—आना।—मिलना।

मुहा०—लुत्फ़ उठाना = मज़ा पाना।

लुदकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोंदा] दही में बनी हुई भाँग। लुड़की।

लुदरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लुनना-क्रि० स० [सं० लवन = काटना, लून = कटा हुआ + ना] (१) खेत की तैयार फसल काटना। खेत काटना। उ०—(क) अनबोए लुनना नहीं, बोए लुनना होय।—कबीर। (ख) करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बया सो लुनिय, लहिय जो दीन्हा।—तुलसी। (२) दूर करना। हटाना। नष्ट करना। उ०—कस्तूरी अगर सार, चोवा रस घनसार दीपक हजार तें अँध्यार लुनियत है।—देव।

लुनाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना + आई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। सलोनापन। ख़ूबसूरती। उ०—(क) टूटे हरा हियरा पै परे पदमाकर लीक सी लंक लुनाई।—पद्माकर। (ख) राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी।—देव।

लुनेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लुनना] खेत की फ़सल काटनेवाला। लुननेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० लोन] एक जाति जिसे लोनिया या नोनिया भी कहते हैं। यह जाति पहले नमक निकालती थी।

लुन्दी-संज्ञा स्त्री० [देश०] मँजकर तैयार लपेटी हुई पाई। (जुलाहे)

लुपनाॐ-क्रि० अ० [सं० लुप] छिपना। गुप्त होना। उ०—एक दोय तीन लुपैं लुप्तोपमा हैं आठ तिनको उदाहरण ही सों पहिचानिये।—दूलह।

लुप्त-वि० [सं०] (१) छिपा हुआ। गुप्त। अंतर्हित। (२) ग़ायब। अदृश्य। (३) नष्ट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० चोरी का माल। चौर्य-धन।

लुप्तोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा अलंकार जिसमें उसका कोई अंग (जैसे,—उपमेय, धर्म, वाचक शब्द) लुप्त हो, अर्थात् न कहा गया हो।

लुबरी-संज्ञा स्त्री० [अ० लुब = लासा] किसी तरल पदार्थ के नीचे की बैठी हुई मैल। तरौंछ। गाद।

लुबुधॐ‡-वि० दे० "लुब्ध"। उ०—व्याध बिसिख बिलोक नहिं कल गान लुबुध कुरंग।—तुलसी।

संज्ञा पुं० लुब्धक। अहेरी। बहेलिया।

लुबुधना†-क्रि० अ० [हिं० = लुबुध + ना (प्रत्य०)] लुब्ध होना। मोहित होना। लुभाना। उ०—(क) बीन नाद सुनि लुबुधे मृग ज्यों त्यों भइ दसा हमारी।—सूर। (ख) भँवर न उड़हिं जो लुबुधे बासा।—जायसी।

संयो क्रि०—जाना।

लुब्ध-वि० [सं०] (१) लोभ युक्त। प्रबल आकांक्षा-युक्त। अत्यंत राग-युक्त। लुभाया हुआ। ललचाया हुआ। (२) तन मन की सुध भूला हुआ। मोहित। उ०—जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर निकर परम सुगति हू लोभ नाहिंन।—तुलसी।

संज्ञा पुं० व्याध। बहेलिया। लुब्धक।

लुब्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पशु पक्षियों को लालच दिखाकर पकड़ लेनेवाला। व्याध। बहेलिया। शिकारी। उ०—सूरदास प्रभु सों मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तज्यो।—सूर। (२) उत्तरी गोलार्द्ध का एक बहुत तेजवान तारा। (आधुनिक)

लुब्धनाॐ-क्रि० अ० दे० "लुबुधना"।

लुब्धापति-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार प्रौढ़ा नायिका का चतुर्थ भेद। वह प्रौढ़ा नायिका जो पति और कुल के सब लोगों की लज्जा करे। यथा—सो लुब्धापति जानिए केशव प्रगट प्रमान। कानि करै कुलपति सबै प्रभुता प्रभुहि समान।—केशव।

लुब्बलुबाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) गूदा। सार। (२) किसी बात का तत्त्व। सारांश।

लुभाना-क्रि० अ० [हिं० लोभ + आना (प्रत्य०)] (१) लुब्ध होना। अत्यंत रागयुक्त होना। मोहित होना। आकर्षित होना। रीझना। उ०—कूबरी के कौन गुन पै रहे कान्ह लुभाइ।—सूर। (२) लालसा करना। लालच में पड़ना। (३) तन मन की सुध भूलना। मोह में पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) लुब्ध करना। अत्यंत रागयुक्त करना। अपने ऊपर गहरा प्रेम उत्पन्न करना। मोहित करना। रिझाना। (२) प्राप्त करने की गहरी चाह उत्पन्न करना। ललचाना। जैसे,—उसकी कारीगरी ने हमें लुभा लिया। (३) सुध बुध भुलाना। भ्रांत करना। मोह में डालना। उ०—सूर हरि की प्रबल माया देति मोहिं लुभाय।—सूर।

संयो० क्रि०—लेना।

लुरकना†-क्रि० अ० [सं० लुलन = भूलना] अधर में टँगकर हिलना डोलना। नीचे की ओर झुकना। लटकना। झूलना।

लुरका-संज्ञा पुं० [हिं० लुरकना = लटकना] झुमका।

लुरकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुरकना = लटकना] कान में पहनने की बाली। मुरकी। उ०—देव जगामग जोतिन की लर मोतिन की लुरकीन सों नाधी।—देव।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा स्त्री० दे० "लुदकी"।

लुरनाॐ†-क्रि० अ० [सं० लुलन = भूलना] (१) ऊपर से नीचे तक चली आई हुई वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना। लटकना। झूलना। लहराना। उ०—(क) छतियाँ पर लोल लुरैं अलकैं सिर फूल अरूझि सो यों दुति है।—बेनी। (ख) झपकैं पलकैं बिथुरी अलकैं अरु हार लुरैं मुकुता गल में।—सुंदर। (२) ढल पड़ना। झुक पड़ना। टूट पड़ना। (३) कहीं से एक बारगी आ जाना। उ०—ब्रह्म की बिभूति, करतूति बिश्वकर्मा की, साहिबी सकल पुरहूत की लुरै परी।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(४) आकर्षित होना। लुभा जाना। लट्टू होना। प्रवृत्त होना। उ०—संग ही संग बसौ उनके, अँग अंगन देव तिहारे लुरी है।—देव।

संयो० क्रि०—पड़ना।

लुरियाना†-क्रि० अ० [हिं० लुरना] प्रेमपूर्वक स्पर्श करना या अंग पर अंग रखना। प्यार करना।

लुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेरुवा = बछड़ा ?] वह गाय जिसे बच्चा दिए थोड़े ही दिन हुए हों। उ०—लाडिली लीली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहाँ आँग लगाइकै।—केशव।

लुलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लुलित] लटकते हुए इधर उधर हिलना डोलना। आंदोलित होना। झूलना।

लुलनाॐ-क्रि० अ० [सं० लुलन] लटकते हुए हिलना डोलना। झूलना। लहराना। दोलित होना।

लुलित-वि० [सं०] लटकता या झूलता हुआ। आंदोलित।

लुवार†-वि० [हिं० लू] गरमी के दिनों की तपी हुई गरम हवा। तप्त वायु। लू।

क्रि० प्र०—चलना।

लुशाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय जो आसाम और कछार में होती है।

लुहँगी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लौहांग] लोहा जड़ी हुई लाठी। ऐसी लाठी जिसके मोटे सिरे पर लोहा जड़ा रहता है। लोहबंदा।

लुहना ॐ-क्रि० अ० [सं० लुभन] लुभाना। ललचना। मोहित होना। उ०—अरिकै वह आजु अकेली गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही।—देव।

लुहनी†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिन रह सकता है।

लुहार-संज्ञा पुं० [सं० लौहकार, प्रा० लोहार] [स्त्री० लुहारिन, लुहारी] (१) लोहे का काम करनेवाला। लोहे की चीज़ें बनानेवाला। (२) वह जाति जो लोहे की चीज़ें बनाती है।

लुहारिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार] लुहार जाति की स्त्री।

लुहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार] (१) लुहार जाति की स्त्री। (२) लोहे की वस्तु बनाने का काम। जैसे,—वह लुहारी सीख रहा है।

लुहुर†-संज्ञा स्त्री० [सं० लघु, हिं० लहुरा] छोटे कानोंवाली भेड़। (गड़ेरिये)

लू-संज्ञा स्त्री० [सं० लुक = जलना। हिं० लौ = लपट] गरमी के दिनों की तपी हुई हवा। गरम हवा का लपट सा झोंका। तप्त वायु।

क्रि० प्र०—चलना।—बहना।

मुहा०—लू मारना या लगना = शरीर में तपी हवा लगने से ज्वर आदि उत्पन्न होना।

लूक-संज्ञा स्त्री० [सं० लुक = जलना] (१) अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। (२) पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हुआ हो। जलती हुई लकड़ी। लुत्ती। उ०—दोउ लियो ठीक बिचारि। इक लूक लीन्हों बारि।—रघुराज।

मुहा०—लूक लगाना = जलती लकड़ी या बत्ती छुलाना। आग लगाना। उ०—मारि मुलूक में लूक लगायो।—लाल।

(३) गरमी के दिनों की तपी हवा। तप्त वायु का झोंका जो शरीर में लपट की तरह लगे। लू। उ०—ए व्रजचंद! चलौ किन वा व्रज, लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।—पद्माकर। (४) टूटा हुआ तारा। उल्का। लूक। उ०—(क) आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिन हीं लूक परन विधि लागे।—तुलसी। (ख) सुमिरि राम तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो।—तुलसी।

लूकना ॐ-क्रि० स० [हिं० लूक + ना] आग लगाना। जलाना। उ०—हिय अंदर रावरो मंदिर है तेहि यों बिरहानल लूकिए ना।

ॐ‡ क्रि० अ० दे० "लुकना"। उ०—लूकि केते रहे, धूकि केते गए, चूकि केते ढए, सूकि केते चहे।—सूदन।

लूका-संज्ञा पुं० [सं० लुक = जलना] [स्त्री० अल्पा० लूकी] (१) अग्नि की ज्वाला। आग की लौ या लपट। उ०—नखत अकासहि चढ़े दिपाई। तत तत लूका परहि दिखाई।—जायसी। (२) पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हो। लकड़ी जिसके एक सिरे में आग हो। लुत्ती।

मुहा०—लूका लगाना = आग छुलाना। आग लगाना। जलाना। मुँह में लूका लगाना = मुँह जलाना। तिरस्कार करना। (स्त्रियों की गाली)

संज्ञा पुं० [देश०] मछली फँसाने का एक प्रकार का जाल।

लूकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूका] (१) आग की चिनगारी। स्फुलिंग। उ०—हिया फाट वह जब ही कूकी। परैं आँसु सब होइ होइ लूकी।—जायसी। (२) पतली लकड़ी या तिनके का टुकड़ा जिसका सिरा जलता हो। लूका।

मुहा०—लूकी लगाना = आग लगाना। जलाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूखा *-वि० [सं० लुच = रुच, रुखा] बिना चिकनाहट का। रुखा। उ०—मना मनोरथ छाँड़ि दे तेरा किया न होय। पानी में घी नीकसै लूखा खाइ न कोय।—कबीर।

लूगड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] (१) वस्त्र। कपड़ा। (२) ओढ़नी। चादर।

लूगा†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) वस्त्र। कपड़ा। उ०—रोटी लूगा नीके राखैं आगेहु की बेद भाषै भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं।—तुलसी। (२) धोती।

लूघा-संज्ञा पुं० [देश०] क़ब्र खोदनेवाला। गोरकन। (ठग)

लूट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना] (१) बलात् अपहरण। किसी के माल का ज़बरदस्ती छीना जाना। किसी की धन संपत्ति या वस्तु का बलपूर्वक लिया जाना। डकैती। जैसे,—(क) दंगे में बाज़ार की लूट हुई। (ख) सिपाहियों को लूट का माल खूब मिला।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—मचना।—होना।

यौ०—लूट खूँद, लूटमार, लूटपाट = लोगों को मारने पीटने और उनका धन छीनने का व्यापार। डकैती और दंगा।

(२) लूटने से मिला हुआ माल। अपहृत धन। जैसे,—लूट में सब सिपाहियों का हिस्सा लगा।

लूटक-संज्ञा पुं० [हिं० लूट] (१) ज़बरदस्ती छीननेवाला। लूटनेवाला। (२) डाकू। लुटेरा। (३) कांति हरनेवाला। शोभा में बढ़ जानेवाला। उ०—असनि सरासन लसत, सुचि सर कर, तून कटि मुनिपट लूटक बसन के।—तुलसी।

लूटखूँद-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना + खूँदना] लोगों को मारने और उनका धन छीनने का व्यापार। डाका और दंगा। लूटमार।

लूटना-क्रि० स० [सं० लुट् = लूटना] (१) बलात् अपहरण करना। ज़बरदस्ती छीनना। भय दिखाकर, मार पीटकर या छीन झपटकर ले लेना। जैसे,—रास्ते में डाकुओं ने सारा माल लूट लिया। उ०—(क) केशव फूलि नचैं भ्रकुटी, कटि लूटि नितंब लई बहु काली।—केशव। (ख) जानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में केहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर। (ग) चोर चख चोरनि चलाक चित चोरी भयो, लूटि गई लाज, कुल कानि को कटा भयो—पद्माकर।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—लूटना पाटना। लूटना मारना।

मुहा०—लूट खाना = दूसरे का धन किसी न किसी प्रकार ले लेना।

(२) बरबाद करना। तबाह करना। (३) धोखे से या अन्यायपूर्वक किसी का धन हरण करना। अनुचित रीति से किसी का माल लेना। जैसे,—कचहरी में जाओ, तो अमले लूटते हैं।

मुहा०—(किसी को) लूट खाना = किसी का धन अनुचित रीति से ले लेना। किसी का माल मारना।

(४) बहुत अधिक मूल्य लेना। वाजिब से बहुत ज़्यादा कीमत लेना। ठगना। जैसे,—वह दूकानदार गाहकों को खूब लूटता है। (५) मोहित करना। मुग्ध करना। वशीभूत करना। मन हाथ में करना। उ०—छूटी घुँघरारी लट, लूटी हैं बधूटी बट, टूटी चट लाज तें न जूटी परी कहरैं।—दीनदयाल।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सुख या आनन्द भोग करने के अर्थ में भी सुख, आनंद, मौज आदि कुछ शब्दों के साथ होता है। जैसे,—आनंद लूटना, सुख लूटना।

लूटि⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "लूट"। उ०—गए कंचुकि बँद टूटि लूटि हिरदय सो पाई। करति मनहि मन सेव निकट रथ दयो देखाई।—सूर।

लूत-संज्ञा पुं० [इबरानी] यहूदियों के एक पुराने पैग़ंबर का नाम।

लूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकड़ी। ऊर्णनाभ। (२) फफोले की तरह की फुंसी जो कहते हैं कि मकड़ी के मूतने से निकलती है। वृक्का। मर्मव्रण।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में 'लूता' रोग कई प्रकार का कहा है और कई प्रकार की विषैली मकड़ियों की चर्चा है। जैसे,—त्रिमंडला, श्वेता, कपिला, रक्तलूता इत्यादि। विष संबंध में कहा गया है कि मकड़ी के थूक, नख, मूत्र, रज, शुक्र और पुरीष के द्वारा विष का संचार होता है। लूता रोग यदि अच्छा न हो, तो आदमी मर जाता है।

(३) पिपीलिका। च्यूँटी।

संज्ञा पुं० [हिं० लूका] [स्त्री० अल्पा० लूती] लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो। लूका। लुआठा। उ०—सोवत मनसिज आनि जगायो पठै सँदेस स्याम के दूते। विरह-समुद्र सुखाय कौन बिधि किरचक योग अग्नि के लूते।—सूर।

मुहा०—लूता लगाना = आग लगाना।

लूती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूता] पतली लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो। लुआठी।

मुहा०-लूती लगाना = आग लगाना।

लून-वि० [सं०] छिन्न। कटा हुआ।

संज्ञा पुं० दे० "लोन"।

लूनक-संज्ञा पुं० [हिं० लोना] (१) सज्जी खार। (२) अमलोनी का साग।

लूनना⊛†-क्रि० स० दे० "लुनना"।

लूम-संज्ञा पुं० [सं०] लांगुल। पूँछ। दुम।

संज्ञा पुं० सम्पूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय रात ११ दंड से १५ दंड तक है। यह मेघ राग का पुत्र कहा गया है। (हनुमत)

संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू की लच्छ

संज्ञा पुं० [अं० हैंड लूम] कपड़ा बुनने का करघा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लूमड़ी †-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लूमना ॐ-क्रि० अ० [सं० लंबन = दोलन] लटकना । झूलना । लहराना । उ०—(क) लपकि चढ़े हरि तासु पै लूमि डहडही डार । कियो सदंब कदंब हूँ नाथ कृपा आगार ।—व्यास । (ख) जूमि जूमि बरसाती तरिवर लहरत तहँ लता रहीं लूमि लूमि ।—देव स्वामी ।

लूमर-वि० [देश०] सयाना । जवान । युवा । (व्यंग्य या तिरस्कार) जैसे,—इतने बड़े लूमर हुए, कुछ शऊर न आया ।

लूरना ॐ-क्रि० अ० दे० "लुरना" । उ०—सिरसि जटा कलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।—तुलसी ।

लूला-वि० [सं० लून = कटा हुआ] [स्त्री० लूली] (१) जिसका हाथ कट गया हो या बेकाम हो गया हो । बिना हाथ का । लुंजा । टुंडा । (२) बेकाम । असमर्थ । उ०—कोकिल के—की कुलाहल हुल उठी उर में, मति की गति लूली ।

लूलू वि० [देश०] मूर्ख । बेवकूफ़ । उजड्ड । उल्लू । बुद्धिहीन ।

मुहा०—लूलू बनाना = (१) बेवकूफ़ बनाना । बातों में मूर्ख प्रमाणित करना । (२) उपहास करना ।

लूसन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़ ।

लूह †-संज्ञा स्त्री० दे० "लू" ।

लूहर †-संज्ञा स्त्री० दे० "लू" । उ०—ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोध सो जो बहि लूहर लावत भारे ।—केशव ।

लेंगा‡-संज्ञा पुं० दे० "लहँगा" ।

लेंड़-संज्ञा पुं० [सं० लेण्ड] [स्त्री० अल्पा० लेंड़ी] मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है । बँधा मल ।

लेंड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेंड] (१) मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है । बँधा मल । (२) बकरी या ऊँट की मेंगनी । बकरी या ऊँट का मल जो बँधी गोलियों के आकार में निकलता है ।

लेंडुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] कागज़ का एक खिलौना जो उछाल कर फेंक देने पर ज़मीन में गिरते ही फिर खड़ा हो जाता है । इसे खड़ेखाँ और मतवाला भी कहते हैं ।

लेंस-संज्ञा पुं० [अं०] शीशे का ताल जो प्रकाश की किरनों को एकत्र या केंद्रीभूत करे । जैसे,—चश्मे का लेंस, फोटोग्राफी का लेंस ।

लेंहड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] झुंड । दल । समूह । क़तार । ग़ल्ला । (चौपायों के लिये) उ०—सिंहन के लेंहड़े नहीं, हंसन की नहिं पाँत । लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ।—कबीर ।

ले-अव्य० [हिं० लेना, लेकर] आरंभ होकर । शुरू होकर । जैसे,—यहाँ से ले वहाँ तक ।

‡ [सं० लग्न, हिं० लग, लगि] तक । पर्य्यंत ।

क्रि० स० दे० "लेना" ।

लेइ†-अव्य० [सं० लग्न, हिं० लगि] तक । पर्य्यंत ।

लेई-संज्ञा स्त्री० [सं० लेहिन, लेही या लेह्य] (१) पानी में घुले हुए किसी चूर्ण को गाढ़ा करके बनाया हुआ लसीला पदार्थ जिसे उँगली से उठाकर चाट सकें । अवलेह । (२) आटे को भूनकर उसमें शरबत मिलाकर गाढ़ा किया हुआ पदार्थ जो खाया जाता है । लपसी ।

यौ०—लेई पूँजी = सारी जमा । सर्वस्व ।

(३) घुला हुआ आटा जो आग पर पकाकर गाढ़ा और लसदार किया गया हो और जो काग़ज़ आदि चिपकाने के काम में आवे । (४) सुरखी मिला हुआ बरी का चूना जो गाढ़ा घोला जाता है और ईंटों की जोड़ाई में काम आता है ।

लेक्चर-संज्ञा पुं० [अं०] व्याख्यान । वक्तृता ।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—लेक्चर झाड़ना = धूमधाम से व्याख्यान देना । (व्यंग्य)

लेक्चरबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [अं० लेक्चर + फ़ा० बाज़ी] खूब लेक्चर देने की क्रिया ।

लेख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिखे हुए अक्षर । लिपि । (२) लिखी हुई बात । (३) लिखावट । लिखाई । (४) लेखा । हिसाब किताब । उ०—गुन गुन बिधि पूछब होइहि लेख अउ जोख ।—जायसी । (५) देव । देवता । उ०—चढ़े बिमानन लेख अलेखन बर्षहिं मुदित प्रसूना ।—रघुराज ।

ॐवि० (१) लेख्य । लिखने योग्य । (२) लेखा करने योग्य । हिसाब के लायक़ ।

लेखक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० लेखिका] (१) जो किसी बात को अक्षरों में उतारे । लिखनेवाला । लिपिकार । (२) किसी विषय पर लिखकर अपने विचार प्रकट करनेवाला । ग्रंथकार । जैसे,—इस पुस्तक का लेखक कौन है ? (३) एक प्रेत का नाम । उ०—लेखक कहता बात बिचारी । बाम्हन सुन अपराध हमारी ।—सबल० ।

लेखन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेखनीय, लेख्य] (१) लिखने का कार्य्य । अक्षर-विन्यास । अक्षर बनाना । (२) लिखने की कला या विद्या । (३) चित्र बनाना । उ०—जल बिनु तरँग, भीति बिनु लेखन बिनु चेतहि चतुराई ।—सूर । (४) हिसाब करना । लेखा लगाना । कूतना । (५) छर्दन । उलटी करना । वमन करना । कै करना । (६) औषध द्वारा रसादि सप्त धातुओं या वात आदि दोषों को शोषण करके पतला करना । (७) इस काम के लिये उपयुक्त औषध । (८) भोजपत्र, जिस पर प्राचीन काल में लिखा जाता था । (९) खाँसी ।

लेखनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसादि सप्त धातु या वातादि त्रिदोष और वमन इत्यादि को पतला कर देनेवाली पिचकारी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखनाॐ-क्रि० स० [सं० लेखन] (१) अक्षर या चित्र बनाना। लिखना। उ०—कुंदन-लीक कसौटी में लेखी सी देखी सुनारि सु-नारि सलोनी।—देव। (२) हिसाब, संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। गिनती करना।

यौ०—लेखना जोखना = (१) नाप, तौल या गिनती करके संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। ठीक ठीक अंदाज़ करना। हिसाब करना। (२) जाँच करना। परीक्षा करना। उ०—लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित, नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।—तुलसी।

(३) मन ही मन ठहराना। समझना। सोचना। विचारना। मानना। उ०—(क) हौं ओहि आपन दरपन लेखौं। करौं सिंगार भोर मुख देखौं।—जायसी। (ख) जे जे तव सूर सुभट कीट सम न लेखौं।—सूर। (ग) सिय सौमित्रि राम-छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं।—तुलसी।

लेखनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वस्तु जिससे लिखें या अक्षर बनावें। वर्णतूलिका। कलम। लिखनी।

मुहा०—लेखनी उठाना = लिखना आरंभ करना।

लेखनीय-वि० [सं०] लिखने योग्य।

लेखपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] लिखित पत्र। लिखा हुआ काग़ज़। दस्तावेज़।

लेखप्रणाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की शैली। लिखने का ढंग।

लेखर्षभ-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र।

लेखशैली-संज्ञा स्त्री० [सं०] लेख प्रणाली।

लेखहार-संज्ञा पुं० [सं०] चिट्ठी ले जानेवाला। पत्र-वाहक।

लेखा-संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] (१) गणना। गिनती। हिसाब किताब। जैसे,—(क) आमदनी और ख़र्च का लेखा लगा लो। (ख) इसका लेखा लगाओ कि वह आठ कोस रोज़ चलकर वहाँ कितने दिनों में पहुँचेगा। (२) ठीक ठीक अंदाज़। कूत।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) रुपए पैसे या और किसी वस्तु की गिनती आदि का ठीक ठीक लिखा हुआ ब्योरा। आय व्यय आदि का विवरण। जैसे,—तुम अपना लेखा पेश करो; रुपया चुका दिया जाय।

यौ०—लेखा बही। लेखा पत्तर।

मुहा०—लेखा जांचना = यह देखना कि हिसाब ठीक है या नहीं। लेखा डेवढ़ करना = (१) हिसाब चुकता करना। (२) हिसाब बराबर करना। (३) चौपट करना। नाश करना। लेखा पूरा या साफ़ करना = हिसाब साफ़ करना। पिछला देना चुकाना। लेखा डालना = हिसाब किताब खोलना। देन लेन के व्यवहार की बही में लिखना।

(४) अनुमान। विचार। समझ।

मुहा०—किसी के लेखे = किसी की समझ में। किसी के विचार के अनुसार। जैसे,—हमारे लेखे तो सब बराबर हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिपि। लिखावट। (२) रेखा। लकीर। जैसे,—चंद्रलेखा।

लेखाबही-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेखा + बही] वह बही जिसमें रोकड़ के लेन देन का ब्योरा रहता है।

लेखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिखनेवाली। (२) ग्रंथ या पुस्तक बनानेवाली।

लेखित-वि० [सं०] लिखाया हुआ। लिखवाया हुआ।

लेख्य-वि० [सं०] (१) लिखने योग्य। (२) जो लिखा जाने को हो।

संज्ञा पुं० (१) लिखी बात। लेख। (२) दस्तावेज़।

विशेष—धर्मशास्त्र में 'लेख्य' मनुष्य-प्रमाण के दो भेदों में एक से है। इसके भी दो भेद हैं—शासन और जानपद। (चीरक)

लेज†-संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] रस्सी। डोरी।

लेज़म-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक प्रकार की नरम और लचकदार कमान जिससे धनुष चलाने का अभ्यास किया जाता है। (२) वह कमान जिसमें लोहे की जंज़ीर लगी रहती है और कटोरियाँ पड़ी रहती हैं और जिससे पहलवान लोग कसरत करते हैं।

विशेष—इसे हाथ में लेकर कई तरह के पैंतरों और बैठकों के साथ कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—भाँजना।—हिलाना।

लेजरंग-संज्ञा पुं० [लेज ? + हिं० रंग] मरकत या पन्ने की एक रंगत जो उसका गुण मानी जाती है।

लेजिस्लेटिव काउंसिल-संज्ञा स्त्री० [अं०] प्रधान शासक या गवर्नर की वह सभा जो देश के लिये कानून बनाती है।

लेजुर†-संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] (१) रस्सी। डोरी। (२) कूएँ से पानी खींचने की रस्सी। उ०—लेजुरि भइउँ, नाथ, बिनु तोही।—जायसी।

लेजुरा-संज्ञा पुं० दे० "लेजुर"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लेजुरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लेजुर"।

लेट-संज्ञा स्त्री० [देश०] सुरखी, कंकड़ और चूना पीटकर बनाई हुई कड़ी चिकनी सतह। गच।

लेटना-क्रि० अ० [सं० लुंठन, हिं० लोटना] (१) हाथ पैर और सारा शरीर जमीन या और किसी सतह पर टिकाकर पड़ रहना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठ ज़मीन या बिस्तरे आदि से लगाकर बदन की सारी लम्बाई उस पर ठहराना। खड़ा या बैठा न रहना। पौढ़ना। जैसे,—जाकर चारपाई पर लेट रहो।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

(२) किसी चीज का बगल की ओर झुककर जमीन पर गिर जाना।

मुहा०—खेती लेट जाना = (१) फ़सल का अधिक पानी या हवा के कारण सीधा खड़ा न रहना, झुककर जमीन पर पड़ जाना। (२) नत होना। विनीत हो जाना। प्रभुत्व मान लेना। गुड़ लेट जाना = ताव बिगड़ने के कारण गुड़ का गीला और चिपचिपा हो जाना।

(३) मर जाना।

लेटपेट—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय।

लेटर बाक्स—संज्ञा पुं० [अं०] डाकखाने का वह संदूक़ जिसमें कहीं भेजने के लिये लोग चिट्ठियाँ डालते हैं। चिट्ठी डालने का संदूक़।

लेटाना—क्रि० स० [हिं० लेटना का प्रेर०] दूसरे को लेटने में प्रवृत्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

लेड—संज्ञा पुं० [अं०] (१) सीसा नामक धातु। (२) प्रायः दो अंगुल चौड़ी सीसे की ढली हुई पत्तर की तरह पतली पटरी जो छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में अक्षरों को ऊपर नीचे होने से रोकने के लिये दी जाती है।

लेड मोल्ड—संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में रखने के लिये सीसे की पटरियाँ ढालने का साँचा। लेड ढालने का साँचा।

लेडी—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) भले घर की स्त्री। महिला। (२) लार्ड या सरदार की पत्नी।

लेथो—संज्ञा पुं० दे० "लीथो"।

लेद—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत जो फागुन में गाया जाता है।

लेदवा—संज्ञा पुं० [देश०] खेत में होनेवाली एक प्रकार की ककड़ी। फूट।

लेदार—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

लेदी—संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) जलाशयों के किनारे रहनेवाली एक प्रकार की छोटी चिड़िया। उ०—बोलहिं सुआ ढेक बक लेदी। रही अबोल मीन जल-भेदी।—जायसी। (२) घास का पूला जिसे हल के नीचे के भाग में इसलिये बाँध देते हैं जिसमें चौड़ी कूँड़ बने।

लेन—संज्ञा पुं० [हिं० लेना] (१) लेने की क्रिया या भाव।

यौ०—लेन देन।

(२) वह रकम जो किसी के यहाँ बाकी हो या मिलनेवाली हो। लहना। पावना।

लेनदार—संज्ञा पुं० [हिं० लेन + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसका कुछ बाकी हो। जिसका ऋण चुकना हो। महाजन। लहनेदार।

लेनदेन—संज्ञा पुं० [हिं० लेना + देना] (१) लेने और देने का व्यवहार। आदान प्रदान। (२) रुपया ऋण देने और ऋण लेने का व्यवहार जो किसी के साथ किया जाय। जैसे,—हमारा उसका लेन देन नहीं है। (३) रुपए लेने देने का व्यवसाय। महाजनी। जैसे,—उसके यहाँ रुपए का लेन देन होता है।

मुहा०—लेन देन न होना = व्यवहार न होना। सरोकार न होना। संबंध या प्रयोजन न होना। उ०—हमें कछु लेन न देन है ए बीर! तुम्हारे।—सूर।

लेना—क्रि० स० [सं० लभन, हिं० लहना] (१) दूसरे के हाथ से अपने हाथ में करना। ग्रहण करना। प्राप्त करना। लाभ करना। जैसे,—उसने रुपया दिया, तो मैंने ले लिया।

संयो० क्रि०—लेना।

(२) ग्रहण करना। थामना। पकड़ना। जैसे,—छड़ी अपने हाथ में ले लो और किताब मुझे दे दो।

मुहा०—ऊपर लेना = सिर या कंधे पर रखना।

(३) मोल लेना। क्रय करना। खरीदना। जैसे,—बाज़ार में तुम्हें क्या क्या लेना है?

मुहा०—ले देना = दूसरे को मोल लेकर देना। खरीद देना।

(४) अपने अधिकार में करना। कब्जे में लाना। जीतना। जैसे,—उसने सिंध के किनारे का देश ले लिया। (५) उधार लेना। कर्ज़ लेना। ऋण ग्रहण करना। जैसे,—१००) महाजन से लिए, तब काम चला। (६) कार्य्य सिद्ध करना या समाप्त करना। काम पूरा करना। जैसे,—आधे से अधिक काम हो गया है; अब ले लिया। (७) जीतना। जैसे,—बाजी लेना। (८) भागते हुए को पकड़ना। धरना। जैसे—लेना, जाने न पावे। (९) गोद में थामना। जैसे—ज़रा बच्चे को ले लो। (१०) किसी आते हुए आदमी से आगे जाकर मिलना। अगवानी करना। अभ्यर्थना करना। जैसे—शहर के सब रईस स्टेशन पर उन्हें लेने गए हैं। उ०—भरत आइ आगे भै लीन्हे।—तुलसी। (११) प्राप्त होना। पहुँचना। जैसे,—घर लेना मुश्किल हो गया है। (१२) किसी कार्य्य का भार ग्रहण करना। किसी काम को पूरा करने का वादा करना। जिम्मे लेना। जैसे,—जब इस काम को लिया है, तब पूरा करके ही छोड़ूँगा।

मुहा०—ऊपर लेना = जिम्मे लेना। भार ग्रहण करना। जैसे—इस काम को मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) सेवन करना। पीना। जैसे—कभीकभी वे थोड़ी सी भाँग ले लेते हैं। (१४) धारण करना। स्वीकार करना। अंगीकार करना। जैसे,—योग लेना, संन्यास लेना, बाना लेना। (१५) काटकर अलग करना। काटना। जैसे,—(क) नाखून लेना, बाल लेना। (ख) धीरे से ऊपर का हिस्सा ले लो, अंदर छुरी न लगने पावे। (१६) किसी को उपहास द्वारा लज्जित करना। हँसी ठट्ठा करके या व्यंग्य बोलकर शरमिंदा करना। जैसे,—आज उनको खूब लिया।

मुहा०—आड़े हाथों लेना = गूढ़ व्यंग्य द्वारा लज्जित करना। छिपा हुआ आक्षेप करके लज्जित करना।

(१७) पुरुष या स्त्री के साथ संभोग करना। (१८) संचय करना। एकत्र करना। जैसे—मैं गुरु के लिये फूल लेने गया था।

मुहा०—ले आना = लेकर आना। लाना। ले उड़ना = (१) लेकर भाग जाना। (२) किसी बात को लेकर उस पर बहुत कुछ कह चलना। किसी बात का संकेत पाते ही वितंडावाद खड़ा करना। जैसे—तुमने तो जहाँ कोई बात सुनी, बस ले उड़े। लेने के देने पड़ना = (१) लेने के स्थान पर उलटे देना पड़ना। भले के लिए कुछ करते हुए बुरा होना। (किसी मामले में) लाभ के बदले हानि होना। (२) बहुत कठिन समय आना। जान पर आ बनना। जैसे,—देखते देखते बच्चे के लेने के देने पड़ गए। ले चलना = (१) लेकर चलना। थामकर या ऊपर उठा कर चलना। (२) चलते समय किसी को साथ करना। साथ साथ गमन कराना या पहुँचाना। जैसे—मेले में उन्हें भी ले चलो। ले जाना = ले कर जाना। पास में रखकर प्रस्थान करना। जैसे—(क) यह किताब ले जाओ; अब काम नहीं है। (ख) यह पत्र उनके पास ले जाओ। ले डालना = (१) खराब करना। चौपट करना। नष्ट करना। (२) पराजित करना। हराना। (३) किसी काम को निबटा देना। पूरा करना। समाप्त करना। ले डूबना = अपने साथ दूसरे को भी खराब करना। ले दे करना = (१) हुज्जत करना। तकरार करना। (२) बहुत प्रयत्न करना। बड़ी कोशिश करना। जैसे—बड़ी ले दे की, तब जाकर काम पूरा हुआ। ले देकर = (१) लेना देना सब जोड़कर। खर्च या देना आदि घटा कर। जैसे—सब ले देकर १००) बचते हैं। (२) सब मिलाकर। जोड़ जाड़कर। जैसे,—ले देकर इतने ही रुपए तो होते हैं। (३) बड़ी मुशकिल से। कठिनता से। लेना देना = (१) लेने और देने का व्यवहार। (२) रुपया उधार देने और लेने का व्यवसाय। लेना देना होना = मतलब या प्रयोजन होना। सरोकार होना। जैसे,—मुझे किसी से कुछ लेना देना है जो परवा करूँ! लेना एक न देना दो = कुछ मतलब नहीं। कुछ प्रयोजन नहीं। कुछ सरोकार नहीं। उ०—माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो लैबे को एक न दैबे को दोऊ।—तुलसी। ले निकलना = लेकर चल देना। ले पड़ना = (१) अपने साथ जमीन पर गिरा देना। (२) संभोग करने लगना। ले पालना = गोद लेना। दत्तक लेना। ले बैठना = (१) बोझ लिए डूब जाना। (नाव आदि का) (२) अपने साथ नष्ट या खराब करना। (३) किसी व्यवसाय का नष्ट होकर लगे हुए धन को नष्ट करना। जैसे—यह कारखाना सारी पूँजी ले बैठेगा। ले भागना = लेकर भाग जाना। ले रखना = लेकर रख छोड़ना। ले मरना = अपने साथ नष्ट या बरबाद करना। कान में लेना = सुनना। उ०—करैं घरी दस ता मैं कोऊ जो खबरि देत लेत नहिं कान और मरवावही।—प्रियादास।

ले = इस शब्द का प्रयोग किसी को संबोधन करके इन अर्थों का बोध कराने के लिये किया जाता है—(१) अच्छा, जो तू चाहता है, वही होता है। जैसे—ले, मैं चला जाता हूँ, जो चाहे सो कर। (२) अच्छा जो तू किसी तरह नहीं मानता है, तो मैं यहाँ तक करता हूँ। जैसे,—ले, तेरे हाथ जोड़ूँ, क्यों न गावेगी?—हरिश्चन्द्र। (३)(किसी के प्रतिकूल कोई बात हो जाने पर उसे चिढ़ाने या लज्जित करने के लिये) देख। कैसा फल मिला। जैसे,—(क) ले! और बढ़ बढ़कर बातें कर। (ख) ले! कैसी मिठाई मिली।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रिया के रूप में सकर्मक और अकर्मक दोनों क्रियाओं के धातु-रूप के आगे कहीं तो (क) केवल पूर्ति सूचित करने के लिये होता है; जैसे—इस बीच में उसने अपना काम कर लिया। और (ख) कहीं स्वयं वक्ता द्वारा किसी क्रिया का जाना सूचित करने के लिये। जैसे,—तुम रहने दो, मैं अपना काम आप कर लूँगा।

लेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीली या पानी आदि के साथ मिली हुई वस्तु जिसकी तह किसी वस्तु के ऊपर फैलाकर चढ़ाई जाय। पोतने, छोपने या चुपड़ने की चीज़। लेई के समान गाढ़ी गीली वस्तु। जैसे,—जहाँ चोट लगी है, वहाँ यह लेप चढ़ा देना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

(२) गाढ़ी गीली वस्तु की तह जो किसी वस्तु के ऊपर फैलाई जाय। (३) उबटन। बटना। (४) लगाव। संबंध।

लेपक-संज्ञा पुं० [सं०] लेप करनेवाला। पोतने या लगानेवाला।

लेपची-संज्ञा पुं० [देश०] नैपालियों की एक जाति।

लेपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेपित, लेप्य, लिप्त] गाढ़ी गीली वस्तु की तह चढ़ाना। लेई सी गीली चीज़ पोतना या छोपना।

लेपना-क्रि० स० [सं० लेपन] गाढ़ी गीली वस्तु की तह चढ़ाना। कीचड़ या लेई सी गाढ़ी चीज़ फैलाकर पोतना। छोपना।

लेपालक-संज्ञा पुं० [हिं० लेना + पालना] गोद लिया हुआ पुत्र। दत्तक पुत्र। पालक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेपी-वि० [सं० लेपिन्] लेप करनेवाला ।
संज्ञा पुं० लेखक । लिपिकार ।

लेप्य-वि० [सं०] लेपन करने योग्य । लेपनीय ।

लेप्यनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिस पर चंदन आदि का लेप लगा हो । (२) पत्थर या मिट्टी की बनी स्त्री की मूर्ति ।

लेफ्टिनेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह सहायक कर्मचारी जिसे यह अधिकार हो कि अपने से उच्च कर्मचारी के आज्ञानुसार या उसकी आज्ञा के अभाव में यथाभिमत कोई काम कर सके । जैसे,—लेफ्टिनेंट कर्नल, लेफ्टिनेंट गवर्नर, लेफ्टिनेंट जनरल इत्यादि । (२) सेना का वह अध्यक्ष जो कप्तान के मातहत होता है और कप्तान की अनुपस्थिति में सेना पर पूर्ण अधिकार रखता है ।

लेबरना†-क्रि० स० [हिं० लपेटना, लिवड़ना या लेभरना] ताने में माँड़ी लगाना । (जुलाहा)

लेबुल-संज्ञा पुं० [अं०] पते या विवरण आदि की सूचक वह चिट जो पुस्तकों, औषध आदि की पुड़ियों, बोतलों या गठरियों आदि पर लगाई जाती है । नाम-विधि ।

लेबोरेटरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शाला या मंदिर जिसमें वैज्ञानिक परीक्षाएँ की जाती हों, किसी परिक्रिया की जाँच की जाती हो, अथवा रासायनिक पदार्थ, औषधें इत्यादि बनाई या तैयार की जाती हों । प्रयोग शाला ।

लेमनेड-संज्ञा पुं० [अं०] नीबू का शरबत जो पहले नीबू के रस को शरबत में मिलाकर बनाते थे; पर जो अब नीबू के सत्त को शरबत में मिलाकर बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बंद करके रखते हैं । विलायती मीठा पानी । (यह प्रायः पाचक होता है ।)

लेमर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का जंतु जो पेड़ों पर रहता है और फल, फूल, अंकुर, पत्तियाँ, अंडे और कीड़े मकोड़े, जो पेड़ों पर रहते हैं, खाता है । पहले मेडागास्कर टापू में इसका पता लगा था । यह बंदरों से मिलता जुलता होता है । इसकी अनेक जातियों का पता चला है, जो अफ्रिका और पूर्वीय टापुओं में फिलिपाइन् और सिलीबीज तक मिलती हैं । इनके सिवा इसकी एक और जाति है, जो बिना पूँछ के होती है और मलाया, बोर्निओ, सुमात्रा आदि में मिलती है । इसकी पूँछ लंबी होती है । इसकी कुछ जातियों के जंतुओं को दिन में दिखाई नहीं देता ।

लेर-संज्ञा स्त्री० दे० "लहर" । (लश०)

लेरुआ‡-संज्ञा पुं० दे० "लड्डू" ।

लेरुआरी†-संज्ञा पुं० [हिं० लट + आरी (प्रत्य०)] वह भेंड़ जिसके गले में बालों की लट लटकी रहती है । (गड़रिया)

लेरुवा-संज्ञा पुं० [सं० लेह] बछड़ा । उ०—(क) जो न बसौं, लोल नैन, लेरुवा मरहिं सब खरक खरेई आजु सूनैं सुनियतु है ।—केशव । (ख) लाड़िली लली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहाँ अंग लगाइ कै । आजु तो केशव कैसहु लेरुवै लागत देत न कैसहूँ आइ कै ।—केशव ।

लेलिह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जूँ । लीख । (२) साँप ।

लेव-संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] (१) अच्छी तरह घुली हुई मिट्टी या पिसी हुई ओषधियाँ जो किसी स्थान पर लगाई जायँ । लेप । (२) मिट्टि आदि का लेप जो हंडी या और बर्तनों की पेंदी पर उन्हें आग पर चढ़ाने से पहले जलाने से बचाने के लिये किया जाता है । (३) दीवार पर लगाने का गिलावा । कहगिल ।

क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—देना ।

मुहा०—लेव चढ़ना = मोटा होना । मोटाई आना । (व्यंग्य)

(४) दे० "लेवा" ।

लेवक-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है ।

लेवड़ा‡-संज्ञा पुं० [हिं० लेव + ड़ा (प्रत्य०)] लेव । लेप ।

लेवा-संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] (१) गिलावा । (२) मिट्टी का गिलावा । कहगिल । (३) नाव की पेंदी का वह तख्ता जो सिरे से पतवार तक लगाया जाता है । (४) लेप । (५) पानी का इतना बरसना कि जोतने पर खेत की मिट्टी और पानी मिलकर गिलावा बन जाय ।

क्रि० प्र०—लगना ।

(६) गाय, भैंस आदि का थन ।

वि० [हिं० लेना] लेनेवाला । जैसे,—नामलेवा । जानलेवा ।

विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार केवल यौगिक शब्दों के अंत में होता है ।

यौ०—लेवा देई = लेनदेन । आदान-प्रदान । उ०—अपनो काज सँवार सूर सुनि हमहिं बतावत कूप । लेवा देई बराबर में है कौन रंक को भूप ।—सूर ।

लेवार-संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार ।
† संज्ञा पुं० [हिं० लेव] लेव । गिलावा ।

लेवारना‡-क्रि० स० दे० "लेबरना" ।

लेवाल-संज्ञा पुं० [हिं० लेना + वाल (प्रत्य०)] लेने या खरीदनेवाला ।

लेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अणु । (२) छुटाई । सूक्ष्मता । (३) चिह्न । निशान । उ०—राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोहनिसा-लव लेसा ।—तुलसी । (४) संसर्ग । लगाव । संबंध । उ०—जो कोइ कोप भरै मुख बैना । सनमुख हतै गिरा सर पैना । तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं । सो सीतल कहिये जग माहीं ।—तुलसी । (५) एक अलंकार, जिसमें किसी वस्तु के वर्णन के केवल एक ही भाग या अंश में रोचकता आती है । (६) एक प्रकार का गाना ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वि० अल्प। थोड़ा। उ०—(क) लरिका और पढ़त शाला में, तिनहिं करत उपदेस। हरि को भजन करो सबही मिलि और जगत सब लेस।—सूर। (ख) राज देन कहि दीन बन, मोहिं न सो दुख लेस। तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेस।—तुलसी।

लेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार जीव की वह अवस्था जिसके कारण कर्म जीव को बाँधता है। यह छः प्रकार की मानी गई है—कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

विशेष—इसे जैन लोग जीव का पर्य्याय भी मानते हैं।

लेष-संज्ञा पुं० (१) दे० "लेश"। (२) दे० "लेख"।

लेषना *-क्रि० स० (१) दे० "लखना"। उ०—दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सब सम लेषहिं बिपति बिहाई।—तुलसी। (२) दे० "लिखना"। उ०—सीय स्वयंबरु माई दोऊ भाई आए देषन। सुनत चली प्रमदा प्रमुदित मन, प्रेम पुलकि तन मनहुँ मदन मंजुल पेषन। निरषि मनोहरताई सुषमाई कहैं एक एक सों भूरि भाग हम धन्य आली ए दिन एषन। तुलसी सहज सनेह सुरंग सब, सो समाज चित चित्रसार लागी लेषन।—तुलसी।

लेषनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "लेखनी"।

लेषे*-संज्ञा पुं० दे० "लेखे"।

लेस †-संज्ञा पुं० दे० "लेश"।

संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कलबत्तू या किनारे पर टाँकने की इसी प्रकार की और कोई पटरी। गोटा। (२) बेल।

संज्ञा पुं० [हिं० लासा] (१) मिट्टी का गिलावा जो दीवार पर लगाने के लिये बनाया जाता है। (२) किसी वस्तु को पानी में घोलकर तैयार किया हुआ गाढ़ा गिलावा। चेप। लस।

यौ०—लेसदार = लसीला। चिपचिपा।

लेसना-क्रि० स० [सं० लेश्या = प्रकाश] जलाना। उ०—एहि विधि लेसइ दीप तेजरासि बिज्ञानमय। जातहि जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।

क्रि० स० [हिं० लेस या लस] (१) किसी चीज़ पर लेस लगाना। पोतना। (२) घर की दीवार पर मिट्टी का गिलावा पोतना। कहगिल करना। (३) चिपकाना। सटाना। (४) इधर की बात उधर लगाना। चुगली खाना। (५) दो आदमियों में विवाद उत्पन्न करने के लिये उन्हें उत्तेजित करना।

लेसो †-संज्ञा पुं० [देश०] छः ढोली पान का एक गट्टा।

लेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "अवलेह"। (२) ग्रहण का एक भेद जिसमें पृथ्वी की छाया (या राहु) सूर्य्य या चंद्रबिंब को जीभ के समान चाटता हुआ जान पड़ता है।

लेहन-संज्ञा पुं० [सं० लेहक, लेह्य] चाटना। उ०—जहँ जहँ भीर परत भक्तन को तहँ तहँ होत सहाय। स्तुति कर मन हरष बढ़ायो लेहन जीभ कराय।—सूर।

लेहना-संज्ञा पुं० [हिं० लहना] (१) खेत में कटे हुए शस्य या फसिल की वह डाँठ जो काटनेवाले मज़दूरों को काटने की मज़दूरी में दी जाती है। (२) कटी हुई फसिल का वह बाल सहित डंठल जो नाई, धोबी आदि को दिया जाता है। (३) डंठल या बयाल आदि की वह मात्रा जो उठानेवाले के दोनों हाथों के बीच में आ सके। (४) दे० "लहना"।

लेहसुआ-संज्ञा पुं० [हिं० लेस] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ चार अंगुल लंबी, तीन अंगुल चौड़ी, ऊपर को नुकीली और धारीदार होती हैं। यह बरसात में उत्पन्न होती है और बहुत कोमल तथा लसीली होती है। इसका साग भी बनाया जाता है और इसे भी पशु खाते हैं। इसके फूल नीले रंग के और छोटे छोटे होते हैं। इसकी पत्ती तेल आदि में तलने से रोटी की भाँति फूल जाती है। कनकौवा।

लेहसुर-संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों का एक औजार जिससे वे मिट्टी को मिलाते हैं। पाँसू।

लेहाज़ा-क्रि० वि० [अ०] इसलिये। इस वास्ते। इस कारण।

लेहाड़ा †-वि० दे० "लिहाड़ा"।

लेहाड़ापन-संज्ञा पुं० दे० "लिहाड़ापन"।

लेहाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिहाड़ी] अप्रतिष्ठा। अपमान। (दलाल)

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

लेहाफ़-संज्ञा पुं० दे० "लिहाफ़"।

लेह्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो चाटने के लिये हो। वह जो चाटा जाय। यह भोजन के छः प्रकारों में से एक है। चटनी। उ०—विविध भाँति के रुचिर अचारा। लेह्य चोष्य वर पेय प्रकारा।—रघुराज। (२) अवलेह।

वि० चाटने के योग्य। जो चाटा जाय।

लैंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैशेषिक दर्शन के अनुसार अनुमान प्रमाण। वह ज्ञान जो लिंग द्वारा प्राप्त हो। सूत्र में इसका स्पष्ट लक्षण न कहकर इसे उदाहरण द्वारा इस प्रकार लक्षित किया गया है कि यह इसका कार्य्य है, यह इसका कारण है, यह इसका संयोगी है, यह इसका विरोधी है, यह इसका समवायी है, आदि; इस प्रकार का ज्ञान लैंगिक ज्ञान कहलाता है। इसी को न्याय में अनुमान कहते हैं।

लैंडो-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जिसमें ऊपर टप होता है। यह टप बीच में से इस प्रकार खुलता है कि पिछला अंश पीछे की ओर और अगला आगे की ओर सिकुड़कर दब और नीचे बैठ जाता है। इसमें आमने सामने दोनों ओर बैठने की चौकियाँ होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैंप-संज्ञा पुं० [अं०] दीपक । चिराग ।

लैंॐ-अव्य० [हिं० लगना] तक । पर्यन्त ।

लैटिन-संज्ञा स्त्री० एक भाषा जो पूर्व काल में इटली देश में बोली जाती थी । किसी समय में सारे युरोप में यह विद्वानों और पादरियों की भाषा थी । इस भाषा का साहित्य बहुत उन्नत था; और इसी लिये अब भी कुछ लोग इसका अध्ययन करते हैं ।

लैन-संज्ञा स्त्री० [अं० लाइन] (१) सीधी लकीर जिसमें लंबाई मात्र हो । (२) सीमा की लकीर । (३) क़तार । पंक्ति । (४) पैदल सिपाहियों की सेना ।

यौ०—लैनडोरी = पेशखेमा ।

(५) सिपाहियों के रहने की जगह । बारक ।

लैया†-संज्ञा पुं० [हिं० लपना ?] वह धान जो अगहन में कटता है । जड़हन । शाली । लवक ।

लैवेंडर-संज्ञा पुं० [अं०] एक सुगंधित तरल पदार्थ जो एक पौधे के फूलों से निकला जाता है । यह इतर की भाँति कपड़ों में, या ठंढक पहुँचाने के लिये सिर में लगाया जाता है ।

लैसंस-संज्ञा पुं० [अं० लाइसेंस] वह प्रमाणपत्र जिसके द्वारा किसी मनुष्य को विशेष अधिकार प्रदान किया जाता है । सनद । अधिकार पत्र । जैसे,—अफ़ीम बेचने का लैसंस, एका या गाड़ी हाँकने का लैसंस, बन्दूद रखने का लैसंस ।

लैस-वि० [अं० लेस] वर्दी और हथियारों से सजा हुआ । कटिबद्ध । तैयार ।

क्रि० प्र०—होना ।

संज्ञा पुं० कपड़े पर चढ़ाने का फ़ीता ।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का वाण जिसकी नोक लंबी और बड़ी होती है । उ०—किहूँ लैस कत्ती धरत्ती घुमाई । किहूँ सैल की रेल हत्थों चलाई । –सूदन ।

संज्ञा पुं० [हिं० लेस] (१) एक प्रकार का सिरका । (२) कमानी ।

लों-अव्य० दे० "लौं" ।

लोंडी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लोला] कान का लोलक ।

लोंदा-संज्ञा पुं० [सं० लुंठन] किसी गीले पदार्थ का वह अंश जो डले की तरह बँधा हो । जैसे,—घी का लोंदा, दही का लोंदा, मिट्टी का लोंदा ।

लो-अव्य० [हिं० लेना] एक अव्यय जिसका प्रयोग श्रोता को संबोधन करके उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया जाता है । जैसे,—(क) लो ! खाली बैठे देख तुम्हें कैसी पत्र लिखाने की सूझी । (ख) लो ! चलो मैं जाता हूँ । (ग) लो ! देखते जाओ, यह क्या कर रहा है । (घ) लो ! क्या से क्या हो गया ।

लोइ ॐ-संज्ञा पुं० [सं० लोक, प्रा० लोओ या लोयो] लोग । उ०—(क) देवि बिनु करतूति कहिबो जानिहै लघु लोइ । कहौं जो मुख की समर सरि कालि कारिख धोइ ।—तुलसी । (ख) नागर नवल कुँआर वर सुंदर मारग जात लेत मन गोई । सूरश्याम मनहरण मनोहर गोकुल बसि मोहे सब लोई ।—सूर । (ग) बल बसदेव कुशल सब लोई । अर्जुन यह सुन दीने रोई ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं० रोचि, प्रा० लोई] (१) प्रभा । दीप्ति । उ०—(क) इनमें होइ दरसात है हर मूरत की लोइ । या तें लोइन कहत हैं इनसौं मिलि सब कोइ ।—रसनिधि । (ख) कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ । भूतल से निकसति कहीं बिज्जु छटा की लोइ ।—लक्ष्मण । (२) लव । शिखा । उ०—ईंधन के टारे बिना बढ़ति न पावक लोइ । फन न उठावत नागहू जो छेड्यो नहिं होइ ।—लक्ष्मण ।

लोइनॐ-संज्ञा पुं० [सं० लावण्य] लावण्य । नमकीनी । नमक । उ०—लीने हू साहस सहस, कीने जतन हजार । लोइन लोइन सिंधु तन, पैरि न पावत पार ।—लल्लूलाल ।

संज्ञा पुं० दे० "लोयन" ।

लोई-संज्ञा स्त्री० [सं० लोप्ती = प्रा० लोत्ती] गुँधे हुए आटे का उतना अंश जो एक रोटी मात्र के लिये निकालकर गोली के आकार का बनाया जाता है और जिसे बेल कर रोटी बनाते हैं । उ०—भाजी भावती है महा मोदक मही की शोभा पूरी रची है कर लोनाई बिधि लोई में ।—रघुनाथ ।

संज्ञा स्त्री० [सं० लोमीय = लोई] एक प्रकार का कम्मल जो पतले ऊन से बुना जाता है और कम्मल से कुछ अधिक लंबा और चौड़ा होता है । इसकी बुनावट प्रायः दुसुत्ती की सी होती है । उ०—सीतलपाटी टाट, लोई कम्मल ऊन के । बची न एकौ हाट, खेस निवारहि आदि है ।—सूदन ।

लोकंजन ॐ-संज्ञा पुं० [सं० लोपांजन या हिं० लुकना + अंजन] वह कल्पित अंजन जिसे आँख में लगाने से मनुष्य का अदृश्य होना माना जाता है । लोपांजन । उ०—जो कहिये बिधना ही रची सिख तें धर क्यों पग को सँग लीन्हो । जो कहिये कि बिरंचि रची है तौ देखी न जाति कितौ डग दीन्हो । कीन्हे बिचार न आवै मनै नृप संभु भनै तब मो मति चीन्हो । जो चितचोर को चित्त चुरावत राधे के लंक लोकंजन कीन्हो । —शंभु ।

लोकंदा†-संज्ञा पुं० [हिं० लोकना ?] [स्त्री० लोकंदी] विवाह में कन्या के डोले के साथ दासी को भेजना । उ०—छेरी बाघहि ब्याह होत है मंगल गावै गाई । बन के रोझ धै दायज दीन्हों गोह लोकंदे जाई ।—कबीर ।

क्रि० प्र०—जाना ।—भेजना ।

लोकंदी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोकना ?] वह दासी जो कन्या के पहले पहल ससुराल जाते समय उसके साथ भेजी जाती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी को हो।

विशेष—उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं—इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख मिलता है—पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम भूः भुव और स्वः है। ये महाव्याहृति कहलाते हैं। इन तीन महाव्याहृतियों की भाँति चार और महः, जनः, तपः और सत्यम् शब्द हैं, जो तीनों महाव्याहृतियों के साथ मिलकर सप्तव्याहृत कहलाते हैं। इन सातो महाव्याहृतियों के नाम से पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई, जिनके नाम इस प्रकार हैं—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। फिर पीछे इनके साथ सात पाताल—जिनके नाम अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान, तल, सुतल और पाताल हैं—और मिलाकर चौदह लोक किए गए। पुराणों में पातालों के नाम में मत भेद है। पद्म पुराण में इनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल बतलाए गए हैं। अग्निपुराण में अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमान्, महातल, रसातल और पाताल; तथा विष्णु पुराण में अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इनके नाम लिखे गए हैं। इस प्रकार चौदह लोक या भुवन माने गए हैं। सुश्रुत में लोक दो प्रकार का माना गया है—स्थावर और जंगम।

(२) संसार। जगत। (३) स्थान। निवासस्थान। जैसे,—ब्रह्म लोक, विष्णु लोक इत्यादि। (४) प्रदेश। दिशा। जैसे,—लोकपाल, लोकपति इत्यादि। (५) लोग। जन। उ०—माधव या लगि है जग जीजतु। जाते हरि सों प्रेम पुरातन बहुरि नयो करि कीजतु। कहँ रवि राहु भयो रिपुमति रचि बिधि संजोग बनायो। उहि उपकारि आजु यह औसर हरि दर्शन संचु पायो। कहाँ बसहिं यदुनाथ सिंधु तट कहँ हम गोकुल वासी। वह वियोग यह मिलनि कहाँ अब काल चाल औरासी। सूरदास प्रभु चरण चरचि करि सुर लोकनि रुचि मानी। तब अरु अब यह दुसह प्रमानी निमिषो पीरि न जानी।—सूर। (६) समाज। उ०—(क) सब से परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी।—सूर। (ख) सो जानव सत संग प्रभाऊ। लोकहु बेद न आन उपाऊ।—तुलसी। (७) प्राणी। उ०—उगेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।—तुलसी। (८) यश। कीर्ति। उ०—लोक में लोक बड़ो अपलोक सुकेशव दास जो होउ सो होउ।—केशव।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो बत्तख से बड़ा और ख़ाकी रंग का होता है।

लोककंटक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो समाज का कंटक, विरोधी या हानिकर हो। लोगों को कष्ट या हानि पहुँचानेवाला। दुष्ट प्राणी।

लोकक्षिति-वि० [सं०] स्वर्ग लोक का निवासी।

लोकचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

लोकजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

लोकजित्-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकतुषार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

लोकधारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

लोकधुनि*-संज्ञा स्त्री० [सं० लोकध्वनि] जनरव। अफ़वाह। उ०—चरचा चरनि सोचि रची जानि मन रघुराइ। दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी जाइ।—तुलसी।

लोकना-क्रि० स० [सं० लोपन] (१) ऊपर से गिरती हुई किसी वस्तु को भूमि पर गिरने से पहले ही हाथों से पकड़ लेना। (२) बीच में से ही उड़ा लेना। रास्ते में से ही लेना। उ०—जाते जेर सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोक लियो है।—तुलसी।

क्रि० प्र०—लेना।

लोकनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) लोकपाल। (३) बुद्ध।

लोकप, लोकपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) लोकपाल। (३) राजा।

लोकपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिक्पाल। पुराणानुसार आठ दिशाओं के अलग अलग लोकपाल हैं। यथा इंद्र पूर्व दिशा का; अग्नि दक्षिण-पूर्व का; यम दक्षिण का; सूर्य्य दक्षिण-पश्चिम का; वरुण पश्चिम का; वायु उत्तर-पश्चिम का; कुबेर उत्तर का और सोम उत्तर-पूर्व का। किसी किसी ग्रंथ में सूर्य्य और सोम के स्थान पर निर्ऋति और ईशानी या पृथ्वी के नाम मिलते हैं। (२) अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का एक नाम।

लोकपितामह-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

लोकप्रत्यय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संसार में सर्वत्र मिलता हो।

लोकप्रदीप-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकप्रवाद-संज्ञा पुं० [सं०] जिसे संसार के सभी लोग कहते और समझते हों। साधारण बात।

लोकबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सूर्य्य।

लोकयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यवहार। (२) व्यापार।

लोकरव-संज्ञा पुं० [सं०] अफ़वाह। प्रवाद।

लोकरा†-संज्ञा पुं० [देश०] चीथड़ा।

लोकल-वि० [अं०] (१) प्रांतिक। प्रादेशिक। (२) किसी एक ही स्थान या नगर आदि से संबंध रखनेवाला। स्थानीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौ०—लोकल बोर्ड।

लोकल बोर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थानीय समिति जिसके सभ्यों का चुनाव किसी स्थान के कर देनेवाले करते हों और जिसके अधिकार में उस स्थान की सफ़ाई आदि की व्यवस्था हो।

लोकलीक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक + लीक] लोक मर्य्यादा। उ०—सरस असम सर सरसिज लोचनि विलोकि लोक-लीक लाज लोपिबे को आगरी।—केशव।

लोकविश्रुत-वि० [सं०] संसार भर में प्रसिद्ध। जगद्विख्यात।

लोकश्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जनश्रुति। अफ़वाह।

लोकसंग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार के लोगों को प्रसन्न करना। (२) संसार का कल्याण या सब की भलाई चाहनेवाला।

लोकहाँदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक + हल्दी] एक प्रकार की हल्दी।

लोकांतर-संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक जहाँ मरने पर जीव जाता है।

लोकांतरित-वि० [सं०] (१) जो इस लोक से दूसरे लोक में चला गया हो। (२) मरा हुआ। मृत। स्वर्गीय।

लोकाचार-संज्ञा पुं० [सं०] संसार में बरता जानेवाला व्यवहार। लोकव्यवहार।

लोकाट-संज्ञा पुं० [चीनी लुः + क्यू] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी और नुकीली, तेंदू की पत्तियों के आकार की, पर उससे कुछ बड़ी होती हैं। इसका पेड़ बीस पचीस हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता। इसके पेड़ में फागुन चैत के महीने में मंजरियाँ लगती हैं और बड़े बेर के बराबर फल लगते हैं, जो पकने पर पीले होते हैं और खाने में प्रायः मीठे, गुदार और स्वादिष्ट होते हैं। सहारनपुर में लोकाट बहुत अच्छा और मीठा उत्पन्न होता है। यह फल चीन और जापान देश का है और वहीं से भारतवर्ष में आया है।

लोकाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकपाल। (२) बुद्ध।

लोकाना†-क्रि० स० [हिं० लोकने का प्रे०] अधर में फेंकना। उछालना।

लोकायत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मनुष्य जो इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक को न मानता हो। (२) चार्वाक दर्शन, जिसमें परलोक या परोक्षवाद का खंडन है। (३) किसी किसी के मत से दुर्मिल नामक छंद का एक नाम।

लोकालोक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। कहते हैं कि यह सातो समुद्रों और द्वीपों को चारों ओर से आवेष्ठित किए हुए है, जिसके बाहर सूर्य्य या चंद्र का प्रकाश नहीं पहुँचता। बौद्ध ग्रंथों में इसे चक्रवाल कहा है।

लोकैषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सांसारिक अभ्युदय की कामना। प्रतिष्ठा और यश की कामना। (२) स्वर्ग के सुख की कामना।

लोकोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कहावत। मसल। (२) काव्य में वह अलंकार जिसमें किसी लोकोक्ति का प्रयोग करके कुछ रोचकता या चमत्कार लाया जाय।

लोकोत्तर-वि० [सं०] जो इस लोक में होनेवाले पदार्थों आदि से श्रेष्ठ हो। बहुत ही अद्भुत और विलक्षण। अलौकिक। जैसे,—(क) वहाँ एक योगी ने कई लोकोत्तर चमत्कार दिखलाए थे। (ख) यह कौन सी लोकोत्तर वस्तु है जिसके लिये तुम इतना अभिमान करते हो!

लोखड़ी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लोखर-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + खंड] (१) नाई के औज़ार। जैसे,—छुरा, कैंचीं, नहरनी आदि। (२) लोहारों या बढ़इयों आदि के लोहे के औज़ार।

लोग-संज्ञा पुं० [सं० लोक] [स्त्री० लुगाई] जन। मनुष्य। आदमी। उ०—(क) देख रतन हीरामन रोवा। राजा जिव लोगन हठ खोवा।—जायसी। (ख) अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भये कित लोग। कहहि कबीर कामो नहीं जीवहि मरन न जोग।—कबीर। (ग) जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।—तुलसी।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में और मनुष्यों के समूह के लिये ही होता है। जैसे,—लोग चले आ रहे हैं।

लोगचिरकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फूल।

लोगाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग + आई (प्रत्य०)] स्त्री। उ०—(क) पुनि ज्वर दौ दीनी पुर लाई। जरन लगे पुर लोग लुगाई।—सूर। (ख) वृंद वृंद मिलि चलीं लोगाई। सहज सिंगार किए उठि धाईं।—तुलसी।

विशेष—इस शब्द का शुद्ध रूप प्रायः "लुगाई" ही माना जाता है।

लोच-संज्ञा पुं० [हिं० लचक] (१) लचलचाहट। लचक। (२) कोमलता। उ०—चलै चले छुटि जायगो हठ रावरे सँकोच। खरे चढ़ाए देत अब, आये लोचन लोच।—बिहारी। (३) अच्छा ढंग।

संज्ञा पुं० [सं० रुचि] अभिलाषा। उ०—मोको पर्‍यो सोच यज्ञ पूरण को लोच, हिये लिये वाको नाम जिनि गाम तजि जाइये।—प्रियादास।

संज्ञा पुं० [सं० लुंचन] जैन साधुओं का अपने सिर के बालों को उखाड़ना। लुंचन।

लोचन-संज्ञा पुं० [सं०] आँख। नेत्र। नयन।

मुहा०—लोचन भर आना = आँखों में आँसू डबडबा आना। आँखें भर आना। उ०—यह सुनिकै हलधर तहँ धाये। देखि श्याम ऊखल सों बाँधे, तबही दोउ लोचन भरि आये।—सूर।

लोचना†-क्रि० स० [हिं० लोचन] (१) प्रकाशित करना। (२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुचि उत्पन्न करना। उ०—निसि वासर लोचन रहत अपनो मन अभिराम। या तें पायो रसिक निधि इन नै लोचन नाम।—रसनिधि। (२) अभिलाषा करना। उ०—स्वर्ग में देव गण भी लोचते हैं और इस बात के लिये तरसते हैं कि भारत की कर्म भूमि में किसी तरह एक बार हमारा जन्म होता।—हिंदीप्रदीप।

क्रि० अ० शोभित होना। उ०—लोचैं परी सियरी पर्य्यंक पै बीती घरीन खरी खरी सोचै।—पद्माकर।

क्रि० अ० (१) अभिलाषा करना। कामना करना। उ०—(क) कहति है सकोचति है सखी को बोलाइबे को लोचति है भट्ट बैठी सोचति है मन तें।—रघुनाथ। (ख) कुँअरि सयानि बिलोकि मातु पितु सों कहि। गिरिजा जोग जुरहिं बर अनुदित लोचहि।—तुलसी। (२) ललचना। तरसना। उ०—अब तिनके बंधन मोचहिंगे। दास बिना पुनि हम लोचहिंगे।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० लुंचन] नाई। हज्जाम। (क्व०)

लोचारक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक ना नाम।

लोचून-संज्ञा पुं० [सं० लोहचूर्ण] (१) लोहे का चूरा। (२) लोहे की कीट का चूर्ण।

लोजंग-संज्ञा स्त्री० [देश० वा लोहा + जंग ?] एक प्रकार की नाव जिसके दोनों ओर के सिरे लंबे होते हैं।

लोट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटना] लोटने का भाव वाचक रूप। लोटने की क्रिया या भाव। लुढ़कना।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—लोट मारना = (१) लेटना। सोना। (२) किसी के प्रेम में बेसुध होना।

मुहा०—लोट होना या हो जाना = (१) आसक्त होना। रीझना। (२) व्याकुल होना।

संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] (१) उतार। घाट। उ०—चारों तरफ़ पुख़्ता लोट बने।—लल्लू। (२) ॐ त्रिवली। उ०—(क) कर उठाय घूँघट करत उसरत पट गुझरौट। सुख मोरें लूटे ललन लखि ललना की लोट।—बिहारी। (ख) नार नवाये तकि हरी करी काँकरी चोट। चौंकि कँपी झझकी चकी चँपी हँसी गहि लोट।—शृंगार०। (ग) बढ़ति निकसि कुच कोर रुचि कढ़त गौर भुज मूल। मन लुटिगो लोटन चढ़त चूँटति ऊँचे फूल।—बिहारी।

लोटन-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] (१) एक प्रकार का हल जिसकी जोताई बहुत गहरी नहीं होती। (२) एक प्रकार का कबूतर जो चोंच पकड़कर भूमि में लुढ़का देने से लोटने लगता है; और जब तक उठाया न जाय, लोटता रहता है। (३) राह में की पड़ी हुई छोटी कंकड़ियाँ जो वायु चलने से इधर उधर लुढ़कती रहती हैं। उ०—काँट कुरायल पेठन लोटनि ठावहिं ठाँव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज वासना भेंट लगाऊ रे।—तुलसी।

लोटनसज्जी-संज्ञा स्त्री० [देश० लोटन + सज्जी] एक प्रकार की सज्जी जो सफ़ेद और गुलाबी रंग की होती है। यह प्रायः मुरब्बे आदि के गलाने में काम आती है।

लोटना-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) भूमि पर या किसी ऐसे ही आधार के सहारे उसे स्पर्श करते हुए, ऊपर नीचे होते हुए किसी का एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाना या गमन करना। सीधे और उलटे लेटते हुए किसी ओर को जाना। उ०—(क) परी कया भुँइ लोटै कहँ रे जीव बिनु भीव। को उठाय बैठारै बाज पियारे जीव।—जायसी। (ख) काम नारि अति लोटत फिरै। कंत कंत कहि छिति भुज भरै।—लल्लू। (२) लुढ़कना। उ०—जानहुँ लोटहिं चढ़े भुभंगा। बेधी बास मलय गिरि अंगा।—जायसी। (३) कष्ट से करवट बदलना। तड़पना।

क्रि० प्र०—जाना।

मुहा०—लोट जाना = (१) बेसुध होना। बेहोश हो जाना। (२) मर जाना। जैसे,—एक ही बार में पाँच कबूतर लोट गए। (४) विश्राम करना। लेटना।

मुहा०—लोट पोट करना = लेटना। विश्राम करना।

(५) मुग्ध होना। चकित होना। उ०—सुनि गये नारद लोटि तामें देखि प्रभु बोलत भये।—रघुनाथ।

लोटपटा†-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना + पाटा] (१) विवाह के समय पीढ़ा या स्थान बदलने की रीति। इस में वर के स्थान पर बधू और बधू के स्थान पर वर बैठाया जाता है। (२) बाजी का उलट फेर। दाँव का इधर से उधर हो जाना। उलटफेर। उ०—कीजै कहा विधि की विधि को दियो दौंवन लोटपटा करिबे को।—पद्माकर।

लोटा-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] [स्त्री० अल्पा० लुटिया] धातु का एक पात्र जो प्रायः गोल होता है और पानी रखने के काम में आता है। यह कलसे से छोटा होता है। कभी कभी इसमें टोंटी भी लगाई जाती है; और ऐसे लोटे को टोंटीदार लोटा कहते हैं।

मुहा०—लोटा या लुटिया डुबोना = (१) कलंक लगाना। (२) सब काम चौपट करना। सर्वनाश करना।

लोटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + इया (प्रत्य०)] छोटा गोल जलपात्र जो लोटे के आकार का हो। छोटा लोटा।

लोटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + ई (प्रत्य०)] (१) छोटा लोटा। (२) वह बर्तन जिससे तमोली पान सींचते हैं।

लोठारी नंगर-संज्ञा पुं० [हिं० लोठारी + लंगर] एक प्रकार का लंगर जा जहाजी या बड़े लंगर से छोटा और केज लंगर से बड़ा होता है। (लश०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोड़नाॐ†-क्रि० स० [पं० लोड़ = आवश्यकता] आवश्यकता होना। दरकार होना। उ०—(क) तिसो घड़ी नव्वाब से कर जोरि बखाना। जेहा जिसनूँ लोड़िया तेहा फुरमाना। (कलपाना शुद्ध पाठ)—सूदन। (ख) असी हाल एहा हुवा राख्यो निजु साया। जेहा जिसनूँ लोड़िये तेहा फल पावा। —सूदन।

लोढ़कना†-क्रि० अ० दे० "लुढ़कना"।

लोढ़ना-क्रि० स० [सं० लुंचन] (१) चुनना। तोड़ना। जैसे,—फूल लोढ़ना। उ०—कुसुम लोढ़न हम जाइब हो रामा।—गीत। (२) ओटना। जैसे,—कपास लोढ़ना।

लोढ़ा-संज्ञा पुं० [सं० लोष्ठ] [स्त्री० अल्पा० लोढ़िया] (१) पत्थर का वह गोल लंबोतरा टुकड़ा जिससे सिल पर किसी चीज़ को रखकर पीसते हैं। बट्टा। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुकि पहार। कायर क्रूर कपूल कलि घर घर सहर उहार।—तुलसी।

मुहा०—लोढ़ा डालना = बराबर करना। उ०—घूमि चहुँ दिसि झूमि रहे घन बूँदन ते छिति डारत लोढ़े।—रघुनाथ। लोढ़ाढाल = चौपट। सत्यानाश। उ०—विष्णु कलोह रव कहिं कोप कियो विकराल। झटकि पटकि झट लटकि कसि कीन्हो लोढ़ाढाल।

(२) बुँदेलखंड के बराबर नामक हल का एक अंश। यह मोटी लकड़ी का होता है। इसमें दतुआ या लोहे की कीलें लगी होती हैं, जिनमें पास लगाया जाता है।

लोढ़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोढ़ा + इया (प्रत्य०)] छोटा लोढ़ा। बट्टा। जैसे,—सिल लोढ़िया ले आओ।

लोण-संज्ञा पुं० [सं०] लोनी साग।

संज्ञा पुं० दे० "लोन"।

लोथ, लोथि-संज्ञा स्त्री० [सं० लोष्ठ या लोठ] किसी प्राणी का मृत शरीर। लाश। शव। उ०—(क) लोथिन्ह तें लहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ, मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं। —तुलसी। (ख) गृध श्रृगाल कूकर आपस में लड़लड़ लोथें खैंच खैंच लाते।—लल्लू। (ग) तब कंस की लोथ को घसीट जमुना तीर ले आये।—लल्लू। (घ) भूषन बखानै भूरि भूतन मैं टाँगे चंद्रायतन लोथैं लटकत हैं।—भूषण।

मुहा०—लोथ गिरना = मारा जाना। लोथ डालना = मार गिराना। प्राणान्त करना। हत्या करना। लोथपोथ = थकने से चूर। अत्यन्त शिथिल। लथपथ।

लोथड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लोथ + ड़ा] मांस का बड़ा खंड जिसमें हड्डी न हो। मांसपिंड।

लोथारी-संज्ञा स्त्री० [सं० लुंठन] (१) कम पानी में से नाव को खींचते या धीरे धीरे खेते हुए किनारे लगाना। (२) लोथारी लङ्गर डालकर पानी की तह का पता लेते हुए मार्ग से किनारे की ओर नाव बढ़ाना। (लश०)

यौ०—लोथारी लङ्गर।

मुहा०—लोथारी डालना = लोथारी लंगर को थोड़े पानी में डाल कर तल की थाह लेते हुए नाव को किनारे लगाना। लोथारी तानना = ठीक ओर नाव जाने के योग्य मार्ग से होकर नाव को किनारे ले जाना।

लोथारी लंगर-संज्ञा संज्ञा पुं० [हिं० लोथारी + हिं० लङ्गर] सब से छोटा लंगर। यह उस जगह डाला जाता है, जहाँ पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि यह किनारे जाने का मार्ग है या नहीं।

लोद-संज्ञा स्त्री० दे० "लोध"।

लोध-संज्ञा स्त्री० [सं० लोध्र] एक प्रकार का वृक्ष जो भारतवर्ष के जंगलों में उत्पन्न होता है। इसकी छाल रँगने, चमड़ा सिझाने और ओषधियों में काम आती है। छाल को गरम पानी में भिगो देने से पीला रंग निकलता है। कहीं कहीं इसकी छाल पानी में उबालकर भी रंग निकाला जाता है। छाल को सज्जी मिट्टी के साथ पानी में उबालने से लाल रंग निकलता है, जिससे छींट छापते हैं। वैद्यक में इसकी छाल और लकड़ी दोनों का प्रयोग होता है। इसकी छाल कुछ कसैली होती है और पेचिश आदि पेट के कई रोगों में दी जाती जाती है। इसका गुण ठंढा है और २० ग्रेन तक इसकी मात्रा है। इसके काढ़े का भी प्रयोग किया जाता है। लोध की लकड़ी के काढ़े से कुल्ला करने से मसूढ़े से रक्त निकलना जाता रहता है और वह दृढ़ हो जाता है। इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है; पर मज़बूत होती है और कई तरह के काम में लाई जाती है।

लोधरा-संज्ञा पुं० [सं० लोध्र] एक प्रकार का ताँबा जो जापान से आता है।

लोधी-संज्ञा [?] पठानों की एक जाति।

लोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध नामक वृक्ष। इसके दो भेद होते हैं—श्वेत लोध और रक्त लोध। यह कसैला, ठंढा और वात, पित्त नाशक होता। वि० दे० "लोध"।

पर्य्या०—तिल्वक। गालव। शावर। तिरीट। तिल्वक। मार्जन। भिल्लतरु। कांऽकीलक। शंवर। कांडनीलक। हेमपुष्पक। भिल्ली।

(२) एक जाति का नाम।

संज्ञा पुं० [सं० लोध्र] जापानी ताँबा। लोधरा।

लोध्रतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जो उपमा का एक भेद माना जाता है।

लोन ॐ†-संज्ञा पुं० [सं० लवण] (१) लवण। नमक।

मुहा०—किसी का लोन खाना = अन्न खाना। पाला जाना। दास होना। उ०—पाछे कह्यो लंकापति सुनो हनुमान कपि रामचंद्र ही को एक तही लोन खायो है।—हनुमन्नाटक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी का लोन निकलना = निमकहरामी का फल मिलना। अकृतज्ञता का फल पाना। उ०—ताते मन पोखियत घोर वरतोर मिसि फूटि फूटि निकसत है लोन राम राय को।—तुलसी। किसी का लोन न मानना = किसी का उपकार न मानना। कृतघ्न होना। उ०—नैनन को अब नाहिं पत्याऊँ। बहुर्यो उनको बोलति हौं तुम हाइ हाइ लीजै नहिं नाऊँ। अब उनको मैं नाहिं बसाऊँ मेरे उनको नाहीं ठाऊँ। व्याकुल भई डोलत हौं ऐसेहि वे जहँ रहैं तहाँ नहिं जाऊँ। खाइ खवाइ बढ़े जब कीन्हे बसे जाइ अब औरहि गाऊँ। अपनो कियो आप पावैंगे मैं काहे उनको पछिताऊँ। जैसे लोन हमारो मान्यो कहा कहौं कहि काहि सुनाऊँ। सूरदास मैं इन बिन रहिहौं कृपा करैं उनको सरमाऊँ।—सूर। जले पर लोन लगाना या देना = दुःख पर दुःख देना। दुखी को दुखी करना। उ०—अति कटु वचन कहै कैकेई। मानो लोन जले पर देई।—तुलसी। किसी बात का लोन सा लगना = अरुचिकर होना। अप्रिय होना। उ०—राजै लोन सुनावा लागद्दु हूँ जस लोन। आइ कुँहाइ महिर कहँ सिंह जान औ गौन।—जायसी। लोन चराना = नमकीन बनाना। जैसे,—आम को लोन चराना।

(२) सौंदर्य्य। लावण्य। उ०—जो उन महँ देखेसि इक दासी। देखि लोन होय लोन बिलासी।—जायसी। वि० दे० "नमक"।

लोनहरामी†-वि० [हिं० लोन + अ० हरामी] कृतघ्न। नमकहराम। उ०—मन भयो ढीठं इनहिं के कीन्हे ऐसे लोनहरामी। सूरदास प्रभु इनहिं पत्याने आखिर बड़े निकामी।—सूर।

लोना-वि० [हिं० लोन] [भाव० लोनाई] (१) नमकीन। सलोना। (२) सुंदर। उ०—(क) लालन जोग लखन अति लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।—तुलसी। (ख) नाउन अति गुन खानि तौ बेगि बोलाइहो। करि सिंगार अति लोनि तौ बिहँसति आइहो।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० लोन] (१) एक प्रकार का रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टी की दीवारों में लगता है। इस से दीवार झड़ने लगती और कमज़ोर हो जाती है; थोड़े दिनों में उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं; और वह कटकर गिर पड़ती है। यह रोग प्रायः नींव के पास के भाग में आरंभ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवार से झड़कर गिरती है। यह खेत में डाली जाती है और खाद का काम देती है। (३) नमकीन मिट्टी, जिससे शोरा बनाया जाता है। (४) वह क्षार जो चने की पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसकी पत्तियाँ चाटने में खट्टी जान पड़ती हैं। (५) एक प्रकार का कीड़ा जो घोंघे की जाति का होता है और प्रायः नाव के पेंदे में चपका हुआ मिलता है।

क्रि० स० [सं० लवण] फसल काटना। उ०—(क) बीज बोई जोई अंत लोलिये सोइ समुझि यह बात नहिं चित्त धरई।—सूर। (ख) अपनो बयो आप ही लुनिये तुम आपहि निरवारौ।—सूर।

लोनाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना + ई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। उ०—हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।—तुलसी।

लोनिका-संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] लोनी नामक साग। वि० दे० "लोनी"। उ०—रुचितल जानि लोनिका फाँगी। कढ़ी कृपालु दूसरी माँगी।—सूर।

लोनिया-संज्ञा पुं० [हिं० लवण, लोन + इया (प्रत्य०)] एक जाति जो लोन या नमक बनाने का व्यवसाय करती है। यह जाति शूद्रों के अंतर्गत मानी जाती है। नोनियाँ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लोन] लोनी नामक साग।

लोनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] (१) कुलफे की जाति का एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ठंढी जगह पर, जहाँ सीड़ होती है, उत्पन्न होती है। यह स्वाद में खटास लिए होती है। इसमें रंग बिरंग के फूल लगते हैं। इसे लोग गमलों में बोते हैं और बिलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायत से आते हैं। (२) वह क्षार जो चने की पत्तियों पर बैठता है। (३) एक प्रकार की मिट्टी जिससे लोनियाँ लोग शोरा और नमक बनाते हैं। (४) दे० "लोना"।

लोप-संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा लोपन] [वि० लुप्त। लोपक। लोप्ता। लोप्य।] (१) नाश। क्षय। (२) विच्छेद। जैसे,—कर्म का लोप होना। (३) अदर्शन। अभाव। (४) व्याकरण के चार प्रधान नियमों में से एक, जिसके अनुसार शब्द के साधन में किसी वर्ण को उड़ा देते हैं। जैसे,—अपिधान के अ का लोप करके पिधान शब्द बनाया जाता है। (५) छिपना। अंतर्द्धान होना। उ०—बहु बरषि आयुध बारिधर सम दियो पटरथ लोप कै।—गिरिधर।

लोपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लुप्त करना। तिरोहित करना। (२) नष्ट करना। वना ।।

लोपना⊛†-क्रि० स० [सं० लोपन] (१) लुप्त करना। मिटाना। उ०—(क) कलि सकोप लोपी सुचलि निज कठिन कुचालि चलाई।—तुलसी। (ख) सब ते परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी।—सूर। (ग) लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल। गिरिधारी राखे सबै गो, गोपी, गोपाल।—बिहारी। (२) छिपाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रि० अ० (१) लुप्त होना। मिटना। उ०—राय दसरत्थ के समर्थ राम राय मनि तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की।—तुलसी। (२) छिपना। (क्व०)

लोपांजन-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित अंजन जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसके लगाने से लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपाक, लोपायक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोपामुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य ऋषि की स्त्री का नाम। पुराणों में लिखा है कि अगस्त्य ने बहुत दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण किया था; और वे विवाह नहीं करते थे। एक बार उन्होंने स्वप्न में देखा कि हमारे पितर गड्ढे में उलटे लटके हुए हैं। अगस्त्य ने उन्हें इस प्रकार अधोमुख लटका देखकर उनसे कारण पूछा। पितरों ने कहा कि यदि तुम विवाह करके संतान उत्पन्न करो, तो हम लोगों को इस यातना से छुट्टी मिले। अगस्त्य ने बहुत ढूँढा, पर उनको सर्व लक्षणों से युक्त कोई कन्या विवाह करने योग्य नहीं मिली। निदान उन्होंने सब प्राणियों के उत्तम उत्तम अंग लेकर एक कन्या बनाई। उस समय विदर्भ देश का राजा पुत्र के लिये तप कर रहा था। अगस्त्य जी ने लोपामुद्रा उसी विदर्भराज को प्रदान की। जब वह बड़ी हुई, तब अगस्त्य जी ने विदर्भराज से उस कन्या की याचना की। विदर्भ राजा ने लोपामुद्रा अगस्त्य जी को सौंप दी; और अगस्त्य जी ने उसका पाणिग्रहण कर उसे अपनी पत्नी बनाया।

पर्य्या०—लीपा। कोशीतकी। वरप्रदा।

(२) एक तारे का नाम जो दक्षिण में अगस्त्य मंडल के पास उदय होता है।

लोपाशक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोबान-संज्ञा पुं० [अ०] एक वृक्ष का सुगंधित गोंद। यह वृक्ष अफ्रिका के पूर्वी किनारे पर, सुमालीलैंड में और अरब के दक्षिणी समुद्र तट पर होता है और वहीं से लोबान अनेक रूपों में भारतवर्ष में आता है। कुंदुरजकर, कुंदुरउनस, कुंदुर घगा, कुंदुरकशफा आदि इसी के भेद हैं। इनमें से कई दवा के काम में आते हैं। इनमें लोबानकशफ़ा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्ष में लोबान के नाम से बिकता है। यह गोंद वृक्ष की छाल के साथ लगा रहता है। अरब से लोबान बंबई आता है। वहाँ छाँट छाँटकर उसके भेद किए जाते हैं। जो पीले रंग की बूँदों के रूप के साफ़ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छाँटकर युरोप भेज देते हैं। तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीन के लिये रख लेते हैं। एक और प्रकार का लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानों से आता है, जिसे जावी लोबान कहते हैं। युरोप में इससे एक प्रकार का क्षार बनाया जाता है जिसे बैंज़ोइक एसिड कहते हैं। लोबान प्रायः जलाने के काम में लाया जाता है, जिससे सुगंधित धूआँ निकलता है। वैद्यक में कुंदुरलोबान का प्रयोग सूज़ाक में और जावी लोबान का प्रयोग खाँसी में होता है। यह अधिकतर मरहम के काम में लाया जाता है।

लोबिया-संज्ञा पुं० [सं० लोभ्य, मि० अ०] एक प्रकार का बोड़ा जो सफ़ेद रंग का और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और पौन अंगुल तक चौड़े तथा बहुत कोमल होते हैं और पकाकर खाए जाते हैं। बीजों से दाल और दालमोठ बनाते हैं। इसकी और भी जातियाँ हैं; पर लोबिया सब से उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियाँ उर्द के सदृश पर उससे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजी के लिये बागों में बोया जाता है और बहुमूल्य होता है। उ०—कंचन के धाम कहि काम जहाँ ये उपाधि, राम राज भलो जहाँ सबै खाय लोबिया—हनुमन्नाटक।

लोबिया कंजई-संज्ञा पुं० [हिं० लोबिया + कंजई] एक रंग जो गहरा हरा होता है।

लोभ-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लुब्ध, लोभी] (१) दूसरे के पदार्थ को लेने की कामना। लालच।

पर्य्या०—तृष्णा। लिप्सा। स्पृहा। कांक्षा। शंस। गर्द्ध। इच्छा। वांछा। अभिलाष।

(२) जैन दर्शन के अनुसार वह मोहनीय कर्म जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ को त्याग नहीं सकता। अर्थात् यह त्याग का बाधक होता है। (३) कृपणता। कंजूसी।

लोभना ॐ†-क्रि० अ० [हिं० लोभ] लुब्ध होना। मुग्ध होना। उ०—(क) करनफूल नासिक अति सोभा। ससि मुख आइ सूक जनु लोभा।—जायसी। (ख) सोहत सुबरन सुरथ फनद मंदिर सम ओभा। जिनमें रतन बिहंग बने जेहि लखि जग लोभा।—जरासंधबध।

क्रि० स० [सं०] लुभाना। मुग्ध करना।

लोभाना ॐ†-क्रि० स० [हिं० लोभना का सक०] मोहित करना। मुग्ध करना। उ०—माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चले चलाये।—तुलसी।

क्रि० अ० मोहित होना। मुग्ध होना। उ०—(क) अस बिचारि हरि भजत सयाने। मुक्ति निरादरि भगति लोभाने।—तुलसी। (ख) बहुरि भगवान को निरखि सुन्दर परम कछु एहि माहिं है सब भलाई। पै न इच्छा इन्हैं है कछू वस्तु की, अरुन ए देखि मोहइ लोभाई।—सूर।

लोभारॐ†-वि० [हिं० लोभ + आर (प्रत्य०)] लुभानेवाला। मुग्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला। उ०—वय किशोर वय तड़ित बरन तन नख सिख अंग लोभारे। है चितु कैं हित लै सब छबि बितु विधि निज हाथ सँवारे।—तुलसी।

लोभित—वि० [हिं० लोभ] लुब्ध। मुग्ध। लुभाया हुआ। उ०—नलिन पराग मेघ माधुरि सों मुकुलित अंब। कदंब मुनि मन मधुप सदा रस लोभित सेवत भज शिव अंब।—सूर।

लोभी—वि० [सं० लोभिन] (१) जिसे किसी बात का लोभ हो। उ०—नए नए हरि दरसन लोभी श्रावण शब्द रसाल। प्रथम ही मन गयो तनु तजि तब भई बेहाल।—सूर। (२) बहुत अधिक लोभ करनेवाला। लालची। (३) लुब्ध। लुभाया हुआ। उ०—ए कैसी है लोभिनी छबि धरति चुराई। और न ऐसी करि सकै मर्य्यादा जाई।—सूर।

लोम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर भर के छोटे छोटे बाल। रोवाँ। रोम। उ०—शत शत इंद्र लोम प्रति लोमनि, शत लोमनि मेरे इक लोमनि।—सूर। (२) बाल। जैसे,—गो लोम।
संज्ञा पुं० [सं० लोमश] लोमड़ी। उ०—भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं भीतर भवन भेर लीलगऊ लोम हैं।—भूषण।

लोमकरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जटामासी। (२) माँसी नामक घास।

लोमकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

लोमकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] शशक। खरगोश।

लोमकूप—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में का वह छिद्र जो रोएँ की जड़ में होता है। लोमगर्त।

लोमघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] गंज नामक रोग। इंद्रलुप्तक।

लोमड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमश] कुत्ते या गीदड़ की जाति का एक जंतु जो ऊँचाई में कुत्ते से छोटा होता है, पर विस्तार में लंबा। भारतवर्ष की लोमड़ी का रंग गीदड़ सा होता है; पर यह उससे बहुत छोटी होती है। इसकी नाक नुकीली, पूँछ झबरी और आँखें बहुत तेज़ होती हैं और यह बहुत तेज़ भागनेवाली होती है। अच्छे अच्छे कुत्ते इसका पीछा नहीं कर सकते। चालाकी के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है। ऋतु के अनुसार इसका रोवाँ झड़ता और रंग बदलता है। यह कीड़े मकोड़ों और छोटे छोटे पक्षियों को पकड़कर खाती है। अन्य देशों में इसकी अनेक जातियाँ मिलती हैं। अमेरिका में लाल रंग की एक लोमड़ी होती है; और शीतकटिबंध प्रदेशों में काले रंग की लोमड़ी होती है, जिसके रोएँ जाड़े में सफेद रंग के हो जाते हैं। कहीं कहीं बिल्कुल काली लोमड़ी भी होती है। उन सब के बाल या रोएँ बहुत कोमल होते हैं; और उनका शिकार उनकी खाल के लिये किया जाता है, जिसे समूर या पोस्तीत कहते हैं। शीतकटिबंध प्रदेश की लोमड़ियाँ बिल बनाकर झुंड में रहती हैं। युरोप की लोमड़ियाँ बड़ी भयानक होती हैं। वे गाँवों में घुसकर अंगूर आदि फलों का और पालतू पक्षियों का नाश कर देती हैं। भारत की लोमड़ी चैत बैसाख में बच्चे देती हैं। बच्चों की संख्या पाँच छः होती है; और वे डेढ़ वर्ष में पूरी बाढ़ को पहुँचते हैं। इसकी आयु तेरह चौदह वर्ष की कही गई है।

लोमपाद—संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक राजा का नाम। यह राजा दशरथ के मित्र थे। एक बार इन्होंने ब्राह्मणों का अपमान किया। उससे क्रोध कर ब्राह्मण उसका देश छोड़कर चले गए। ब्राह्मणों के चले जाने से अंग देश में अवर्षण पड़ा। इसके निवारणार्थ राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को राज्य में बुलाकर उन्हें अपने मित्र दशरथ की कन्या, जिसका नाम श्रोता था, प्रदान की, जिससे अनावृष्टि दूर हो गई। इन्हें रोमपाद भी कहते हैं।

लोमपादपुर—संज्ञा पुं० [सं०] चंपा नगरी जिसे अब भागलपुर कहते हैं।

लोमरी†—संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लोमश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। पुराणों में इनको अमर माना गया है। महाभारत के अनुसार ये युधिष्ठिर के साथ तीर्थ-यात्रा को गए थे और उन्हें सब तीर्थों का वृत्तान्त बतलाया था। (२) मेष। भेड़ा।
वि० अधिक और बड़े बड़े रोएँवाला।

लोमशकोडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटी। ककड़ी।

लोमशपर्णी लोमशपर्णिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशपर्णिनी] माषपर्णी नामक ओषधि।

लोमशपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं०] सरिस। शिरीष।

लोमशमार्जार—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके बाल कोमल होते हैं और जिससे मुश्क निकलता है। गंधमार्जार। वि० दे० "गंधबिलाव"।
पर्य्या०—पूतिक। मारजातक। सुगंधी। मूत्रयातन।

लोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक स्त्री जो कई मंत्रों की रचयिता मानी जाती है। (२) काकजंघा। माँसी। (३) बच। (४) अतिबला। (५) कौंछ। केवाँच। (६) कसीस।

लोमशातन—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

लोमस—संज्ञा पुं० दे० "लोमश"।

लोमहर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणों के अनुसार व्यास के एक शिष्य का नाम जो उग्रश्रवा के पुत्र थे। इन्हीं को सूत कहते हैं। (२) रोमांच।
वि० ऐसा भीषण जिससे रोएँ खड़े हो जायँ। बहुत अधिक भयानक।

लोमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वचा। बच।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोमाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गीदड़ी । सियारिन ।

लोयऌ†-संज्ञा पुं० [सं० लोक] लोग । उ०—जहाँ प्रगट भूषण भनत हेतु काज ते होय । सो विभावना औरऊ कहत सयाने लोय ।—भूषण ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लव या लाव] लौ । लपट । ज्वाला । उ०—दुति निर्मल रत्न प्रदीप धरे बडी लोय सो आँखन ओरी जरें ।—लक्ष्मण ।

संज्ञा पुं० [सं० लोचन, हिं० लोयन] आँख । नेत्र । नयन ।

अव्य० दे० "लौं" ।

लोयनऌ-संज्ञा पुं० [सं० लोचन] आँख । उ०—जनक सुता तब उर धरि धीरा । नील नलिन लोयन भरि नीरा ।—तुलसी ।

लोर†-वि० [सं० लोल] (१) लोल । चंचल । उ०—यह बाणी कहत ही लजानी समुझि भई जिय और । सूरश्याम मुख निरखि चली घर आनँद लोचन लोर ।—सूर । (२) उत्सुक । इच्छुक । उ०—बोलि ढिग बैठारि ताको पोंछि लोचन लोर । सूर प्रभु के बिरह ब्याकुल सखी लखि मुख ओर ।—सूर ।

संज्ञा पुं० [सं० लोल] (१) कान का कुंडल । (२) लटकन । (३) आँसू ।

लोरनाऌ-क्रि० अ० [सं० लोल] (१) चंचल होना । (२) लपकना । ललकना । उ०—पुनि उठि जागि देखैं मुकुर नारि ललचान अंक भरि लैन लोरै । सूर प्रभु भावती के सदा रस भरे नैन भरि भरि प्रिया रूप चोरै ।—सूर । (३) लिपटना । उ०—लोरहिं आइ भूमि तरु शाखा फल फूलन के भारा । नाना रंग कुरंग संग एक चरैं सुढंग अपारा ।—रघुराज । (४) झुकना । उ०—देव कर जोरि जोरि बंदति सुरति लघु लोगनि के लोरि लोरि पायन परति है ।—देव । (५) लोटना । उ०—कलप लता से लता वृंदन विलासे, झुके अजब किता से भूमि लोरन के आसे हैं ।—रघुराज ।

लोरी-संज्ञा स्त्री० [सं० लोल] (१) एक प्रकार का गीत जो स्त्रियाँ बच्चों को सुलाने के लिये गाती हैं । साथ ही वे बच्चे को गोद में लेकर हिलाती भी जाती हैं; अथवा खाट पर लेटाकर थपकी देती जाती हैं । (२) तोते की एक जाति ।

लोल-वि० [सं०] (१) हिलता डोलता । कंपायमान । (२) चंचल । उ०—भाल तिलक कंचन किरीट सिर कुण्डल लोल कपोलनि झाँई । निरखहिं नारि-निकर विदेह-पुर निमिशा की मरजाद मिटाई ।—तुलसी । (३) परिवर्तन-शील । (४) क्षणिक । क्षणभंगुर । (५) उत्सुक । अति इच्छुक ।

संज्ञा पुं० लिंगेंद्रिय ।

लोलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लटकन जो बालियों में पहना जाता है । यह मछली के आकार का या किसी और आकार का होता है । स्त्रियाँ इसे नथ या बाली में पिरोकर पहनती हैं । उ०—करनफूल खुटिला अरु खुंभिय । लोलक सोन सींक हूँ चुंभिय ।—सूदन । (२) कान की लव । लोलकी । (३) करघे में मिट्टी का एक लट्टू जो राछ में इसलिये लगाया जाता है कि उसको ऊपर या नीचे करके राछ उठा या दबा सकें । (४) घंटी या घंटे के बीच में लगा हुआ लटकन जो हिलाने से इधर उधर टकराकर घंटी में लगकर शब्द उत्पन्न करता है ।

लोलकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोलक] कान का वह भाग जो गालों के किनारे इधर उधर नीचे को लटकता रहता है । इसी में छेद करके कुण्डल या बाली आदि पहनते हैं ।

लोलजट-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक राज्य जो ईशान कोण में है ।

लोलदिनेश-संज्ञा पुं० [सं०] लोलार्क नामक सूर्य्य । उ०—लोमदिनेस त्रिलोचन लोचन करणघंट घंटा सी—तुलसी ।

लोलनाऌ-क्रि० अ० [सं० लोल] हिलना । डोलना । उ०—गागरि नागरि लिये पनिघट तें चली घरहि आवै । ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै ।—सूर ।

लोला संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिह्वा । जीभ । (२) लक्ष्मी । (३) मधु दैत्य की माता । (४) एक योगिनी का नाम । (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, मगण, भगण और अंत में दो गुरु होते हैं । इसमें सात सात पर यति होती है । उ०—मा सौमौ भग गौरी काहू ती मुख देखे । सिंहौ री कटि जोहे हस्ती चालहिं पेखे । लोला सी मृदुबैना पूछे बाल नवीना । बोली मातु फबै ना बाणी नीतिविहीना ।—छंदःप्रभाकर ।

संज्ञा पुं० [देश०] लड़कों का एक खिलौना । यह एक डंडा होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो लट्टू होते हैं ।

लोलार्क-संज्ञा पुं० [सं०] काशी के एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम ।

लोलुप-वि० [सं०] (१) लोभी । लालची । (२) चटोर । चट्टू । (३) किसी बात के लिये परम उत्सुक ।

लोवा-संज्ञा स्त्री० [सं० लोमश] (१) लोमड़ी । उ०—(क) बाएँ अकाशे धँवरे आये । लोवा दरस आइ देखराये ।—जायसी । (ख) लोवा फिरि फिरि दरस देखावा । सुरभी सनमुख शिशुहि पियावा—तुलसी ।

संज्ञा पुं० तीतर की जाति का एक पक्षी जो बटेर से छोटा होता है और कश्मीर, मध्य प्रदेश तथा संयुक्त प्रांत में पाया जाता है । नर प्रायः मादा से कुछ अधिक बड़ा होता है । शिकारी इसका शिकार करते हैं । इसे गुरगा भी कहते हैं । लवा ।

लोशन-संज्ञा पुं० [अं०] अधिक पानी में घुली हुई ओषधि जो शरीर में ऊपर से लगाने, किसी पीड़ित अंश को धोने या तर रखने आदि के काम में आती है ।

लोष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्थर । (२) ढेला । डला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोष्टघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] खेती का वह औजार जिससे खेत के ढेले फोड़ते हैं। पटेला। पाटा।

लोहँड़ा-संज्ञा पुं० [सं० लौहभांड] [स्त्री० लोहँड़ी] (१) लोहे का एक प्रकार का पात्र जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। (२) तसला। उ०—चुंबक लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ केर निचोवा।—जायसी।

लोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा नामक प्रसिद्ध धातु। (२) रक्त। (३) लाल बकरा।

लोहकार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

लोहकिट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की कीट या मैल जो भट्टे में डालकर लोहे को गलाने या ताव देने से निकलती है। वैद्यक में इसे कृमि, वात, पित्त, शूल, मेह, गुल्म और शोक का नाशक लिखा है। इसका स्वाद मधुर और कटु तथा प्रकृति उष्ण मानी गई है।

पर्य्या०—किट्ट। लोहचूर्ण। अयोमल। लोहज। कृष्णचूर्ण। लोष्ट।

लोहगंध-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

लोहघातक-संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकार नामक जाति। इस जाति के लोग लोहे को तपाकर पीटते हैं।

लोहद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० लोहद्राविन्] (१) सोहागा। (२) अम्लवेत।

लोहनाल-संज्ञा पुं० [सं०] नाराच नामक अस्त्र। वि० दे० "नाराच"।

लोहबान-संज्ञा पुं० दे० "लोबान"।

लोहलंगर-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + लंगर] (१) जहाज का लंगर। (२) बहुत भारी वस्तु।

लोहशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

लोहश्लेष्मक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

लोहहारक-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम।

लोहाँगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोह + श्रृंग + ई] वह छड़ी जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा-संज्ञा पुं० [सं० लोह] (१) एक प्रसिद्ध धातु जो संसार के सभी भागों में अनेक धातुओं के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका रंग प्रायः काला होता है। वायु या जल के संसर्ग से इसमें मोर्चा लग जाता है। भारतवर्ष में इस धातु का ज्ञान वैदिक काल से चला आता है। वेदों में लोहे को साफ़ करने की विधि पाई जाती है; और उसके बने कठिन और तीक्ष्ण हथियारों का उल्लेख मिलता है। लोहे का ज्ञान पहले पहल संसार में किसे, कब, कहाँ और किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। वैद्यक शास्त्र के अनुसार लोहा पाँच प्रकार का होता है।—कांची, पांडि, कांत, कालिंग और वज्रक। इनमें कांची, पांडि और कालिंग क्रमशः दक्षिण की कांचीपुरी, पंडा, और कलिंग देश के लोहों के नाम हैं, जो वहाँ की खानों से निकलते थे। जान पड़ता है, वज्रक उस लोहे को कहते थे, जो आकाश से उल्का के रूप में गिरता था; क्योंकि बहुत दिनों से संसार में यह बात चली आती है कि बिजली से या उल्कापात में लोहा गिरता है। कांत हर एक स्थान के शुद्ध किए हुए लोहे को कहते हैं। इन्हीं पाँच प्रकार के लोहों का प्रयोग वैद्यक में सर्वश्रेष्ठ मानकर लिखा गया है। यह बलप्रद, शोथ, शूल, अर्श, कुष्ट, पांडु, प्रमेह, मेद और वायु का नाशक, आँखों की ज्योति और आयु को बढ़ानेवाला, गुरु तथा सारक माना जाता है। कुछ लोगों का तो यह भी मत है कि लोहा सब रोगों का नाश कर सकता है; और मृत्यु तक को हटा देता है। वैद्यक में लोहे के भस्म का प्रयोग होता है। भारतवर्ष का लोहा प्राचीन काल में संसार भर में प्रख्यात था। यहाँ के लोगों को ऐसे उपाय मालूम थे जिनसे लोहे पर सैंकड़ों वर्षों तक ऋतु का प्रभाव नहीं पड़ता था; और वर्षा तथा वायु के सहन से तथा मिट्टी में गड़े रहने से उसमें मोर्चा नहीं लगता था। दिल्ली का प्रसिद्ध स्तंभ इसका उदाहरण है, जिसे पंद्रह सौ वर्ष से अधिक बीत चुके हैं। उस पर अभी तक कहीं मोर्चे का नाम तक नहीं है। आज कल लोहे को जिस प्रणाली से साफ़ करते हैं, वह यह है। खान से निकले हुए लोहे को पहले आग में डालकर जला देते हैं, जिससे पानी और गंधक आदि के अंश उसमें से निकल जाते हैं। फिर उस लोहे को कोयले या पत्थर के चूने के साथ मिलाकर बड़ी में डालकर गलाते हैं। इससे आक्सिजन का अंश, जो पहली बार जलाने से नहीं निकल सकता है, निकल जाता है। इतना साफ़ करने पर भी लोहे में प्रति सैकड़ा दो से पाँच अंश तक गंधक, कार्बन, सिलिका, फासफोरस, अलूमीनम आदि रह जाते हैं। उन्हें अलग करने के लिये उसे फिर भट्टी तैयार करके गलाते हैं; और तब घन से पीटते हैं। पहले को देगचून, और दूसरे को लोहा या कमाया हुआ लोहा कहते हैं। इस सच्चे लोहे में भी सैकड़ा पीछे ०·१५ से ०·५ तक कार्बन मिला रहता है। उसी कार्बन का निकालना प्रधान काम में है। इस्पात में सैकड़े पीछे ०·६ से ०·२ तक कार्बन होता है। उत्तम लोहा वही माना जाता है, जिस पर अम्ल या एसिड आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़े। विशुद्ध लोहे का रंग चाँदी की तरह सफ़ेद होता है और जिला करने पर वह चमकने लगता है। यदि लोहे को घिसा जाय, तो उससे एक प्रकार की गंध सी निकलती है। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जब देवताओं ने लोमिल दैत्य का बध किया, तब उसी के शरीर से लोहा उत्पन्न हुआ। तीक्ष्ण, मुंड और कांत लोहों के पर्य्याय भी अलग अलग हैं। तीक्ष्ण के पर्य्याय,—शस्त्रायस, शस्त्र, पिंड, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खड्ग, चित्रायस, मुंडज इत्यादि। मुंड के पर्य्याय—दृषत्सार, शिलात्मज, अश्मज, कृषिलौह इत्यादि। कुछ लोगों का कथन है कि आदि में 'लोहा' ताँबे को कहते थे। कारण यह कि 'लोह' शब्द का प्रधान या यौगिक अर्थ है—लाल। पीछे इसका प्रयोग लोहे के लिये करने लगे। पर यह कथन कई कारणों से ठीक नहीं जान पड़ता। एक कारण यह है कि वेदों में लोह और अयस शब्दों का प्रयोग प्रायः सब धातुओं के लिये मिलता है। दूसरे यह कि अब लोहे को आधुनिक विद्वान् लाल रंग का कारण मानने लगे हैं। उनकी धारणा है कि रक्त में लोहे के अंश ही के कारण ललाई है; और मिट्टी में लोहे का अंश मिला रहने से ही मिट्टी के बर्तन और ईंटें आदि पकाने पर लाल हो जाती हैं।

मुहा०—लोहे के चने = अत्यंत कठिन और दुःसाध्य काम। **लोहे के चने चबाना** = अत्यंत कठिन काम करना।

यौ०—लोहे की स्याही = एक प्रकार का रंग जो लोहे से तैयार किया जाता है। पहले गुड़ या शीरे को पानी में घोल लेते हैं और उसमें लोहचून छोड़कर धूप में रख देते हैं। कई दिनों में वह उठने लगता है, और उसके ऊपर झाग आ जाता है। जब यह झाग काले रंग का हो जाता है, तब जान लेते हैं कि रंग तैयार हो गया है। इसे कसेरे की स्याही और कत्थ भी कहते हैं। यह रँगाई के काम में आता है।

(२) अस्त्र। हथियार। उ०—नेही लोहा सूर लखि कटत कटाच्छन माहिं। असनेही हित खेत तजि भागत लोहे जाहिं।—रसनिधि।

मुहा०—लोहा गहना = हथियार उठाना। युद्ध करना। उ०—(क) लोह गहे लालच करि जिय को औरो सुभट लजावै। सूरदास प्रभु जीति शत्रु को कुशल क्षेम घर आवै।—सूर। (ख) काशीराम कहैं रघुवंशिन की रीति यही है, जासों कीजै मोह तासों लोह कैसे गहिए।—हनुमन्नाटक। **लोहा बजना** = युद्ध होना। उ०—दोनों वीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पै सिंह टूटे और लगा लोहा बजने।—लल्लू। **लोहा बरसना** = तलवार चलना। घमासान मचना। **किसी का लोहा मानना** = (१) किसी विषय में किसी का प्रभुत्व स्वीकार करना। किसी विषय में किसी से दबना। (२) पराजित होना। हार जाना। **लोहा लेना** = लड़ना। युद्ध करना। लड़ाई करना। उ०—सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ।—तुलसी।

(३) लोहे की बनाई हुई कोई चीज़ या उपकरण। जैसे,—लगाम, कवच आदि। उ०—(क) राजा धरा आन के तन पहिरावा लोह। ऐसो लोह सो पहिरे चेत स्याम की ओह।—जायसी। (ख) पवन समान समुंद पर धावहिं। बूड़ि न पाँव पार होइ आवहिं। थिर न रहहिं रिस लोह चलाहीं। भाजहिं पूँछ सीस उपराहीं।—जायसी। (४) लाल रंग का बैल।

वि० [स्त्री० लोही] (१) लाल। (२) बहुत अधिक कड़ा। कठोर।

लोहाना-क्रि० अ० [हिं० लोहा + आना (प्रत्य०)] लोहे के बर्तन में रखी रहने के कारण किसी वस्तु में लोहे के गुण या रंग आदि का उतर आना। किसी पदार्थ में लोहे का रंग या स्वाद आ जाना।

संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का नाम।

लोहार-संज्ञा पुं० [सं० लौहकार] [स्त्री० लोहारिन या लोहाइन] एक जाति जो लोहे का काम करती है। इस जाति के अनेक भेद हैं। उनमें से कुछ अपने को ब्राह्मण कहते और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनकी अंतर्जातियों के नाम भी ओझा आदि होते हैं। पर अधिकतर आचारहीन होते हैं और शूद्र माने जाते हैं। प्रत्येक अंतर्जाति का खान पान और विवाह संबंध पृथक् पृथक् होता है; और उनके नाम भी भिन्न होते हैं।

यौ०—लोहार की स्याही = कसीस। हीराकसीस।

लोहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोहार + ई (प्रत्य०)] लोहार का काम।

लोहित-वि० [सं०] रक्त। लाल।

संज्ञा पुं० [सं० लोहितक] मंगल ग्रह। उ०—प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनि गन दुति अपनी। मानहुँ प्रगटि विपुल लोहितपुर पठइ दिये अवनी।—तुलसी।

लोहितक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल मणि। (२) मंगल ग्रह। (३) एक प्रकार का धान। (४) फूल नामक धातु। (५) ताँबा। (६) आजकल के रोहतक नगर का प्राचीन नाम।

लोहितांग-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

लोहितोद-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

लोहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन गाँव का नाम। बाल्मीकि ने कपीवती नदी का इसमें होकर बहना लिखा है। (२) ब्रह्मपुत्र नद। (३) एक समुद्र का नाम। पुराणानुसार यह कुश द्वीप के पास है।

लोहित्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) एक अप्सरा का नाम।

लोहिया-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + इया (प्रत्य०)] (१) लोहे की चीजों का व्यापार करनेवाला। (२) बनियों और मारवाड़ियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की एक जात का नाम। (३) लाल रंग का बैल। (४) लोहे की बनी हुई गोली।

लोहू-संज्ञा पुं० [सं० लोहित = लाल] रक्त। वि० दे० "लहू"। उ०—(क) तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्रान बियायरु मोहू।—कबीर। (ख) राते बिंब भये तेहि लोहू। परवर पाक फटे हिय गोहूँ।—जायसी (ग) लोथिन्ह ते लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।—तुलसी। (घ) माता ही को मांस तोहिं लागतु है मीठो मुख पियत पिता को लोहू नेकु न अघाति है।—केशव।

लौं *†-अव्य० [हिं० लग] (१) तक। पर्य्यंत। उ०—अजहूँ लौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार। सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरण सुचार।—सूर। (ख) चलत चलत लौं लै चले सब सुख संग लगाय। ग्रीषम वासर सिसिर निसि पिय मो पास बसाय।—बिहारी। (२) समान। तुल्य। बराबर। उ०—(क) छितिये के शशि लौं बाढ़ै शिशु देखै जननि जसोई। यह सुख सूरदास के नैनन दिन दिन दूनौ होई।—सूर। (ख) कहति न देवर की कुवत कुलतिय कलह डराति। पंजर गात मँजार ढिग सुक लौं सूखति जाति।—बिहारी।

लौंकना *†-क्रि० अ० [सं० लोकन] (१) दृष्टिगोचर होना। दिखाई देना। उ०—लौंकत चीर ध्वजा रतनारे। सावन भादों के घन वारे।—गुमान। (२) चमकना। (३) आँखों में चकाचौंध होना।

लौंग-संज्ञा पुं० [सं० लवंग] (१) एक झाड़ की कली जो खिलने के पहले ही तोड़कर सुखा ली जाती है। इसके वृक्ष मालाबार, अफ्रिका के समुद्र तट, जंजिबार, मलाया, जावा आदि में होते हैं। लौंग की खेती के लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वाला-मुखी की राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी मानी जाती है। पहले इसको पनीरी में एक एक फुट पर बो देते हैं। इसका बीज जहाँ तक हो, जब एक ताज़ा रहे, तभी तक बोया जाता है; क्योंकि फूल सूख जाने पर बीज नहीं जमते। चार पाँच सप्ताह में बीज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरी से उखाड़कर बीस बीस फुट की दूरी पर बाग़ में लगाते हैं। जहाँ यह लगाया जाय, वहाँ की भूमि पोली और दोमट होनी चाहिए। मटियार, बालू या दलदल में यह पौधा नहीं रह सकता। यदि काली मिट्टी में बालू मिला हो और उसके नीचे पीली मिट्टी और कंकड़ पड़ जाय, तो लौंग का पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। अत्यंत घनी छाया इसको हानिकर होती है। पनीरी बैठाने के समय प्रायः वर्षा का आरंभ है। बैठाए हुए पौधे को दो तीन वर्ष तक धूप से बचाने के लिये प्रायः छाया की आवश्यकता पड़ती है; और आँधी से बचाने के लिये इसके बाग़ की घनी झाड़ी से रुँधाई करने की आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपर से छाजन हटा ली जाती है; और छठे वर्ष से फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है; और बीस पचीस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूल कम आने लगते हैं। कलियाँ पहले हरी रहती हैं; फिर पीली और अंत को गुलाबी रंग की हो जाती हैं। वही उनके तोड़ने का समय है। ये कलियाँ या तो बँधी हुई चुन ली जाती हैं अथवा लकड़ियों से पीटकर नीचे गिरा दी जाती हैं; और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लौंग है जो बाजारों में बिकता है। कोई कोई कलियाँ जो पेड़ों में रह जाती हैं, बढ़कर फूल जाती हैं। और फूल झड़ जाने पर नीचे का भाग फूलकर छोटी सी घुंडी के आकार का हो जाता है, जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंडी बोने के काम में आती है। लौंग की कलम भी उसकी डाली को मिट्टी में दबाने से तैयार की जाती है। डेढ़ दो महीने में उसमें जड़ें निकल आती हैं। इस प्रकार की कलम जल्दी फूलने लगती है। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा, कड़ुआ, गुण शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकारक, कफ पित्त-नाशक, प्यास और वमन को मिटानेवाला, आँखों के लिये हितकर और शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षय रोग का नाशक माना गया है। लौंग से भबके द्वारा एक प्रकार का तेल निकलता है। उसका व्यवहार सभी देशी और विदेशी औषधों में होता है। वैद्यक में इसके तेल को वातनाशक, अग्निदीपक, कफनाशक और गर्भिणी के वमन को दूर करनेवाला लिखा है। दाँत की पीड़ा में जब दूषित कृमि हो जायँ, इसको लगाना विशेष लाभदायक होता है। लौंग का प्रयोग विशेष कर मसाले में होता है।

पर्य्या०—देवकुसुम। श्रीसंज्ञ। कलिकोत्तम। भृंगार। सुषिर। तीक्ष्ण। वारिज। शेखर। लव। श्रीपुष्प। रुचिर। वारिपुष्प। दिव्यगंध। तीक्ष्णपुष्प।

(२) लौंग के आकार का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ नाक या कान में पहनती हैं। उ०—यदपि लौंग ललितौ तऊ तू नयहरि इक आँक। सदा संक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नाक।—बिहारी।

लौंगचिड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + चिड़ा = चिड़िया] (१) एक प्रकार का कवाब जो बेसन मिलाकर बनाया जाता है। (२) फुलकी रोटी। (क्व०)

लौंगमुश्क-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + मुश्क] एक प्रकार के फूल का नाम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौंगरा-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ गोल और नुकीली, बरियारे से कुछ अधिक बड़ी और चमकीली होती हैं। यह घास बरसात में उगती है और इसमें लौंग के आकार की कलियाँ लगती हैं, जिनके डंठल प्रायः चौकोर होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं और उनके पक जाने पर नीचे के डंठल कुछ मोटे हो जाते हैं, जिनमें बीजों से भरे चार बीजकोश निकलते हैं। बीज काले रंग के और चिचटे होते हैं। बंगाल में लोग इसकी पत्तियों का साग बनाते हैं।

लौंगिया मिर्च-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंग + मिर्च] एक प्रकार की बहुत कड़वी मिर्च जिसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे होते हैं। इसे मिरची भी कहते हैं।

लौंडा-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० लौंडी, लौंडिया] (१) छोकरा। बालक। लड़का। (२) खूबसूरत और नमकीन लड़का।

यौ०—लौंडेबाज। लौंडेबाजी।

वि० (१) अबोध। (२) छिछोरा।

लौंडापन-संज्ञा पुं० [हिं० लौंडा + पन (प्रत्य०)] (१) लौंडा होने का भाव। (२) लड़कपन। (३) छिछोरापन।

लौंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा] दासी। मज़दूरनी। उ०—मन मनसा द्वै लौंडी निकारि डारो, मारो हंकार तृष्ण कुबुधि कुवाद की।—कबीर।

लौंडेबाज-वि० [हिं० लौंडा + फा० बाज] (१) (पुरुष) जो सुंदर बालकों से प्रेम रखता हो और उनके साथ प्रकृति विरुद्ध आचरण करता हो। (स्त्री) जो कम अवस्था के युवकों से प्रेम रखती हो। (बाजारू)

लौंडेबाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा + फा० बाजी] लौंडेबाज का काम। लौंडों से प्रेम रखना।

लौंद-संज्ञा पुं० [?] अधिमास। मल मास।

लौंदरा†-संज्ञा पुं० [हिं० लव = बालू] वह पानी जो ग्रीष्म ऋतु में वर्षा आरंभ होने से पहले बरसता है। लवँदरा। लवंद। दौंगरा।

लौंदा*-संज्ञा पुं० दे० "लोंदा"।

लौंदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह करछी जिससे खँडसार में पाक चलाया जाता है। (बुंदेल०)

लौन-संज्ञा पुं० (१) दे० "लवन"। (२) दे० "लौंद"।

लौ-संज्ञा स्त्री० [सं० दावा] (१) आग की लपट। ज्वाला। उ०—जोरि जो धरी है बेदरद द्वारे तौन होरी, मेरी बिरहागि की उलकनि लै लाइ आव।—पद्माकर। (२) दीपक की टेम। दीपशिखा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लाग] (१) लाग। चाह। राग। उ०—लौ इनकी लागी रहै निज मन मोहन रूप। तातें इन रसनिधि लयौ लोयन नाम अनूप।—रसनिधि। (२) चित्त की वृत्ति।

यौ०—लौलीन = किसी के ध्यान में डूबा हुआ या मस्त। उ०—खसम न चीन्हें बावरी पर पूरुषे लौ लीन। कहहिं कबीर पुकारि के परी न बानी चीन्ह।—कबीर।

(३) आशा। कामना। उ०—लौ लगी लोयन में लखिबे की उतै गुरु लोगन को भय भारी—सुंदरी सर्वस्व।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

लौआ-संज्ञा पुं० [सं० लाबुक] कद्दू। घीआ।

लौका†-संज्ञा पुं० [सं० लाबुक] [स्त्री० लौकी] कद्दू। उ०—भई भूजी लौका परबती। रौंता कीन्ह काटि कै रती।—जायसी।

लौकिक-वि० [सं०] (१) लोक संबंधी। सांसारिक। (२) व्यावहारिक।

संज्ञा पुं० सात मात्राओं के छंदों का नाम। ऐसे छंद इक्कीस प्रकार के होते हैं।

लौकिक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] लोक में पाला जानेवाला नियम। साधारण नियम।

लौकी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लाबुक] (१) कद्दू। घीआ। (२) काठ की वह नली जिसे भबके में लगाकर मद्य चुआते हैं।

लौगाक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] धर्म शास्त्र के कर्त्ता एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

लौज-संज्ञा पुं० [अ० लौज] (१) बादाम। (२) एक प्रकार की मिठाई जो काटकर तिकोनिया बरफी के आकार की बनाई जाती है। इसमें प्रायः बादाम पीसकर डालते हैं।

यौ०—लौजात की गोट = वह ऐंठ की गोट जो समोसे के जोड़ों पर बनाई जाती है।

लौजोरा*†-संज्ञा पुं० [हिं० लौ + जोड़ना] पीतल या काँसे के कारखाने में वह काम करनेवाला जो भट्टी के पास बैठा हुआ यह देखता रहता है कि धातु गल गई या नहीं। धातु गलानेवाला।

लौटना-क्रि० अ० [हिं० उलटना] (१) कहीं जाकर पुनः वहाँ से फिरना। वापस आना। पलटना। उ०—(क) नख तें सिख लौं लखि मोहन को तन लाड़िली लौटन पीठ दई। कबि बेनी छबीले भरी अँकवारि पसारि भुजा करि नेहमई। यह गुंज की माल कठोर अहो रहो मो छतियाँ गड़ि पीर भई। उचकी लची चौंकी चकी मुख फेरि तरेरि बड़ी अँखियाँ चितई।—बेनी। (ख) साँकरी खोर में काँकरी की करि चोट चलै फिरि लौटनहारौ।—पद्माकर। (२) इधर से उधर मुँह फेरना। पीछे की ओर मुँह करना। उ०—ताही समय उठो घन घोर दामिनी सी लागी लौटि श्याम घन उर सों लपकि कै।—केशव।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

क्रि० स० इधर से उधर करना। पलटना। उलटना। जैसे,—पुस्तक के पन्ने लौटना। (क्व०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौट पौट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौट + अनु० पौट] (१) दोरुखी छपाई। वह छपाई जिसमें दोनों ओर एक से बेल बूटे दिखाई पड़ें। वह छपाई जिसमें उलटा सीधा न हो। (२) उलटने पुलटने की क्रिया। (३) दे० "लोट पोट"।

लौट फेर-संज्ञा पुं० [हिं० लौट + फेर] इधर का उधर हो जाना। उलटफेर। हेर-फेर। भारी परिवर्त्तन।

लौटाना-क्रि० स० [हिं० लौटन का सक०] (१) फेरना। पलटाना। (२) वापस करना। जैसे,—(क) यदि आप वहाँ जायँ, तो उन्हें लौटाकर ला सकते हैं। (ख) अब आप ये सब पुस्तकें उन्हें लौटा दें। (३) किसी को उल्टे मुँह फेरना। वापस करना। (४) ऊपर नीचे करना। जैसे,—कपड़ा लौटाना। (क्व०)

लौटान-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया या भाव।

लौटानी-क्रि० वि० [हिं० लौटना] लौटते समय। लौटती बार।

लौड़ा-संज्ञा पुं० [सं० लोल या हिं० लंड] पुरुष की मूत्रेंद्रिय।

लौद, लौदरा †-संज्ञा पुं० [सं० नव + डाली] [स्त्री० लौदड़ी, लौदरी] अरहर आदि की नरम डाली जिससे छानी छाने का काम लेते हैं। (दुआब वा अंतर्वेद)

लौन ॐ-संज्ञा पुं० [सं० लवण] नमक। लवण। उ०—(क) कीन्हेहू कोटिक जतन अब गहि काढ़ै कौन। भौ मनमोहन रूप मिलि पानी में को लौन।—बिहारी। (ख) प्रीतम पै चाख्यो हगन रूप सलोने लौन। कटैं इश्क़ मैदान में तौ कहु अचरज कौन।—रसनिधि।

लौनहार†-संज्ञा पुं० [हिं० लौना + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० लौनहारिन] खेत काटनेवाला। लौनी करनेवाला।

लौना†-संज्ञा पुं० [सं० लूम या रोम] वह रस्सी जिससे किसी पशु के एक अगले और एक पिछले पैर को एक साथ बाँधते हैं, जिसमें खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके।

संज्ञा पुं० [सं० ज्वलन] ईंधन।

संज्ञा पुं० [सं० लवन] फसिल काटने का काम। कटनी। कटाई। लौनी।

* वि० [सं० लावण्य = लोन] [स्त्री० लौनी] लावण्ययुक्त। सुंदर। उ०—खेलत हैं हरि बागे बने जहाँ बैठी प्रिया रति तें अति लौनी।—केशव।

लौनी ‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौना] (१) फसल की कटनी। कटाई। (२) वह कटा हुआ डंठल जो अँकवार में आवे। अँकोरा। डाबी। लहना।

ॐ संज्ञा स्त्री० [सं० नवनीत] नैनू। नवनीत। उ०—लौनी कर आनन परसत हैं कछुक खाइ कछु लग्यो कपोलनि। कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं धन्य नंद जीवनयुग तोलनि।—सूर।

लौमना †-संज्ञा पुं० दे० "लौना"।

लौमनी †-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "लौना"। (२) दे० "लौनी"।

लौह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) शस्त्रास्त्र।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तख़्ती। (२) पुस्तक का सफ़ा। पृष्ठ। पन्ना।

लौहकार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

लौहचारक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक भीषण नरक का नाम।

लौहसार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो लोहे से बनाया जाता है। यह रासायनिक परिक्रिया द्वारा बनता है और औषधों में काम आता है।

लौहा-संज्ञा पुं० दे० "लोहा"।

लौहाचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं के तत्व को जाननेवाला आचार्य्य। वह जो धातु विद्या का अच्छा ज्ञाता हो। धातु० विद्याविद्।

लौहायस-वि० [सं०] लोहे या ताँबे का बना हुआ।

लौहासव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसव जो लोहे के योग से बनाया जाता है। (वैद्यक)

लौहि-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार अष्टक के एक पुत्र का नाम।

लौहित-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का त्रिशूल।

लौहिता-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा] वैश्यों की एक जाति जो लोहे का व्यापार करती है। लोहिया।

लौहितायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र का नाम।

लौहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धान जिसके चावल लाल रंग के होते हैं। (२) ब्रह्मपुत्र नद। (३) एक पर्वत का नाम। (४) एक तीर्थ का नाम। (५) लाल सागर।

ल्याना ॐ-क्रि० स० (१) दे० "लाना"। उ०—(क) ल्याई लाल बिलोकिये जिय की जीवन मूलि। रही भौन के कौन में सोनजुही सी फूलि।—बिहारी। (ख) काहे ते न ल्याई फिरि मोहन बिहारी जू को, कैसे वाहि ल्यावौं, जैसे वाको मन ल्याई है।—पद्माकर। (ग) विप्र बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याई। कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँअरि रही सकुचाई।—तुलसी।

ल्यारी †-संज्ञा पुं० [देश०] भेड़िया। उ०—श्रीकृष्णचंद्र ने मुसकरा के कहा—बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया और सब ग्वाल बाल होवें मेढ़ा। सो सुनते ही व्योमासुर तो फूलकर ल्यारी हुआ और ग्वाल बाल सब बने मेढ़े।—लल्लू।

ल्वाब-संज्ञा पुं० दे० "लुआब"।

ल्वारि *†-संज्ञा स्त्री० दे० "लूह"।

ल्हासा †-संज्ञा पुं० दे० "लासा"।

ल्हीक †-संज्ञा स्त्री० दे० "लीक"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरंजन पुस्तकमाला

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(४, ५, ६) आदर्श हिंदू, तीन भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपति जानकीराम दुबे।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०।
(११) लालचीन—लेखक व्रजनंदनसहाय।
(१२) कबीर वचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी० ए०।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमारदेव शर्म्मा।
(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।
(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।
(२०, २१) हिंदुस्तान दो खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०।
(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।
(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी० एस-सी०
(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम० ए० और शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०।
(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्त्ता पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा बी० ए०।
(२६, २७) जर्मनी का विकास, दो भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।
(२८) कृषिकौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसादसिंह एल० ए-जी०
(२९) कर्तव्यशास्त्र—लेखक गुलाबराय एम० ए०।
(३०, ३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दो भाग—लेखक मन्नन द्विवेदी बी० ए०।
(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।
(३३, ३४) विश्वप्रपंच, दो भाग—लेखक रामचंद्र शुक्ल।
(३५) अहिल्याबाई—लेखक गोविंदराम केशवराम जोशी।
(३६) रामचंद्रिका—संकलनकर्त्ता लाला भगवानदीन।
(३७) ऐतिहासिक कहानियाँ—लेखक द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी।
(३८, ३९) हिंदी निबंधमाला, दो भाग—संग्रहकर्त्ता श्यामसुन्दरदास बी० ए०।
(४०) सूरसुधा—संपादक गणेशविहारी मिश्र, श्यामविहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र।
(४१) कर्त्तव्य—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।
(४२) संक्षिप्त रामस्वयंवर—संपादक व्रजरत्नदास।
(४३) शिशु-पालन—लेखक मुकुन्दस्वरूप वर्म्मा।
(४४, ४५) शाही दृश्य, दो भाग—लेखक मक्खनलाल।
(४६) तर्कशास्त्र, पहला भाग—लेखक गुलाबराय एम० ए०।

माला की प्रत्येक पुस्तक या उसके किसी भाग का मूल्य १) है; पर स्थायी ग्रहाकों को सब पुस्तकें तीन चौथाई मूल्य पर दी जाती हैं।

एक कार्ड भेजकर उत्तमोत्तम पुस्तकों का बड़ा और नया सूचीपत्र मँगवाइए।

मिलने का पता—प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा,
बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रा-शास्त्र

हिंदी में मुद्रा-शास्त्र संबंधी यह पहला और अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें बतलाया गया है कि मुद्रा का स्वरूप क्या है, उसका विकास किस प्रकार हुआ है, उसके प्रचार के क्या सिद्धांत हैं, उत्तम मुद्रा के क्या कार्य हैं, मुद्रा के लक्षण और गुण क्या हैं, राशि-सिद्धांत क्या है, मूल्य संबंधी सिद्धांत क्या हैं, मूल्य-सूची किसे कहते हैं, द्विधातवीय मुद्राविधि का स्वरूप क्या है, पत्र-मुद्रा के क्या सिद्धांत हैं, आदि। पृष्ठ-संख्या ३२५ के लगभग, मूल्य २॥)

अकबरी दरबार (पहला भाग)

उर्दू, फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुल उल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब आज़ाद कृत दरबारे अकबरी नामक ग्रंथ का अनुवाद। इसमें बादशाह अकबर की पूरी जीवनी दी गई है और बतलाया गया है कि उसने कैसे कैसे युद्ध किए, अपने राज्य की किस प्रकार व्यवस्था की, उसके समय में देश की राजनीतिक, सामाजिक और साम्पत्तिक अवस्था कैसी थी, आदि आदि। पृष्ठ-संख्या चार सौ से ऊपर, मूल्य २॥)

अशोक की धर्म-लिपियाँ (पहला भाग)

इस पुस्तक में सम्राट् अशोक के प्रधान शिलालेखों की प्रतिलिपि, संस्कृत तथा हिंदी अनुवाद और स्थान स्थान पर अनेक बहुमूल्य टिप्पणियाँ दी गई हैं। अशोक की धर्मलिपियों का ऐसा अच्छा दूसरा संस्करण अभी कहीं नहीं निकला। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी और विद्यानुरागी को इसकी एक प्रति अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य ३)

बाँकीदास ग्रंथावली (पहला भाग)

डिंगल भाषा के महाकवि कविराजा बाँकीदास कृत सूर छतीसी, सीह छतीसी, वीर-विनोद, धवल पचीसी, दातार बावनी, नीति-मंजरी और सुपह छतीसी ये सात ग्रंथ अभी तक मिले हैं, जो इस पहले खंड में एक साथ ही छाप दिए गए हैं। आरंभ में बाँकीदास जी की जीवनी दे दी गई है और प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा उनके उपयोगी विवरण आदि पादटिप्पणियों में देकर पुस्तक सर्वसाधारण के लिये बहुत ही सुगम कर दी गई है। १०० पृष्ठों से ऊपर की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

बीसलदेव रासो

यह ग्रंथ सं० १२७२ का लिखा हुआ है और इसकी भाषा प्राचीनतम हिन्दी है। इसमें बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के जीवन की मुख्य घटनाओं और युद्धों आदि का बहुत उत्कृष्ट वर्णन है। १७ वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति से इसका पाठ शुद्ध किया गया है और कठिन शब्दों के अर्थ तथा टिप्पणियाँ दी गई हैं। प्राचीन भाषा काव्य-प्रेमियों के लिये अपूर्व रत्न है। १७५ पृष्ठों की जिल्ददार पुस्तक का मूल्य ॥।)

जायसी ग्रंथावली

सभा ने जायसी कृत पद्मावत और अखरावट का बहुत सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया है और प्रति पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ तथा दूसरे आवश्यक विवरण दे दिए हैं, जिसमें यह काव्य साधारण विद्यार्थियों तक के समझने योग्य हो गया है। पुस्तक का पाठ बहुत परिश्रम से शुद्ध किया है। आरंभ में इसके सम्पादक और सिद्धहस्त समालोचक पं० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रायः ढाई सौ पृष्ठों की इसकी मार्मिक आलोचना कर दी है, जिसके कारण सोने में सुगंध भी आ गई है। बड़े आकार के प्रायः ७०० पृष्ठों की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ३)

प्रकाशन मंत्री, नागरीप्रचारिणी सभा, बनारस सिटी।

मुद्रक—गणपति कृष्ण गुर्जर, श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस सिटी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar